श्रीजिनसेनाचार्यप्रणीत

जिनसहस्रनामस्तोत्रम्

卐

※ संस्कृत टीकाकार ※

सूरिश्री अमरकीर्ति

卐

※ हिन्दी अनुवादकर्त्री ※

गणिनी आर्यिका १०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी संघस्था

ब्र.डॉ. प्रमिला जैन

卐

※ प्रकाशक ※

श्री दिगम्बर जैन मध्यलोक शोध संस्थान

सम्मेदशिखरजी-८२५३२९ गिरीडीह-झारखण्ड

❋ आशीर्वचन ❋

जीव को संसार रूपी मरुस्थल में भ्रमण करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गया। उसमें अनन्तकाल तो निगोद में एकेन्द्रिय रूप में व्यतीत किया, जहाँ एक श्वास में अठारह बार जन्मा और मरा। ४८ मिनिट में कुछ सैकन्ड कम काल में ६६,३३६ बार जन्मा और उतनी ही बार मरा। वहाँ से निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक स्थावर हुआ। यदि किसी पुण्य के उदय से त्रस पर्याय प्राप्त की तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय तक कुछ भी विचारपूर्वक क्रिया करने का सामर्थ्य नहीं मिला। कर्मफल चेतना को भोगता रहा। सैनी पंचेन्द्रिय पर्याय भी अल्प आयु, रोग, शोक, चिन्ता आदि में व्यतीत हो गये। किसी महान् पुण्य से मानव जैसी उत्तम पर्याय, श्रावक कुल, जिनवाणी का संयोग, जिनधर्म की प्राप्ति हुई है। उसका सदुपयोग करने के लिए जिनवाणी का श्रवण, चिन्तन, मनन करना चाहिए।

जिनसेन आचार्य ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए तथा जिसका प्रतिदिन चिन्तन किया जा सके ऐसी जिनसहस्र नामावली की रचना की। एक हजार नामों के द्वारा भगवान की स्तुति की। स्तुति में केवल नामावली ही नहीं है अपितु स्याद्वाद वा अनेकान्त के द्वारा मत-मतान्तरों का खण्डन भी किया है।

एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। उन शब्दार्थों के द्वारा स्वकीय मतानुसार अर्थ करके आपने अपने मतकी सिद्धि की है। जैसे **'अर्द्धनारीश्वर'** जो आधे अंग में स्त्री को रखता है, जो स्त्री को अंग में लिपटाये रखता है, वह विषय-भोगों में अन्ध हुआ पुरुष महान् कैसे हो सकता है। परन्तु जिनसेनाचार्य ने उसका अर्थ किया है कि आत्मा के शत्रु ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं। इनमें से अर्ध (आधे) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार शत्रु (अरि)ओं का नाश करने से आधे नहीं हैं शत्रु जिसके, उसको 'अर्ध नारीश्वर' कहते हैं।

'त्रिपुरारि' - तीन पुरों को जलाने वाले, नष्ट करने वाले त्रिपुरारि आत्मा

भगवान नहीं हो सकते। परन्तु आचार्यदेव ने अर्थ किया है कि जन्म, जरा एवं मृत्यु रूपी तीन शत्रुओं का नाश किया अत: आप त्रिपुरारि हैं। इस प्रकार सर्व नामों का जैन शास्त्रानुसार अर्थ करके जिनधर्म का प्रकाशन किया है।

जैनाचार्यों के हृदय में जैनधर्म के प्रति अतिगाढ़ भक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसलिए उन्होंने जिनधर्म का प्रकाशन करने के लिए स्तुतिपरक ग्रन्थों की रचना की। जैसे **समन्तभद्राचार्य** ने न्याय के बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे **युक्त्यनुशासन, देवागम स्तोत्र, स्तुति विद्या, स्वयंभू स्तोत्र** आदि भक्ति ग्रन्थ हैं परन्तु वस्तु-सिद्धि के लिए न्याय के बेजोड़ ग्रन्थ हैं, जिनके समक्ष **प्रमेय कमल मार्त्तण्ड** आदि न्याय ग्रन्थ भी अधूरे प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार **जिनसेन आचार्य** का **जिनसहस्रनाम स्तोत्र** न्याय-व्याकरण और शब्दकोश का एक खजाना है। इस पर श्री अमरकीर्ति तथा श्रुतसागर आचार्य ने विस्तृत टीका लिखी है जिसमें व्याकरण के अनुसार शब्दों के अनेक अर्थ करके समझाया है। शब्दों की सिद्धि के लिए पाणिनी, शकटायन, जैनेन्द्र प्रक्रिया, कातंत्र रूपमाला, जैनेन्द्र कोश आदि अनेक ग्रन्थों के द्वारा शब्दों को सिद्ध किया है। जिस प्रकार एक तत्त्वार्थसूत्र को पढ़लेने पर अनेक शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार जिनसहस्रनाम का पठन करने पर तत्त्वों का ज्ञान और व्याकरण का ज्ञान सहज ही हो जाता है। भक्तिपूर्वक इसके पठन से अनेक कार्यों की सिद्धि होती है। उक्तं च-

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिक:,
य: संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम्।

तत: सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधी:
पौरुहुतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुक: ।।

भव्य प्राणी स्वकीय परिणामों की विशुद्धि के लिए प्रात:काल उठकर इस महास्तोत्र का पठन-मनन करते हैं।

अपने परिणामों की विशुद्धि के लिए बालब्रह्मचारिणी डॉ. कुमारी प्रमिला जैन ने इसका अर्थ करने का साहस किया है, वह सराहनीय है। मेरा हृदय

से आशीर्वाद है कि ये दीर्घायु हों तथा अन्य अनेक ग्रन्थों की भाषा टीका करें, तत्त्वों का विवेचन कर अपना कल्याण करें, शीघ्र ही आर्यिका व्रतों को धारण कर स्त्रीपर्याय को छेदकर मुक्तिपद को प्राप्त करें।

इस ग्रन्थ के अर्थ सहयोगी **श्रीमान् हरकचन्दजी** के पौत्र एवं **भँवरीलालजी** के सुपुत्र **श्रीपाल चूड़ीवाल** तथा उसकी **धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता** को भी शुभाशीर्वाद। वे इसी तरह स्वोपार्जित धन को सत्कार्यों में व्यय कर उसे सार्थक बनावें क्योंकि जो धन दान, पूजा, शास्त्रप्रकाशन में व्यय होता है वही सार्थक है। और वही पर-भव में साथ जाने वाला है। इस कार्य में अनुमति देने वाले इसके बड़े भ्राता कैलाशचन्द व कमलकुमार तथा लघु भ्राता महीपाल और भागचन्द व सर्व परिवार को आशीर्वाद।

- आर्यिका सुपार्श्वमती

卐 卐 卐

❋ प्रस्तावना ❋

महापुराण के दो खण्ड हैं, प्रथम आदिपुराण या पूर्वपुराण और द्वितीय उत्तरपुराण। आदिपुराण ४७ पर्वों में पूर्ण होता है, जिसके ४२ पर्व पूर्ण तथा ४३वें पर्व के ३ श्लोक भगवज्जिनसेनाचार्य द्वारा रचित हैं। अवशिष्ट ५ पर्व तथा उत्तरपुराण श्री जिनसेनाचार्य के प्रमुख शिष्य श्री गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित हैं।

आदिपुराण पुराणकाल के सन्धिकाल की रचना है अतः यह न केवल पुराणग्रन्थ है अपितु काव्यग्रन्थ भी है, महाकाव्य है। महाकाव्य के जो लक्षण हैं वे सब इसमें घटित होते हैं।

आचार्य जिनसेन और गुणभद्र : दोनों ही आचार्य मूलसंघ के उस पंचस्तूप नामक अन्वय में हुए हैं जो आगे चलकर सेनान्वय या सेनसंघ नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिनसेन स्वामी के गुरु वीरसेन ने तो अपना वंश पंचस्तूपान्वय ही लिखा है परन्तु गुणभद्राचार्य ने सेनान्वय लिखा है। इन्द्रनन्दी ने अपने 'श्रुतावतार' में लिखा है कि जो मुनि पंचस्तूप निवास से आये, उनमें किन्हीं को सेन और किन्हीं को भद्र-नाम दिया गया। तथा कोई आचार्य ऐसा भी कहते हैं कि जो गुहाओं से आये उन्हें नन्दी, जो अशोक वन से आये उन्हें देव और जो पंचस्तूप से आये उन्हें सेन नाम दिया गया। श्रुतावतार के उक्त उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि सेनान्त और भद्रान्त नाम वाले मुनियों का समूह ही आगे चलकर सेनान्वय या सेनसंघ कहलाने लगा।

वंश-परम्परा - अभी तक के अनुसन्धान से इनके गुरुवंश की परम्परा आर्य चन्द्रसेन तक पहुँच सकी है अर्थात् चन्द्रसेन के शिष्य आर्यनन्दी, उनके शिष्य वीरसेन, वीरसेन के जिनसेन, जिनसेन के गुणभद्र और गुणभद्र के शिष्य लोकसेन थे। यद्यपि आत्मानुशासन के संस्कृत टीकाकार प्रभाचन्द्र ने उपोद्घात में लिखा है कि बड़े धर्मभाई विषय-व्यामुग्धबुद्धि लोकसेन को सम्बोधन देने के व्याज से समस्त प्राणियों के उपकारक समीचीन मार्ग के दिखलाने की इच्छा से श्री गुणभद्रदेव ने यह ग्रन्थ लिखा, परन्तु उत्तरपुराण की प्रशस्ति को देखते हुए टीकाकार का उक्त उल्लेख ठीक नहीं मालूम होता क्योंकि उसमें उन्होंने लोकसेन को अपना मुख्य शिष्य बतलाया है। वीरसेन स्वामी के जिनसेन के सिवाय दशरथपुर नाम के एक शिष्य और थे। श्रीगुणभद्र स्वामी ने उत्तरपुराण में अपने आपको उक्त दोनों गुरुओं का शिष्य बताया है।

आदिपुराण की पीठिका में श्री जिनसेन स्वामी ने श्री वीरसेन स्वामी की स्तुति के बाद ही श्री जयसेन स्वामी की स्तुति की है और उनसे प्रार्थना की है कि जो तपोलक्ष्मी की जन्मभूमि हैं, समता और शान्ति के भंडार हैं तथा विद्वत् समूह के अग्रणी हैं, वे जयसेन गुरु हमारी रक्षा करें। इससे यह सिद्ध होता है कि श्री जयसेन श्री वीरसेन स्वामी के गुरुभाई होंगे इसलिए जिनसेन स्वामी ने उनका गुरुरूप से स्मरण किया है। इस प्रकार श्री जिनसेन की गुरु परम्परा जानी जा सकती है।

समयविचार - दिगम्बर मुनियों का पक्षियों की तरह अनियतवास बतलाया है। प्रावड्योग के सिवाय उन्हें किसी बड़े नगर में ५ दिन-रात और छोटे ग्राम में १ दिन-रात से अधिक ठहरने की आगम-आज्ञा नहीं है। इसलिए किसी भी दिगम्बर मुनि के मुनिकालीन निवास का उल्लेख प्राय: नहीं मिलता है। परन्तु वे कहाँ उत्पन्न हुए ? एवं कहाँ उनका गृहस्थ जीवन बीता ? आदि प्रश्न उपस्थित होते हैं पर इनका भी सही उत्तर नहीं मिल पाता।

निश्चित रूप से तो यह नहीं कहा जा सकता कि जिनसेन और गुणभद्र स्वामी अमुक देश के अमुक नगर में उत्पन्न हुए और अमुक स्थान पर अधिकतर रहे क्योंकि इसका उल्लेख उनकी किसी भी प्रशस्ति में नहीं मिलता। परन्तु इनसे सम्बन्ध रखने वाले तथा स्वयं इनके ग्रन्थों में बंकापुर, वाटग्राम और चित्रकूट नामों का उल्लेख आता है–

आगत्य चित्रकूटात्तत: स भगवान् गुरोरनुज्ञानात्।
वाटग्रामे चात्रानतेन्द्रकृत जिनगृहे स्थित्वा।।१७९।।

- श्रुतावतार

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये कर्णाटक प्रान्त के रहने वाले होंगे।

जिनसेन स्वामी ने अपने प्रारम्भिक जीवन में **पार्श्वाभ्युदय** तथा **वर्धमानपुराण** लिखकर विद्वत्समाज में भारी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। वर्धमानपुराण तो उपलब्ध नहीं पर पार्श्वाभ्युदय प्रकाशित हो चुकने के कारण पाठकों की दृष्टि में आ चुका है। गुरु वीरसेन स्वामी के द्वारा प्रारब्ध सिद्धान्तग्रन्थों की टीका का कार्य उनके स्वर्गारोहण के कारण अपूर्ण रह गया। योग्यता रखने वाला गुरुभक्त शिष्य गुरु-प्रारब्ध कार्य की पूर्ति में जुट गया। उसने इस कार्य को पूरा किया। इस कार्य में आपका बहुत समय निकल गया। सिद्धान्तग्रन्थों की टीका पूर्ण होने के बाद जब आपको विश्राम मिला

तब आपने चिराभिलषित कार्य हाथ में लिया और पुराणों की रचना प्रारम्भ की। आपके ज्ञानकोष में न शब्दों की कमी थी, न अर्थों की अतः आप किसी भी वस्तु का वर्णन विस्तार से करने में सिद्धहस्त थे। आदिपुराण का स्वाध्याय करने वाले पाठक जिनसेन स्वामी की इस विशेषता का पद-पद पर अनुभव करते हैं।

आदिपुराण - आपकी परवर्ती रचना है। प्रारम्भ से लेकर ४२ पर्व पूर्ण तथा ४३वें पर्व के ३ श्लोक आपकी स्वर्ण लेखनी से लिखे जा सके, असमय में आपकी आयु समाप्त हो गयी और आपका कार्य अधूरा रह गया। वीरसेन की सिद्धान्त ग्रन्थ की टीका समाप्त होते ही यदि महापुराण की रचना शुरू हो गयी हो तो उस समय श्री जिनसेन स्वामी की अवस्था ८० वर्ष से ऊपर हो चुकी होगी अतः रचना बहुत थोड़ी-थोड़ी होती रही। लगभग दस हजार श्लोकों की रचना में उन्हें कम-से-कम १० वर्ष अवश्य लग गये होंगे।

इस हिसाब से शक संवत् ७७० तक अथवा बहुत जल्दी हुआ हो तो ७६५ तक जिनसेन स्वामी का अस्तित्व मानने में आपत्ति नहीं दिखती। इस प्रकार जिनसेन स्वामी ९०-९५ वर्ष तक इस संसार के सम्भ्रान्त पुरुषों का कल्याण करते रहे, यह अनुमान किया जा सकता है।

जिनसेन स्वामी वीरसेन स्वामी के शिष्य थे। उनके विषय में गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण की प्रशस्ति में लिखा है कि जिस प्रकार हिमालय से गंगा का प्रवाह, सर्वज्ञ के मुख से सर्वशास्त्र रूप दिव्यध्वनि का उद्गम और उदयाचल के तट से देदीप्यमान सूर्य का उदय होता है, उसी प्रकार वीरसेन स्वामी से जिनसेन का उदय हुआ, जिनके द्वारा प्रणीत निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चला-

१. पार्श्वाभ्युदय, २. वर्द्धमान चरित्र, ३. जयधवला टीका

आदिपुराण - यह आदिपुराण का चरित कवि परमेश्वर के द्वारा कही हुई गद्य कथा के आधार से बनाया गया है। इसमें समस्त छन्दों एवं अलंकारों के लक्षण हैं। इसमें सूक्ष्म अर्थ और गूढ़ पदों की रचना है। यह सुभाषितों का भण्डार है। इस ग्रन्थ के २५वें पर्व में जिनसेन स्वामी ने भगवान की १००८ नामों से स्तुति की है। जिसका अर्थ अत्यन्त हृदयग्राही और समस्त शास्त्रों के उत्कृष्ट पदार्थों का ज्ञान कराने वाला है।

सहस्रनाम - यह भक्ति की चरमोत्कृष्ट रचना है। एक-एक शब्द को सार्थक करते हुए प्रभु की भक्ति एक-एक नाम में समाहित हुई है।

वे जानते थे कि क्लेश रूपी अपार जल से भरे हुए अनंत संसार से पार होने के लिए जिनेन्द्र भगवान की भक्ति रूपी नौका ही कल्याणकारी है। इसलिए श्रावक और साधु दोनों हमेशा भव-भव में जिनेन्द्र-भक्ति की प्रार्थना करते हैं–

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावत् यावन्न निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥

हे प्रभो ! मेरा हृदय आपके चरणों में और आपके चरण मेरे हृदय में तब तक लीन रहें जब तक मुझे मुक्ति की प्राप्ति न हो।

इस भावना से मानव भक्ति में लवलीन हो जाता है। एक बार लंकाधिपति की भक्ति से प्रसन्न हो नागेन्द्र कुछ विद्या देने की दृष्टि से आकर कहने लगा- "तुम्हारी भक्ति से मेरा हृदय अत्यन्त आनंदित है। बोलो, तुम्हें मैं क्या भेंट दूं।" तब लंकाधिपति बोले- "जिनेन्द्र भगवान की आराधना से बढ़कर क्या कोई वस्तु है, जिसे आप देना चाहते हैं।" तब नागेन्द्र ने उत्तर दिया- "जिनवन्दनातुल्यं अन्यं किमपि न विद्यते"- जिनेन्द्रभक्ति से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है।

स्वयम्भूस्तोत्र में लिखा है-

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद् बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणाः वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥

अल्पगुणों को बढ़ाकर कहना स्तुति है। यहाँ सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्र के गुणों का अल्पतम अंश भी जब पूर्णतया वर्णन के अगोचर है, तब अर्हन्त परमात्मा की स्तुति कैसे की जा सकती है!

यद्यपि हम वीतराग प्रभु की स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं तथापि जितने अंश में स्तुति करते हैं उतने अंश में स्तोता के कर्मों की निर्जरा होती है अतः परिणामों की विशुद्धि के कारणभूत वीतराग प्रभु की भक्ति में लीनता अवश्य होनी चाहिए। गिलास भर अमृत पीने वाले का ही रोग नष्ट नहीं होता है अपितु चुल्लूभर पीने वाला भी सुखी होता है।

जिनभक्ति की महिमा अचिन्त्य है। जैनाचार्यों ने भक्ति रस का पानकर स्वकीय मन को संतुष्ट किया और कर्मनिर्जरा करने के लिए स्तुतिपरक ग्रन्थों की रचना की।

स्वयम्भूस्तोत्र आदि भक्तिपरक स्तोत्रों में जिनभक्ति को पापों का नाश करने वाली कहा है। जिनेन्द्र देव के गुणों के चिन्तन, मनन और उनकी आराधना से पाप नष्ट हो जाते हैं–

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥२॥

"हे भगवन् ! आप वीतराग हैं अतः आपको पूजा, स्तुति से कोई प्रयोजन नहीं है तथा आप वैरविरोध से रहित हैं अतः आपको निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी हे प्रभो ! आपके गुणों का स्मरण करने से मन पापरूपी अंजन से रहित हो जाता है।" (श्रीवासुपूज्यजिनस्तवनम्)

'कल्याणमन्दिर' में कुमुदचन्द्र आचार्य ने कहा है कि "हे प्रभो ! जो आपका चिंतन-मनन करके अपने हृदय कमल में आपको प्रतिष्ठित करते हैं, आपकी आराधना करते हैं, उनके घोर निकाचित कर्म भी ढीले पड़ जाते हैं; जैसे चन्दन के वृक्ष पर मयूर के आ जाने से वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प ढीले पड़ जाते हैं, वृक्ष को छोड़कर भाग जाते हैं।" वीतराग प्रभु की स्तुति, पूजा, ध्यानादि के द्वारा आत्मा के निष्पाप शुद्ध स्वभाव की प्रतीति होती है, आत्मानुभव होता है जो सभी जीवों की सामान्य सम्पत्ति है। ऐसी निधि को प्राप्त करने के सभी भव्य जीव अधिकारी हैं। उस शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होते ही अपनी उस भूली हुई निधि का स्मरण हो जाता है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रेम तथा अनुराग जागृत हो जाता है तथा पाप-परिणति सहज ही छूट जाती है।

जिनेन्द्रभक्ति द्वारा जीव के शारीरिक, आर्थिक, मानसिक आदि सभी कष्ट दूर होते हैं। समस्त कामनाएँ पूर्ण होने के सिवाय अंत में इच्छाओं का भी क्षय होकर वीतरागता की उपलब्धि होती है, जिसके द्वारा सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है। अध्यात्मयोगी पूज्यपाद महर्षि ने लिखा है –

अव्याबाधमचिन्त्य-सार-मतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतम्।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल-स्तुत्यैव संप्राप्यते॥

"हे जिनेन्द्र ! आपके चरण-युगल की स्तुति से ही अव्याबाध, अचिंत्य, सार-पूर्ण, अतुलनीय, उपमातीत तथा अविनाशी सुख की उपलब्धि होती है। इसी कारण श्रेष्ठ श्रमणों ने आत्मकल्याण तथा समृद्धि के हेतु जिनेन्द्र स्तुति की महत्ता कही है। इससे महान् पुण्य का लाभ होते हुए अन्त में पुण्यातीत अवस्था भी प्राप्त होती है। आत्मबली सम्राट् भरतेश्वर ने दीक्षा लेकर अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया था। वे जिनेन्द्रभक्तों के चूड़ामणि थे। **भरतेशवैभव** कन्नड़ काव्य में रत्नाकर कवि ने भरतराज को श्रीजिन-चरणाब्ज-सुरभि-मधुव्रत- श्री जिनेन्द्र के चरण-कमल

की सुगंध का प्रेमी भ्रमर कहा है। भरत महाराज ने कैलास पर्वत पर भगवान आदीश्वर प्रभु के समवसरण में जाकर भगवान की अत्यन्त सुन्दर तथा भावपूर्ण स्तुति की। उसके अन्त में वे कहते हैं-

भगवन् ! त्वद्गुणस्तोत्रात् यन्मया पुण्यमर्जितम्।
तेनास्तु त्वत्पदाम्भोजे परा भक्तिः सदाऽपि मे।(महापुराण)॥

"हे आदिनाथ भगवन् ! आपके गुणों का स्तवन करने से जो मुझे पुण्य का लाभ हुआ है उससे मैं इसी फल की अभिलाषा करता हूँ कि मुझको आपके प्रति सदा उत्कृष्ट भक्ति प्राप्त होवे।" वीतराग की भक्ति की वर्णनातीत महिमा है।

धनंजय महाकवि के पुत्र को सर्प ने डस लिया था। उस समय उन्होंने विषापहार स्तोत्र की रचना की। उससे बालक का विष दूर हो गया। विषापहार स्तोत्र का यह श्लोक विशेष महत्त्वपूर्ण है –

विषापहारं मणिमौषधानि, मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥१४॥

"भगवन् ! लोग विष दूर करने के लिए मणि, औषधि, मंत्र तथा रसायन को खोजते हुए भटका करते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि मणि, मंत्र, औषधि, रसायन आदि यथार्थ में आपके ही नामान्तर हैं अर्थात् आपके नाम की महिमा से भयंकर रोग तथा प्राणान्तक सर्प का विष भी दूर हो सकता है।"

इस पुण्य स्तुति को पढ़ते ही महाकवि का पुत्र विषमुक्त हो गया था। इन दिनों भी जिनेन्द्र स्तवन, गंधोदक आदि से अनेक व्यक्तियों द्वारा काले नाग से डसे जाने पर भी नीरोगता-प्राप्ति के समाचार सुनने को मिलते हैं।

जिनभगवान की भक्ति का अर्थ है उनको अपने मनोमंदिर में विराजमान करना तथा उनकी अपूर्वताओं के प्रकाश द्वारा जीवन को समुज्ज्वल तथा परिशुद्ध बनाना। वीतराग की समीपता होने पर ही मन मलिनता से मुक्त होता है। कल्याणमन्दिर स्तोत्र में लिखा है-

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगंति।
तीव्रातपोपहतपांथजनान्निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

हे जिनेन्द्र ! अचिन्त्य महिमापूर्ण आपके स्तोत्र की तो बात दूसरी है, आपका नाम जीवों की संसार से रक्षा करता है। ग्रीष्मकाल में सूर्य के महान् सन्ताप से पीड़ित पथिकों को कमलयुक्त सरोवर ही नहीं, उसके समीप की सरस पवन भी आनन्द प्रदान करती है।

सहस्रनाम स्तोत्र की विशेषता :

महाकवि जिनसेन ने भगवान ऋषभदेव के परिपूर्ण जीवन पर दृष्टि डालकर जो अष्टाधिक सहस्र नामों की रत्नमालिका बनाई है, उसे कण्ठभूषण बनाने वाला व्यक्ति विश्वसेन का प्रकाश पाता है। उसे भगवान वृषभसेन दिखते हैं तो वे ही पुरुदेव तथा आदिनाथ भी प्रतीत होते हैं।

योगीन्द्र पूज्यपाद ने भगवान को शिव, जिन, बुद्ध आदि नामों द्वारा स्मरण किया है –

जयन्ति यस्याऽवदतोऽपि भारती-
विभूतयस्तीर्थ-कृतोऽप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे,
जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥२॥

तालु, ओष्ठादि का अवलंबन न लेकर बोलते हुए तथा इच्छा-विमुक्त जिन तीर्थंकर की वाणी तथा प्रभामंडलादि विभूतियाँ जयवंत होती हैं, उन शिव (कल्याण), धाता (ब्रह्मा), सुगत (बुद्ध) विष्णु (केवलज्ञान के द्वारा सर्वत्र व्याप्त होने वाले) जिन सकलात्मा (शरीर सहित जीवनमुक्त अरहंत भगवान) परमात्मा को नमस्कार है।

विविध धर्मों में भी पूज्य शब्दों द्वारा स्मरण किये जाने वाले नामों का संकलन कर भगवज्जिनसेन ने धार्मिक मैत्री के लिए प्रकाशस्तंभ का निर्माण किया है, जिससे भिन्न-भिन्न धर्मों में समन्वय और प्रेम की भावना तथा भाईचारे की दृष्टि वृद्धिंगत हो। इस नाम-स्तोत्र में आगत ये नाम ध्यान देने योग्य हैं। भगवान को मृत्युंजय कहा है, कारण उन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार अन्य नाम हैं जिनका अर्थ अनुवाद मे दिया गया है। सहस्रनाम के प्रारंभ में जो स्तवन है उसमें ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं- मृत्युंजय (पद्य ५), त्रिपुरारि (६) त्रिनेत्र (७) अर्धनारीश्वर (८) शिव हर शंकर (९) परम विज्ञान (२८)।

सहस्रनाम में दस अध्याय हैं। **प्रथम अध्याय में** विश्वात्मा (२), विश्वतश्चक्षु (३) विश्वतोमुख (४) विष्णु (६) ब्रह्मा (७) बुद्ध (१०) परमात्मा परंज्योति (१२)।

द्वितीय अध्याय में - भुवनेश्वर (३) हिरण्यनाभि, हिरण्यगर्भ (७) **अध्याय तृतीय** - पृथ्वीमूर्ति, वायुमूर्ति (५) व्योममूर्ति सूर्यमूर्ति (७) सोममूर्ति, मंत्रमूर्ति (६) परब्रह्म (१०) पुरुषोत्तम (११) **चौथा अध्याय** - पद्मनाभि पद्मसंभूति (१) हृषीकेश (२) पिता-पितामह (१०) **पंचम अध्याय** - पुण्डरीकाक्ष (१)।

षष्ठ अध्याय - प्रणव (११) **सप्तम अध्याय** - मनु (४) श्रीनिवास (७) **अष्टम अध्याय** - पद्मगर्भ (३) दैव (६) **नवम अध्याय** - आदिदेव, पुराण पुरुष (२) जगन्नाथ (५) **दशम अध्याय** - (लक्ष्मीपति, कल्पवृक्ष) (१०) त्र्यंबक (१२) जगत्पाल (१४) आदि महत्त्वपूर्ण शब्द विद्यमान हैं। हिन्दू धर्म के विष्णु सहस्रनाम में जैनधर्म में वंदित भगवान् वृषभदेव तथा वर्धमान को स्मरण किया गया है–

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥४१॥

उसमें तीर्थंकर का नाम भी दिया गया है-

मनोजवः तीर्थंकरः वसुरेता वसुप्रदः'' ॥८७॥

नामस्मरण का महत्त्व :

महाकवि भगवज्जिनसेन स्वामी ने महापुराण में लिखा है कि इस नाम-स्तुति के द्वारा जो निर्मलता प्राप्त होती है उससे भावक की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं, उसका पापोदय क्षय को प्राप्त होता है। उसकी स्मरण-शक्ति विशुद्ध होती है- **पुमान् पूतस्मृतिर्भवेत्**। उसके द्वारा **स्तोता अभीष्टफलं लभेत्** - स्तुतिकर्ता की कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस स्तुति का अन्तिम फल मोक्ष का सुख है- **फलं नैश्रयसं सुखम्।** इसलिए आचार्य जिनसेन स्वामी ने लिखा है- **''ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान् पठतु''** पुण्यार्थी पुरुष सदा इस सहस्रनाम स्तोत्र का पाठ करें।

निवेदन :

यह मेरा हिन्दी टीका करने का प्रथम प्रयास है। न तो मैं व्याकरण जानती हूँ और न ही संस्कृत का मेरा गहरा अभ्यास है। मात्र भक्ति ही कारण बनी है। सीकर चातुर्मास में मैंने यह स्तोत्र श्रावकों को पढ़ाया था। पूज्य माताजी समीप ही बैठा करती थीं, तब माताजी ने मुझे प्रेरणा दी कि इसका हिन्दी अर्थ कर दो, सबके लिए उपयोगी होगा। तब मैंने साहस करके यह कार्य किया है। त्रुटियाँ अवश्य होंगी जो मेरी अपनी हैं। कृपया विज्ञजन सुधार कर वाचन करें।

डॉ. प्रमिला जैन
संघस्था

बा. ब्र. डॉ. प्रमिला जैन

- संक्षिप्त परिचय -

मध्य प्रदेश राज्य के संस्कारधानी नगर जबलपुर में श्रेष्ठिवर पिता सिंघई रामचंद्र जी के परिवार में माँ श्रीमती पुत्तीदेवी के गर्भ से भाद्र कृष्णा द्वितीया संवत् २०१० को एक बालिका का जन्म हुआ। सांवली सूरत, मोहिनी मूरत, बड़े-बड़े नेत्र। परिवार में सबसे छोटी, अतः लाड़-दुलार की अधिकता में थोड़ा जिद्दी होना स्वाभाविक था। बालसुलभ क्रीड़ाओं से सबका मन मोहती हुई उम्र की सीमा पार करते हुए पाठशाला की ओर अभिमुख हुई। प्रमिला नाम से परिचित हुई। माँ के अभूतपूर्व संस्कारों की छाप ने विद्वत्ता की अलख जगाई। अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक, सामाजिक तथा शालेय कार्यक्रमों में अच्छी रुचि के कारण अनेक बार सम्मानित तथा प्रशंसित हुई। तीन भाइयों तथा दो बहनों से युक्त परिवार की संपन्न स्थिति के संग पूरे परिवार में प्रेम-वात्सल्य मानों कूट-कूट कर भरा था। सुख-दुख की घड़ियों में सभी सहभागी रहते। पिताश्री शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ थे तथा माँ सुमधुर जैन भजन रचयित्री एवं गायिका थीं, जिन्हें 'कीर्तनरत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया। बच्चों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ माँ के धार्मिक, नीतिज्ञ, सदाचारयुक्त संस्कार मिलते रहे। माता-पिता द्वारा दिये गये बचपन के संस्कार ही जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इन्हीं नीतिगत आधारों का सूक्ष्म प्रभाव उस नन्ही प्रमिला के हृदय-पटल पर वज्ररेखा सदृश अंकित हो गया।

बचपन की दहलीज पार करके यौवनावस्था में कदम रखा। **परमपूज्य १०५ आर्यिका इंदुमतीजी** का ससंघ पदार्पण नगर में संवत् २०२८ में हुआ। संघस्थ परम विदुषी **आर्यिका सुपार्श्वमतीजी** के प्रवचनों से जनसैलाब आनंदित हो उठा, धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। एक दूसरे के द्वारा माताजी के प्रवचनों की बात जन-जन तक पहुँची। चैत्र कृष्णा तृतीया संवत् २०२८ को अपनी माँ के साथ प्रमिला भी माताजी के प्रवचन सुनने गई, पूज्य माताजी से परिचय हुआ। माताजी की शैली बहुत सरल, सुंदर, प्रभावशाली थी। सभी जन एकाग्रचित्त से प्रवचन सुन रहे थे। प्रमिला के हृदय पर प्रवचनों का विशेष प्रभाव पड़ा। माताजी के शब्द कानों में गुंजायमान होते रहे। समाज से धर्म के नाम पर मांगी गई निधि की बात प्रमिला के मन को उद्वेलित कर गई। यह बात उस समय की है जब संघ में ब्रह्मचारिणी बहिनों की कमी थी और बहनें उस मार्ग पर जाने की सोचती भी नहीं थीं। ऐसे विकट समय में प्रमिला के मन में एक गंभीर मंथन चलता रहा। एक गांभीर्य मुख पर विद्यमान हो गया। सायंकाल घर लौटी। शांतिपूर्वक भोजन किया, चिंतन की धारा बहती रही। माताजी का संघ विहार कर अतिशय क्षेत्र **पनागर** पहुँचा।

प्रमिला ने मन-ही-मन कुछ संकल्प लिया और अपनी माँ से पूज्य सुपार्श्वमतीजी

के साथ जाने की बात कही। पहले तो माँ ने समझाया, प्रमिला के मन को टटोला, उस मार्ग में होने वाली कठिनाइयों से अवगत कराया, पर प्रमिला जिद्दी तो थी ही, मानती कैसे। बोली, अच्छा एक बार माताजी के दर्शन करने चलो। चैत्र कृष्णा पंचमी संवत् २०२८ को पनागर दर्शन करने पहुँची। पूज्य आर्यिकाजी के आशीषों का प्रभाव मन के कोने तक पहुँच गया, वापस लौटने का नाम नहीं। प्रमिला का ऐसा दृढ़ निश्चय देख परिवार को हार माननी पड़ी और अल्पवयस प्रमिला चल पड़ी उस महान् मार्ग पर जो वास्तव में जीवन का लक्ष्य होता है।

पूज्य इंदुमतीजी का दृढ़ अनुशासन, **पूज्य सुपार्श्वमतीजी** का अथाह ज्ञान, वात्सल्य, **पूज्य विद्यामतीजी, पूज्य सुप्रभामतीजी** की जिनवाणी के प्रति श्रद्धा, निष्ठा, कार्यकुशलता में प्रमिला के पाषाण जीवन को एक आकार मिलने लगा। चैत्र शुक्ला प्रतिपदा २०२९ को अशुद्ध जल का त्याग कर संयम मार्ग की ओर कदम बढ़ाया। स्वयं की लगन, कार्यशीलता, स्नेहिल स्वभाव, प्रसन्नचित्त हृदय ने गुरुओं की शिक्षाओं, उपदेशों, अनुशासन, अध्ययन, पठन-पाठन, धार्मिक क्रियाकलापों को बड़ी स्फूर्तिपूर्वक आत्मसात किया। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखते हुए माँ सुपार्श्वमती की छत्रछाया में धार्मिक ज्ञान के साथ-साथ शालेय शिक्षा के क्रम को आगे बढ़ाया। बी.ए., एम.ए. प्राकृत, संस्कृत में करते हुए जैनागम के क्लिष्ट ग्रंथ षट्खंडागम पर शोध कार्य करने हेतु अग्रसर हुई। रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय के प्राकृत विभाग प्रमुख डॉ. विमलप्रकाश जी का कुशल निर्देशन, भाइयों का सहयोग मिला, गुरुओं का आशीर्वाद तो सदैव से था ही, स्वयं की निष्ठा एवं अटूट लगन ने शोधकार्य में सफलता दिलाई। **'षट्खंडागम में गुणस्थानविवेचन'** विषय पर **पीएच.डी.** उपाधि से विभूषित हुई। गुरुमाता और संघ के प्रति सदैव पूर्णरूपेण समर्पित भावों से अध्ययनक्रम चलता ही रहा। स्त्रीपर्याय और भवसागर से पार होने का भाव संजोये ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को सम्मेद शिखरजी में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। ज्ञान का तेज मुख पर प्रकट होने लगा।

उपदेशों, विधानों, प्रतिष्ठाओं, धार्मिक आयोजनों, सामाजिक सुधारों, लेखन, अध्ययन-अध्यापन शिविरों जैसे अनेक क्षेत्रों में सराहनीय योगदान किया। गुरुआशीष से कार्यों में अच्छी सफलता मिली। सुमधुर भजनों की शृंखला ने भक्तजनों के हृदयों को अभिभूत कर दिया। वाणी की मिठास, शैली की सरलता, सहजता, भाषा का सरल प्रयोग श्रोताओं का मन मोह लेते। आर्यिकाओं का भरपूर आशीर्वाद पाया। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अच्छे धैर्य एवं पराक्रम का परिचय दिया। पूर्वांचल भारत के आसाम, नागालैंड, बिहार, बंगाल में आर्यिका संघ ने धर्म का डंका बजाया। धार्मिक प्रभावना की जिसमें प्रमिला जी का प्रबल योगदान रहा। पूज्य इंदुमती जी का वियोग सहा। संवत् २०३९ के

फागुन मास में पूज्य इंदुमती जी के अभिनंदन ग्रंथ विमोचन पर सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण किये। पूज्य इंदुमती जी की भावना के अनुरूप **'मध्यलोक शोध संस्थान'** की रचना तीर्थराज सम्मेद शिखर में हुई। 'मध्यलोक' के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में प्रमिला जी ने अपने तन-मन की सुध खोकर भी उसे ऐतिहासिक रूप देने का कुशल निर्देशन दिया। आज भी उस आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है।

पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती जी ने ससंघ बुंदेलखंड की यात्रा करते हुए राजस्थान की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में प्रमिला जी के गृहनगर जबलपुर में संघ का पदार्पण हुआ। जननी माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती जी ने उन्हें आर्यिका दीक्षा देकर पूज्य निश्चलमती नाम दिया तथा उनकी संलेखना पूर्वक समाधि हुई। इस घड़ी में भी प्रमिला जी का मन विचलित नहीं हुआ और संघ ने बुंदेलखंड के तीर्थों की वंदना करते हुए राजस्थान में प्रवेश किया। अचानक वातावरण के परिवर्तन ने प्रमिलाजी के स्वास्थ्य को बाधित किया पर उत्साह में कमी न आई। श्रीमहावीरजी, नागौर, जयपुर, सीकर, उदयपुर, पारसोला के सफल चातुर्मास में आचार्यों का समागम मिला। आचार्य वर्धमानसागरजी के संघ के साथ चातुर्मास करने का सौभाग्य मिला। खूब धर्म प्रभावना हुई। परम विदुषी पूज्य आर्यिका विशुद्धमती जी की समाधि का सान्निध्य मिला। पूज्य आर्यिका सुपार्श्वमती जी और प्रमिला जी मानों एक दूसरे के पूरक बन गये।

अपने गुरु के प्रति इस प्रकार का समर्पण भाव विरला ही देखने को मिलता है। संघ की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया। निरंतर गिरते स्वास्थ्य ने कार्यों की गति को सीमा तो दी पर उत्साह, लगन में कोई कमी न आई। आज पूरे देश में डॉ. प्रमिला जी का नाम उच्च कोटि के विद्वानों की श्रेणी में आता है। वर्तमान में जैनगजट के सह-संपादन का भार भी वहन किए है।

ऐसी विलक्षण, प्रतिभा की धनी, गुरु के प्रति पूर्णत: समर्पित, आगमानुसार चर्या की साधिका, मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख प्रखर विदुषी डॉ. प्रमिला जी के दीर्घ जीवन की कामना करते हुए शत-शत वंदन करता हूँ।

डॉ. सिंघई प्रभात जैन
जबलपुर

ॐ

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

अन्वयार्थ : अभीष्टसिद्धये = मनोवांछित पदार्थ की सिद्धि (प्राप्ति) के लिए। **प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणं** = प्रसिद्ध एक हजार आठ लक्षणों को प्राप्त। **गिरां** = वाणी के। **पतिम्** = पति। **त्वां** = तुझको। **अष्टसहस्रेण** = एक हजार आठ। **नाम्नां** = नामों के द्वारा। **तोष्टुमः** = हम स्तुति करते हैं।

भावार्थ : 'हे प्रभो! हमें इष्टपदार्थ की प्राप्ति हो' इस अभिप्राय से जगविख्यात तथा उत्कृष्ट जिनके नाम हैं तथा जो सात सौ लघुभाषा एवं अठारह महाभाषाओं के अधिपति हैं, ऐसे आपकी अर्थात् ब्राह्मी तथा सुन्दरी दो कन्याओं के जनक ऐसे आदि प्रभु की एक हजार आठ नामों से हम बार-बार स्तुति करते हैं।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शम्भवः शम्भुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥

अन्वयार्थ : श्रीमान् = बहिरंगा समवसरणलक्षणाश्रीः अंतरंगा केवलज्ञानादिका श्रीः विद्यते यस्य स श्रीमान् = तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति का उदय होने से आदिप्रभु का दोनों लक्ष्मियों ने आश्रय ले लिया था अतः समवसरण आदि बहिरंग और अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये अंतरंग लक्ष्मी जिसके हैं वे श्रीमान्। **स्वयम्भू** = स्वयं भवतीति स्वयंभू = जो स्वशुद्धिशक्ति थी वह स्वयं प्रकट हुई थी। स्वयमात्मना गुरु-

निरपेक्षतया भवति, निर्वेदं प्राप्नोति = जो गुरु अपेक्षा के बिना स्वयं ही संवेग निर्वेद को प्राप्त होते हैं।

संवेगः परमा प्रीतिर्धर्मे धर्मफलेषु च।
निर्वेदो देहभोगेषु संसारेषु विरक्तता ॥

धर्म में, धर्म के फल में परम प्रीति होना **संवेग** है तथा संसार, शरीर और भोगों से विरक्तता **निर्वेद** कहलाती है।

लोकालोकस्वरूपं जानातीति स्वयंभूः = जो लोकालोक के स्वरूप को स्वयं जानते हैं।

स्वयं भवति निजस्वभावे तिष्ठतीति स्वयंभूः = जो अपने स्वभाव में रहते हैं। 'भू' धातु सत्ता अर्थ में प्रयुक्त की जाती है।

भव्यानां मंगलं करोतीति स्वयंभूः = भव्यों का जो मंगल करता है वह। 'भू' धातु मंगल अर्थ में भी आती है।

निजगुणैर्वृद्धिं गच्छतीति स्वयंभूः = जो अपने गुणों के द्वारा स्वयं ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यहाँ वृद्धि अर्थ में 'भू' धातु प्रयुक्त है।

निर्वृतौ वसतीति स्वयंभूः = जो मोक्ष में बसते हैं। यहाँ 'भू' धातु का अर्थ 'निवास' है।

केवलज्ञानदर्शनद्वयेन लोकालोकौ व्याप्नोति इति स्वयंभूः = जो केवलज्ञान एवं दर्शन के द्वारा लोकालोक में व्याप्त है। 'भू' धातु 'व्याप्ति' अर्थ में प्रयुक्त है।

संपत्तिं करोति भव्यानामिति स्वयंभूः = जो भव्यों को सम्पत्तियुक्त करते हैं। संपदा अर्थ में 'भू' धातु है।

जीवानां जीवनाभिप्रायं करोति इति स्वयंभूः = जो जीवों के जीवन अभिप्राय को स्वयं जानते हैं। यहाँ 'अभिप्राय' अर्थ में 'भू' धातु है।

द्रव्यपर्यायान् ज्ञातुं शक्नोतीति स्वयंभूः = जो द्रव्य एवं पर्यायों को जानने में समर्थ हैं। यहाँ 'भू' 'शक्ति' अर्थ में प्रयुक्त है।

ध्यानिनां योगिनां प्रत्यक्षतया प्रादुर्भवति इति स्वयंभूः = ध्यान करने वाले योगियों में जो प्रभु प्रत्यक्ष प्रगट होते हैं। यहाँ 'भू' धातु का प्रयोग 'प्रादुर्भाव' में है।

ऊर्ध्वव्रज्यास्वभावेन त्रैलोक्याग्रे गच्छतीति स्वयंभूः = जो ऊर्ध्ववर्ती स्वभाव से सिद्धशिला में जाते हैं। 'गतौ' अर्थ में भी 'भू' धातु होती है। व्याकरण ग्रन्थ में कहा है -

सत्तायां मंगले वृद्धौ निवासे व्याप्तिसंपदोः।
अभिप्राये च शक्तौ च प्रादुर्भावे गतौ च भूः॥

वृषभः = 'पृषु वृषु उक्ष सेचने' = जो धर्म जल की वृष्टि करते हैं ऐसे प्रभु आदिजिन को वृषभ कहते हैं।

वृष - धर्म जो अहिंसा लक्षण से पहचाना जाता है उससे जो शोभता है वह वृषभ है।

भक्तेषु कामानां वर्षणात् वृषभः = भक्तों की अभिलाषाओं की वृष्टि करने से भगवान वृषभ हैं।

वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो वर्षिष्यति जगद्धितं।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तमकार्षुर्वृषभाह्वयं॥

त्रैलोक्य में सबसे ज्येष्ठ ऐसे ये प्रभु जगत के हित करने वाले धर्मामृत की वृष्टि करेंगे ऐसा मन में विचार कर इन्द्रों ने प्रभु को वृषभ नाम से बुलाया।

स्वर्गावतरणे दृष्टः स्वप्नेऽस्य वृषभो यतः।
जनन्या तदयं देवैराहूतो वृषभाख्यया॥

स्वर्ग से अवतरण करने के समय माता मरुदेवी ने स्वप्न में वृषभ-बैल देखा था अतः वृषभ नाम से आदिप्रभु देवों से बोले गये।

वृषो हि भगवान् धर्मस्तेन यद्भाति तीर्थकृत्।
ततोऽयं वृषभः स्वामीत्याह्वास्तैनं पुरन्दरः॥

स्वर्ग-मोक्षरूप ऐश्वर्य प्रदान करने वाले धर्म का वृष नाम है। ये आदिप्रभु

उस धर्म से शोभित हैं अतः पुरन्दर ने, इन्द्र ने आदि प्रभु को वृषभ स्वामी नाम से प्रसिद्ध किया।

शंभवः = 'शं सुखं भवति यस्मादिति शम्भवः' जिससे सुख की प्राप्ति होती है उसे शम्भव कहते हैं और आदि प्रभु ने भव्यों को सुखप्राप्ति के लिए गृहस्थधर्म तथा मुनिधर्म का उपदेश दिया था अतः उनका शम्भवनाम सार्थक है।

'सम्भव' ऐसा भी पाठ है - सं समीचीन - उत्तम-निर्दोष भव यानी जन्म जिसका है, ऐसे प्रभु को संभव कहना भी योग्य है। सं - समीचीन भाव - अरुद्रभाव - क्रूरतारहित शान्तमूर्ति जिसकी है ऐसा भव है जिसका उसको संभव कहते हैं।

शम्भुः = ''शं परमानंदलक्षणं सुखं भवत्यस्मात् शंभुः'' = परमानन्द जिसका लक्षण है ऐसे सुख की जिससे भक्तों को प्राप्ति होती है उसे शंभु कहते हैं।

आत्मभूः = आत्मना भवतीति आत्मभूः। आत्मा शुद्धबुद्धैक-स्वभाव-श्चिच्चमत्कारैकलक्षणः परमब्रह्मैकस्वरूपष्टङ्कोत्कीर्ण-स्फटिक-मणिमतल्लिका बिम्ब सदृशी भूर्निवासस्थानं यस्य स आत्मभूः। आत्मा अपने शुद्ध ज्ञानरूप एकस्वभाव को धारण करने वाला है तथा चैतन्य चमत्कार ही उसका एक लक्षण है, परमब्रह्म एकस्वरूपमय है, टाँकी से उकेरे गये स्फटिकमणि में पदार्थ प्रतिबिम्ब जैसा निर्मल दीखता है वैसा निर्मल ज्ञानमय आत्मा जिसका निवासस्थान है, उसे आत्मभू कहते हैं। आत्मा सचक्षुषामगम्योऽपि सत्तारूपतयास्त्येव यन्मते स आत्मभूः = आत्मा नेत्र वालों को भी नहीं दीखता है तथापि वह सत्तारूप से है, ऐसा जिनमत में कहा है, जिनेश्वर ने आत्मा का स्वरूप सत्ता रूप है, ऐसा कहा है अतः जिनेश आत्मभू है।

आत्माभूर्वृद्धिर्यस्य स आत्मभूः = आत्मा भू वृद्धिस्वरूप है ऐसा जिनेश्वर कहते हैं इसलिए आप आत्मभू हो।

आत्मना भवति केवलज्ञानेन चराचरं व्याप्नोति इति आत्मभूः = केवलज्ञान से चराचर पदार्थों को जिनेश्वर व्यापते अतः आत्मभू हैं।

आत्मा भू: अभिप्रायो यस्य स आत्मभू: = आत्मा ही जिनका अभिप्राय स्वरूप है।

आत्मनि भवति प्रादुर्भवति ध्यानेन योगिनां प्रत्यक्षीभवति आत्मभू:= निर्मल ध्यान के द्वारा योगियों को जिनेश्वर प्रत्यक्ष दिखते हैं इसलिए आत्मभू हैं।

आत्मना भवति गच्छति भुवनस्वरूपं द्रव्यपर्यायसहितं उत्पादव्यय-ध्रौव्यलक्षणं जानाति करणक्रमव्यवधानरहिततया स्फुटं पश्यति च आत्मभू: = जो आत्मा के द्वारा ही त्रिभुवन के स्वरूप को जानते हैं, अत: यह त्रिलोक द्रव्य तथा पर्याय सहित है, उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य स्वरूप है, ऐसा जानते हैं इसलिए आत्मभू कहते हैं।

स्वयंप्रभ: = स्वयं प्रभाति शोभते स्वयंप्रभ: = प्रभु स्वयं शोभा युक्त हैं, अलंकार वस्त्रादि के बिना भी सुन्दर हैं -

'अनलंकारसुभगा पान्तु युष्माञ्जिनेश्वरा:' अलंकारों के बिना भी सुन्दर ऐसे जिनेश्वर आपकी रक्षा करें।

प्रभु: = 'प्रभवति समर्थो भवति सर्वेषां स्वामित्वात् प्रभु:' 'भुवो डुर्विशंप्रेषु च' = जिनका प्रभाव या स्वामित्व सब इन्द्रों पर भी है[१] इसलिए प्रभु हैं।

भोक्ता: = 'भुङ्क्ते परमानन्दसुखमिति भोक्ता' = परमानन्द सुखों का प्रतिसमय अनुभव करने वाले होने से प्रभु भोक्ता हैं।

विश्वभू: = विश्वस्मिन् भवति केवलज्ञानापेक्षया निवसति इति विश्वभू: । केवलज्ञान की अपेक्षा प्रभु सम्पूर्ण विश्व में निवास करते हैं इसलिए विश्वभू हैं।

विश्वस्य मंगलं करोति इति विश्वभू: = विश्व का मंगल करते हैं, इसलिए विश्वभू हैं।

विश्वस्य भवति वृद्धिं करोतीति विश्वभू: = विश्व की वृद्धि-उन्नति करते हैं इसलिए विश्वभू हैं।

---

१. विश्वकोश, हेमचन्द्र कोश में

विश्वं भवति व्याप्नोति केवलज्ञानापेक्षया इति विश्वभू: = सम्पूर्ण विश्व में प्रभु का केवलज्ञान फैल गया इसलिए विश्वभू कहलाते हैं। 'सर्वे गत्यर्था धातवो ज्ञानार्था:' इति वचनात् अर्थात् जो-जो गत्यर्थक धातु हैं वे ज्ञान के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं।

अपुनर्भव: = न पुनर्भवति संसारे अपुनर्भव: अथवा न विद्यते पुनर्भव: संसारो यस्येति अपुनर्भव: = संसार में प्रभु पुन: उत्पन्न नहीं होते, भव धारण नहीं करते अत: वे अपुनर्भव हैं।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षर:।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वर: ॥३॥

विश्वात्मा = यथा चक्षुषि स्थितं कज्जलं चक्षुरिति, प्रस्थप्रमितं धान्यं प्रस्थ इत्युपचर्यते तथा विश्वस्थित: प्राणिगणो विश्वशब्देनोच्यते। विश्वं आत्मा निजसदृशो यस्येति स विश्वात्मा जैसे चक्षु में लगा हुआ काजल चक्षु कहलाता है। प्रस्थ से नापा हुआ धान्य प्रस्थ कहा जाता है, वैसे विश्व में स्थित प्राणी समूह को भी विश्व कहते हैं, अत: प्रभु विश्व को अपने समान मानते हैं इसलिए वे विश्वात्मा कहे जाते हैं, या विश्व का अर्थ केवलज्ञान है वह केवलज्ञान जिनेश्वर का स्वरूप है अत: वे विश्वात्मा हैं।

विश्वलोकेश: = विश्वलोकस्य त्रैलोक्यस्थितप्राणिगणस्य ईश: प्रभु: स विश्वलोकेश: = तीन लोक में रहने वाले प्राणिसमूह के प्रभु ईश स्वामी हैं अत: उन्हें विश्वलोकेश कहा जाता है।

विश्वतश्चक्षु: = विश्वत: विश्वस्मिन् चक्षु: केवलदर्शनं यस्येति विश्वतश्चक्षु:। सार्वविभक्तिकं तसित्येके = सारे लोक में चक्षु यानी केवलदर्शन रूप नेत्र जिनका फैला हुआ है वे विश्वतश्चक्षु हैं।

अक्षर: = 'क्षर संचलने' न क्षरति न चलति प्रधानत्वादिति अक्षर: = जो प्रधानगुण ज्ञानादि उनसे कभी भी चलित या रहित, च्युत नहीं होते अत: वे अक्षर हैं, या अश् धातु का अर्थ भोजन करना है, जो अनन्तज्ञानादि सुधा का भोजन करते हैं अत: उन्हें इसलिए भी अक्षर कहते हैं। अक्षाणि इंद्रियाणि

राति मनसा सह वशीकरोति इति अक्षरः = अक्ष यानी इन्द्रियाँ उन्हें जिन्होंने मन के साथ वश कर लिया वे भी अक्षर हैं।

श्रुतसागर आचार्य ने एक जगह अक्षर शब्द के अनेक अर्थों का निरुक्तिपूर्ण विवेचन किया है। वह भी यहाँ उल्लेख करने योग्य है।

मोक्ष को अक्षर कहते हैं और मोक्ष प्रभु का स्वरूप है अतः वे 'अक्षर' हैं।

'अर्हं' इस अक्षर रूप जिनेश्वर हैं अत: वे अक्षर हैं। अ बीजाक्षर ब्रह्मरूप है, क्ष क्षरण अर्थात् नाशक पापों का नाशक या संसार का नाशक धर्म है अर्थात् क्ष धर्मरूप है और र अग्निवाचक होने से आप तप रूपी अग्नि से युक्त थे अतः तपरूप होने से अक्षर हैं। अक्ष ज्ञान - केवलज्ञान ज्योति को राति = भक्तों को देते हैं अत: अक्षर रूप हैं।

आत्मा को भी अक्ष कहते हैं, उसको राति स्वीकरोति अर्थात् अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को जिन्होंने स्वीकारा अत: अक्षर हैं।

अक्षर शब्द का अर्थ 'व्यवहार' है, प्रभु ने तो स्वयं निश्चय नय का आश्रय लिया किन्तु व्यवहार को, दान-पूजादिकों की रीति को -राति प्रवर्तयति=लोक में प्रवर्ताया अतः अक्षर हैं।

विश्ववित् = 'विश् प्रवेशने विशति लोकेऽस्मिन् इति विश्वं।

'अशिलटिखटिविशिभ्यः कः' विश्वं जगत् वेत्तीति विश्ववित्। = विश्व या जगत् जिसे प्रभु केवलज्ञान से जानते हैं अत: वे विश्ववित् हैं।

विश्वविद्येशः = विश्वा चासौ विद्या च विश्व विद्या सकलविमलकेवल-ज्ञानं तस्याः ईशः स्वामी स विश्वविद्येशः = पूर्ण निर्मल केवलज्ञान को विश्वविद्या कहते हैं, जिनेश्वर उसके स्वामी हैं।

विश्वा विद्या विद्यन्ते येषां ते विश्वविद्याः श्रुतकेवलिगणधर केवलिनस्तेषां ईशः विश्वविद्येशः = सम्पूर्ण श्रुतज्ञान जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे श्रुतकेवली तथा गणधर विश्वविद् हैं और उनके ईश जिनेश्वर हैं अतः आप विश्वविद्येश हैं।

विश्वासु विद्यासु स्वसमय परसमयसम्बन्धिनीषु विद्यासु लोकप्रमाण-प्रसिद्धासु चतुर्दशसु ईश: समर्थ: विश्वविद्येश:। कास्ता: स्वसमयविश्वविद्या एकादशांगानि, चतुर्दशपूर्वाणि चतुर्दशप्रकीर्णकानि च।

स्वसमय, परसमय सम्बन्धी जो लोकप्रसिद्ध तथा प्रमाणप्रसिद्ध चौदह विद्यायें हैं उनके जिनेश ईश समर्थ हैं, वे स्वसमय विद्याएँ कौनसी हैं? आचारांग आदि ग्यारह अंग, उत्पादादिक चौदह पूर्व और सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक ये स्वसमय सम्बन्धी चौदह विद्यायें हैं - कास्ता: परसमय चतुर्दश विद्या इति चेत् =

षडंगानि, चतुर्वेदा:, मीमांसा न्यायविस्तर:।
धर्म्मशास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश ॥

अर्थ : शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद, निरुक्त ये छह अंग हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद हैं। मीमांसा, पूर्व मीमांसा, उत्तरमीमांसा मिलकर एक मीमांसा है। न्यायविस्तर, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र ये अठारह स्मृतियाँ एवं अठारह पुराण ये परसमय सम्बन्धी चौदह विद्याएँ हैं।

अष्टादशस्मृतय: कास्ता: =

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्यौशनो गिरा:।
यमापस्तंवसंवर्त्ता: कात्यायनवृहस्पति: ॥

परासरव्यासशंखकथिता दक्षगौतमो।
शान्ता तपोविशिष्टश्च धर्मशास्त्र प्रयोजका: ॥

अठारह स्मृतियों के नाम – मनुस्मृति, अत्रिस्मृति, विष्णुस्मृति, हारीतस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, उशन:स्मृति, आंगिरसस्मृति, यमस्मृति, आपस्तम्बस्मृति, संवर्तस्मृति, कात्यायनस्मृति, वृहस्पतिस्मृति, पराशरस्मृति, व्यासस्मृति, शंखस्मृति, कथितस्मृति, दक्षस्मृति और गौतम स्मृति।

अष्टादशपुराणनामानि तेषां अन्तर्भेदा लोकतो ज्ञातव्या: =

मद्वयं भद्वयं चैव वत्रयं वाचतुष्टयं।
अनापकूस्कलिंगानि पुराणानि विदुर्बुधा ॥

मद्वय = मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, भद्वय = भागवतपुराण, भविष्योत्तरपुराण, बत्रय = ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वाचतुष्टय= विष्णुपुराण, वराहपुराण, वामनपुराण, वायुपुराण। अनापकूस्कलिंगानि = अग्निपुराण, नारदीयपुराण, पद्मपुराण, कूर्म्मपुराण, स्कंदपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, ये परमत पुराण हैं और जिनेन्द्र भगवान स्वसमय तथा परसमय दोनों ही विद्याओं के ईश हैं इसलिए इन्हें विश्वविद्येश कहते हैं।

विश्वयोनि = विश्वस्य समस्तपदार्थस्य योनि: उत्पत्तिस्थानं कारणं वा विश्वयोनि: = प्रभु समस्त पदार्थों के उत्पादक अर्थात् प्ररूपक उत्पत्तिस्थान हैं अत: विश्वयोनि कहलाते हैं। **अनश्वर:** = णश् अदर्शने णशो न:। नश्यति इत्येवंशीलो नश्वर: 'सृजीणनशां क्वरप्'। न नश्वर: अनश्वर: अविनाशक: इत्यर्थ:। जिनेश्वर अविनाशी हैं उनका शुद्ध ज्ञान दर्शनादिगुण का स्वरूप कभी भी नष्ट नहीं होता अत: वे अनश्वर अविनाशी हैं।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचन:।
विश्वव्यापी विधुर्वेधा: शाश्वतो विश्वतोमुख: ॥४॥

विश्वदृश्वा = विश्वं दृष्टवान् इति विश्वदृश्वा = सर्व जगत् को जिनेश्वर ने अपने केवलज्ञान से जाना देखा है, इसलिए उन्हें विश्वदृश्वा कहते हैं। **विभु:**= विभवति विशेषेण मंगलं करोति, वृद्धिं विदधाति, समवसरण सभायां प्रभुतया निविशति, केवलज्ञानेन चराचरं जगद्व्याप्नोति, सम्पदं ददाति, जगत्तारयामीति अभिप्रायं वैराग्यकाले करोति, तारयितुं शक्नोति, तारयितुं प्रादुर्भवति, एकेन समयेन लोकालोकं गच्छति जानातीति विभु: = प्रभु भक्तों का विशेष प्रकार से मंगल करते हैं। गुणों की वृद्धि करते हैं, समवसरण सभा में प्रभुत्व से रहते हैं, केवलज्ञान से चराचर जगत् को व्याप्त करते हैं, सम्पदा देते हैं, सर्वजगत् को संसार सागर से तारूँ ऐसा वैराग्य काल में मन में धारण करते हैं, तारने के लिए सामर्थ्य रखते हैं, तारने के लिए ही प्रकट होते हैं, एक ही समय में लोक तथा अलोक में जाते हैं अर्थात् लोक-अलोक को जानते हैं।

धाता= दधाति चतुर्गतिषु पतन्तं जीवमुद्धृत्य मोक्षपदे स्थापयतीति धाता।= नरकादि चारों गतियों में पड़नेवाले प्राणियों को उन गतियों से निकालकर

मोक्षस्थान में स्थापन करते हैं उसे धाता कहते हैं। दधाति प्रतिपालयति सूक्ष्मबादर पर्याप्तापर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तैकेंद्रियादि-पंचेन्द्रिय-पर्यंतान् सर्वजन्तून् रक्षति परमकारुणिकत्वात् धाता = सूक्ष्मबादर, पर्याप्त-अपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त ऐसे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रियपर्यन्त सर्व जीवों का परमदयालु होने से रक्षण करते हैं इसलिए वे धाता हैं।

विश्वेश: = विश्वस्य त्रैलोक्यस्य ईश: स्वामी विश्वेश: = विश्व के तीनलोक के ईश-स्वामी होने से आप विश्वेश हैं। **विश्वलोचन:** = विश्वेषां त्रिभुवनस्थित-प्राणि-वर्गाणां लोचनं चक्षु: समान: स विश्वलोचन:= आँख के समान सुख-प्राप्ति का मार्ग बताने वाले होने से विश्वलोचन हैं।

विश्वव्यापी = लोकपूरणप्रस्तावे विश्वं जगत् आत्मप्रदेशै-र्व्याप्नोतीत्येवंशीलो विश्वव्यापी = लोकपूरण समुद्घात में प्रभु अपने आत्म-प्रदेशों से सर्वजगत् को व्याप्त करते हैं, या केवलज्ञान से लोकालोक को व्यापनेवाले होने से विश्वव्यापी हैं।

विधु: = कर्मविधिं विदधाति इति विधु:। अथवा विधयन्त्येनं सुरा: विधु: धेट्पाने धातो: प्रयोगात्। व्यध् वेधने। विध्यति केवलज्ञानकिरणैर्महामोहान्धकारं इति विधु:। चंद्र का देव पान करते हैं, इसलिए चन्द्रमा को विधु कहते हैं, वैसे ही प्रभु केवलज्ञान किरणों से मोहान्धकार का पान करते हैं अत: वे विधु कहलाते हैं, **वेधा:** = विधति सृजति इति वेधा: विध् विधाने = विधि-विधान याने धर्मसृष्टि जिसे प्रभु ने उत्पन्न किया, सृजन किया इसलिए वेधा हैं।

शाश्वत: = शश्वते नित्ये भव: शाश्वत: = नित्य शाश्वत पद में स्थित रहते हैं अत: शाश्वत कहलाते हैं।

विश्वतोमुख: = विश्वतश्चतुर्दिक्षु मुखं वक्त्रं यस्येति विश्वतोमुख: केवलज्ञानवंतं स्वामिनं सर्वेऽपि जीवा निजनिजसम्मुखं पश्यंतीति भाव: = चारों दिशाओं में जिनेश्वर का मुख दिखता है और केवलज्ञान के बाद प्रभु के मुख को सब जीव अपने-अपने सम्मुख देखते हैं इसलिए इन्हें विश्वतोमुख कहते हैं। विश्वतोमुखं खलु जलमुच्यते तत्स्वभावत्वात् अमित जन्म पातक प्रक्षालकत्वात्, विषयसुखतृष्णानिवारकत्वात् प्रसन्नभावत्वाच्च भगवानपि

विश्वतोमुख उच्यते = पानी का एक नाम विश्वतोमुख है, और पानी जैसे मल को नष्ट करता है, वैसे प्रभु असंख्यजन्मों के पापों का नाश करते हैं, विषयतृष्णा का निवारण करते हैं, और जल के समान प्रसन्न रहते हैं, अत: विश्वतोमुख हैं। विश्वं संसारं तस्यति निराकरोति मुखं यस्येति विश्वतोमुख: = जिसका मुख संसार को तस्यति अर्थात् नष्ट करता है अर्थात् जिस मुख (जन्म) को पाकर फिर संसार की वृद्धि नहीं उसे भी विश्वतोमुख कहते हैं।

भगवन्मुख दर्शनेन जीव: पुन: संभवे न संभवेदिति भाव: अथवा विश्वत: सर्वांऽगेषु मुखं यस्येति विश्वतोमुख: = प्रभु के मुखदर्शन से जीव पुन: संसार में उत्पन्न नहीं होते, सर्व अंगों में जिनके मुख हैं, ऐसे प्रभु विश्वतोमुख कहे जाते हैं। सर्व प्राणियों में मुख्य होने से भी भगवान् विश्वतोमुख कहलाते हैं।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वर:।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वर: ॥५॥

विश्वकर्मा = विश्वं कृच्छं कष्टमेव कर्म यस्य मते स विश्वकर्मा = जितने ज्ञानावरणादि कर्म समूह हैं वे सब ही कष्टदायक हैं, ऐसा जिनेश्वर ने अपने मत में कहा अत: वे विश्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध हुए।

विश्वस्मिन् जगति कर्म्म लोकजीवनकरं क्रिया यस्य स विश्वकर्मा, कर्म अत्र असिमषिकृष्यादिकं राज्यावस्थायां ज्ञातव्यम्, विश्वेषु देवविशेषेषु त्रयोदशसंख्येषु कर्म्म सेवा यस्य स विश्वकर्म्मा = सब मनुष्यों के जीवनयापन के लिए असि, मषि, कृषि आदि षट्कर्म आवश्यक हैं ऐसा प्रभु ने राज्यावस्था में प्रजापालन करते समय उपदेश दिया अत: वे विश्वकर्मा हुए। अथवा त्रयोदश संख्या वाले विश्वदेव आपकी सेवा करते हैं इसलिए विश्वकर्मा हुए।

जगज्ज्येष्ठ: = षु स्तु द्रु द्रु ह्रु गमृ शपृ गतौ गम्। गच्छतीत्येवंशीलं जगत् ''द्युति गमोर्द्धे च क्विप्''। गमेर्द्धि वचनं, अभ्यासस्यादिव्यंजनमवशेष्यमकार-लोप:, कवर्गस्य चवर्गस्य ज:, जगत् जातं, पंचमोपधाया धुटि चागुणे दीर्घ:, यम-मन-तन-गमां क्वौ पंचमलोप:, आत् अत् धातोस्तोंत: पानुबंधे तोंत: विलोपोसि नपुंसकस्य मोलोपो न च तदुक्तं जगज्जातं, अयममीषां मध्ये प्रकृष्ट: प्रशस्य: ज्येष्ठ: तद्वदिष्टेमेयस्सु बहुलं इष्ट प्रत्यय: वृद्धस्य ज्य:, जगतां त्रिभुवन-स्थित प्राणि वर्गाणां मध्ये ज्येष्ठ: वृद्धो महान् श्रेष्ठो वा जगज्ज्येष्ठ: =

सृ, स्तु, द्रु, द्र, छु, गमृ, शपृ, गम्लृ धातु गमन अर्थ में है और गम्लृ का गच्छ आदेश होता है, गच्छ गच्छ यह द्वितीय हुआ। उसमें अभ्यास में आदि अक्षर का लोप हो जाता है इससे 'ग' का लोप होता है। 'च्छ' संयोगी का लोप होकर (च) का तीसरा अक्षर हो जाता है अत: जगत् शब्द की उत्पत्ति होती है।

विश्वमूर्त्तिः = विश्वं जगत् मूर्त्तौ शरीरे यस्य स विश्वमूर्त्तिः = विश्व जगत् है शरीर में जिसके वह विश्व मूर्ति। विश्वेन समस्तभुवनेनोपलक्षिता मूर्तिः शरीरं यस्य स विश्वमूर्त्तिः = विश्व से समस्त जगत से व्याप्त शरीर या मूर्ति जिसकी अत: हे प्रभु ! आपको विश्वमूर्ति कहते हैं। अत: जब जिनेश्वर लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब तैजस, कार्माण और औदारिक देह कर्म के साथ उनके आत्मप्रदेश समस्त जगत् में व्याप्त होते हैं, ऐसे समय में प्रभु का विश्वमूर्त्ति नाम चरितार्थ हो जाता है।

जिनेश्वरः = अनेक विषमभवगहन व्यसन प्रापणहेतून्, कर्म्मारातीन् जयति क्षयं नयति इति जिनं = संसार रूपी जंगल में अत्यन्त तीव्र कष्टों के कारण रूप कर्म रूपी शत्रुओं को जो जीतता है या उनका क्षय करता है वह जिन कहा जाता है।

एकदेशेन समस्तभावेन वा कर्म्मारातीन् जितवन्तो जिनाः। सम्यग्दृष्टयः श्रावकाः प्रमत्तसंयताः, अप्रमत्ताः, अपूर्वकरणाः, अनिवृत्तिकरणाः सूक्ष्म-साम्परायाः, उपशान्तकषायाः, क्षीणकषायाश्च जिन शब्देनोच्यन्ते, तेषामीश्वरः स्वामी जिनेश्वरः = एकदेश या सम्पूर्णतया कर्मशत्रुओं को जिन्होंने जीता है उन्हें जिन कहते हैं, सम्यग्दृष्टि, श्रावक, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशान्तकषाय तथा क्षीणकषाय इन गुणस्थानवर्त्ती जो जन हैं वे जिन शब्द से वर्णित होते हैं, उनके जो ईश्वर, स्वामी उन्हें जिनेश्वर कहते हैं।

विश्वदृक् = विश्वं सर्वं पश्यतीति विश्वदृक् = सम्पूर्ण विश्व को जो देखते हैं, उन्हें विश्वदृक् कहते हैं।

विश्वभूतेशः = विश्वेषां भूतानां प्राणिवर्गाणामीशः स्वामी विश्वभूतेशः

= सम्पूर्ण भूतवर्ग याने प्राणी समूह के जो ईश हैं, उन्हें विश्वभूतेश कहते हैं। विश्वभूस्त्रैलोक्यं तस्य ता लक्ष्मीस्तस्या ईश: विश्वभूतेश: = विश्वभू याने त्रैलोक्य उसकी जो ता = लक्ष्मी, उसके जो ईश हैं वे विश्वभूतेश हैं।

विश्वज्योति: = विश्वस्मिन् लोकेऽलोके च ज्योति: केवलज्ञान-दर्शनलक्षणं ज्योतिर्लोचनं यस्येति विश्वज्योति:। विश्वस्य लोकस्य ज्योतिश्चक्षु: विश्वज्योति:। लोकलोचनमित्यर्थ:। इस लोक में तथा अलोक में जो ज्योति: केवलज्ञान दर्शन लक्षणा ज्योति: नयन जिनके हैं वे विश्वज्योति हैं अथवा लोकालोक के लिए ज्योति: नयनस्वरूप जिनेश्वर हैं।

अनीश्वर: = न विद्यते ईश्वर: एतस्मादपर: स अनीश्वर: = जिससे जगत् में दूसरा कोई ईश्वर नहीं उन्हें अनीश्वर कहते हैं।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पति:।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धन: ॥६॥

जिन: = जि जये जयति कर्मारातीन् इति जिन: ''इणजिकृषिभ्यो नक्'' तथा चोक्तं द्रव्यसंग्रहटीकायां - काम क्रोधादि दोष जयेन, अनन्तज्ञानादि-गुणसहितो जिनो भण्यते = जिन धातु का अर्थ जय प्राप्त करना है, जिसने कर्मरिपुओं को जीत लिया है, उसको जिन कहते हैं, इसी अभिप्रायको **द्रव्यसंग्रहटीका** में लिखा है - काम-क्रोधादिदोषों को जीतने से अनन्त ज्ञानादिगुणसहित जो हो गया वह जिन कहा जाता है।

जिष्णु: = जयति सर्वोत्कर्षेण प्रवर्तते इत्येवंशीलो जिष्णु: = जो सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है ऐसे जिनप्रभु को जिष्णु कहते हैं। **अमेयात्मा** = अत् धातु: सातत्यगमनेऽर्थे वर्तते। गमनशब्देनात्र ज्ञानं भण्यते, सर्वे गत्यर्था: ज्ञानार्था: इति वचनात्। तेन कारणेन यथासंभवं ज्ञानसुखादिगुणेष्वासमन्तात् अतति वर्त्तते य: स आत्मा भण्यते। = आत्मा शब्द अत् धातु से उत्पन्न हुआ है। सतत गमन करना, यह अत् धातु का अर्थ है। यहाँ गमन शब्द ज्ञानवाचक मानना चाहिए, क्योंकि सर्वे गत्यर्था: ज्ञानार्था: ऐसा वचन है, इसलिए यथासंभव ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति, आदिक गुणों में आसमन्तात् चारों तरफ से जो सतत गमन करता है, वह आत्मा कहा जाता है। शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारो

यथासंभवं तीव्रमंदादिरूपेण समंतादतति वर्तते यः स आत्मा भण्यते। उत्पादव्ययै-रासमन्तात् वर्तते यः सः आत्मा। अमेयो अमर्यादीभूतो लोकालोकव्यापी आत्मा यस्यासौ अमेयात्मा॥ शुभाशुभ ऐसे मन वचन काय के व्यापार तीव्र, मन्द, मध्यम आदि रूप से चारों तरफ से जिसमें होते हैं, उसे या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये जिसमें सतत होते रहते हैं उसको आत्मा कहते हैं, अमेय याने मर्यादारहित लोकालोक व्यापी जिसका आत्मा है, उस जिनेश्वर को अमेयात्मा कहते हैं।

विश्वरीशः = विश्वरी - मही तस्याः ईशः स्वामी विश्वरीशः पृथ्वीस्वामी इत्यर्थः = पृथ्वी को विश्वरी कहते हैं, समस्त पृथ्वी के जो ईश हैं, स्वामी हैं, ऐसे भगवान विश्वरीश कहे जाते हैं।

जगत्पतिः = जगतां त्रिभुवनानां पतिः स जगत्पतिः = जो त्रिभुवनों के स्वामी हैं, उन्हें जगत्पति कहते हैं।

अनन्तजित् = अनन्तं संसारं जितवान् अनन्तजित् अथवा अनन्तं अलोकाकाशं जितवान् केवलज्ञानेन तत्पारं गतवान् अनन्तजित्=अनंत संसार को प्रभुने जीत लिया है अतः वे अनन्तजित् हैं, या अनन्त अलोकाकाश के पार को पा लिया है वे अनन्तजित् कहे जाते हैं। मोक्षगृहविशेषं जितवान् इति अनंतजित् = मोक्षगृह विशेष पर विजय पायी या जीत लिया उसे अनन्तजित् कहते हैं।

समन्तभद्रस्वामी ने कहा है-

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित्॥

अनन्तसंसार के कारण ऐसे मिथ्यात्वादिक दोषों के उदय से जो मलिन मनोभिप्राय यही जिसका शरीर है, ऐसा मोहमय पिशाच 'हृदय' में खूब चिपक गया था, परन्तु जीवादि सप्त तत्त्वों की श्रद्धा में प्रसन्न होकर हे अनन्तनाथ जिन ! आपने उसे जीत लिया था अतः आप भगवान् अनन्तजित् हो गये, अनन्तसंसार को जीतनेवाले ऐसे यथार्थ नामको धारण करने वाले आप हुए हैं।

अचिन्त्यात्मा = अचिन्त्यः वाङ्मनसोऽगोचर आत्मा - स्वरूपं यस्येति

अचिन्त्यात्मा अचिन्त्यस्वरूप इत्यर्थ: = हे भगवन् ! आपका आत्मा हमारे मन वचन के अगोचर है, अविषय है अत: आपके आत्मा का स्वरूप हम छद्मस्थ ज्ञानियों के लिए अतर्क्य है, इसलिए आप अचिन्त्यात्मा हो।

भव्यबन्धु: = भव्यानां रत्नत्रययोग्यानां बन्धुरुपकारक: स भव्यबंधु: = हे जिनेन्द्र ! आप रत्नत्रय योग्य ऐसे जीवों को जिनको जिनागम भव्य कहता है, उनके बन्धु हितकर्त्ता हैं, उपकारक हैं।

अबन्धन: = न बंधनं कर्मबंधनं यस्य स अबंधन: अथवा न बंधनानि मोह ज्ञानावरण दर्शनावरणान्तराय कर्म्माणि यस्य स: अबंधन: = हे प्रभो ! आप कर्मबन्धनों से रहित हैं, अत: अबन्धन हैं, कर्मबन्ध रहित हैं, अथवा मोह, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय ये कर्म आपके नहीं हैं अत: आप अबन्धन हैं।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममय: शिव:।
पर: परतर: सूक्ष्म: परमेष्ठी सनातन: ॥७॥

युगादिपुरुष: = युगेषु कृतयुगेषु आदिपुरुष: प्रथमपुरुष: इति युगादि पुरुष: = हे जिनेन्द्र ! आप कृतयुग में आदिपुरुष प्रथमपुरुष हो गये। **ब्रह्मा** = ''तृहिवृहिवृद्धौ'' - बृंहन्ति वृद्धिं गच्छन्ति केवलज्ञानादयो गुणा यस्मिन् स ब्रह्मा। तथा च उक्तं द्रव्यसंग्रहटीकायां ब्रह्मदेवेन परब्रह्मसंज्ञनिजशुद्धात्मभावना-समुत्पन्न सुखामृत तृप्तस्य सत: उर्व्वशीरंभातिलोत्तमादि देवकन्याभिरपि यस्य ब्रह्मचर्यव्रतं न खंडितं स ब्रह्मा भण्यते = केवलज्ञान, अनंतसुख, दर्शनादिक गुण आप में वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, अत: ब्रह्मा हो। द्रव्यसंग्रहटीका में ब्रह्मदेव जी ने लिखा है परमब्रह्मा जिसका नाम है, तथा जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुए सुखामृत से तृप्त है, उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमादिक, देवकन्याओं से भी जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित नहीं हुआ है उसे ब्रह्मा कहते हैं।

पंचब्रह्ममय: = पंचभिर्ब्रह्मभिर्मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलज्ञानैर्निर्वृत्तो निष्पन्न: स पंचब्रह्ममय: ज्ञानचतुष्टयं केवल-ज्ञानान्तर्गर्भितत्वात्, या पंचभिर्ब्रह्मभि: अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व्वसाधुभिर्निर्वृत्त: पंचब्रह्ममय: पंचपरमेष्ठिनां गुणैरुपेतत्वात् = पाँच ब्रह्मों से मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान

ऐसे पाँच ज्ञानों से प्रभु निष्पन्न हुए हैं, अत: वे पंचब्रह्ममय हैं, पहले चार ज्ञान केवलज्ञान में अन्तर्भूत करने से प्रभु पंचब्रह्ममय कहे जाते हैं, या अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ऐसे पंचब्रह्मों से प्रभु निष्पन्न हैं क्योंकि वे पचपरमेष्ठियों के गुणों से युक्त हैं।

शिव: = शेते परमानंदपदे तिष्ठतीति शिव:, उक्तं च-
शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शांतमक्षयं।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिव: परिकीर्त्तित: ॥

जो परमानंद पद में स्थिर रहता है, वह शिव है। कहा भी है- जो परमकल्याणरूप, शान्तियुक्त और क्षयरहित सदा विद्यमान तथा संसारदुखों से रहित तथा परमानन्दरूप मुक्तिस्थान जिसने प्राप्त किया वह शिव है, ऐसी अवस्था को जिनराज प्राप्त हुए हैं, और भी-

प्राणश्च क्षुत्पिपासे द्वे मनस: शोकमोहने।
जन्ममृत्यू शरीरस्य स षड्भी रहित: शिव: ॥

अर्थ : क्षुधा, प्यास ये दो प्राणों के भेद, मन के शोक और मोह तथा शरीर के जन्म और मृत्यु इस प्रकार छहों से रहित जो सुखमय अवस्था प्राप्त होती है, उसे शिव कहते हैं। **पर: =** पिपर्त्ति, पालयति, पूरयति लोकान् निर्वाणपदे स्थापयतीति पर: अच् = जो लोगों को गुणों से पूर्ण करता है, पालन करता है, रक्षण करता है तथा निर्वाणपद में स्थापित करता है, उसे पर कहते हैं।

परतर: = परस्मात् सिद्धात् उत्कृष्टतर: परतर: सर्वेषां धर्मोपदेशने गुरुत्वात् = पर याने उत्कृष्ट जो सिद्ध हैं और वे सिद्धों से भी उत्कृष्ट हैं, क्योंकि सर्व जनता को धर्मोपदेश देने से वे गुरु हैं, अत: परतर हैं।

सूक्ष्म: = सूक्ष्मो न लक्ष्यो दृशां इति वचनात् सूक्ष्मो इति भण्यते, सूक्ष्माऽतीन्द्रिय केवलज्ञान विषयत्वात् सूक्ष्मो भण्यते = आप इन्द्रियों से नहीं जाने जाते हैं, अलक्ष्य हैं, अगोचर हैं, अत: सूक्ष्म हैं, तथा अतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय हैं, इसलिए प्रभु सूक्ष्म हैं।

परमेष्ठी = परमे उत्कृष्टे इन्द्रधरणेन्द्रनरेन्द्र गणेन्द्रादिपदे तिष्ठतीति परमेष्ठी

इन्द्र, धरणेन्द्र, गणेन्द्र, नरेन्द्र आदिकों से वन्दनीय ऐसे उत्कृष्ट परम पद में जो विराजे हैं, अत: परमेष्ठी हैं।

सनातन: = सना सदाभव: सनातन: = सदाभव जिनेश्वर का शुद्धात्मरूप त्रिकाल में भी अबाधित रहता है, अत: वे सनातन नाम से कहे जाते हैं।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिज:।
मोहारिविंजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वज: ॥८॥

स्वयंज्योति: = स्वयं आत्मा ज्योति: चक्षुर्यस्येति स्वयंज्योति:, प्रकाशकत्वात् स्वयं सूर्य इत्यर्थ: = स्वयं आत्मा ही ज्योति चक्षु, नेत्र जिनका है ऐसे आप हैं, अर्थात् केवलज्ञान युक्त आपकी आत्मा ज्योतिसूर्य रूप है।

अज: = न जायते नोत्पद्यते संसारे इत्यज: = जो संसार में पुन: उत्पन्न नहीं होता ऐसा जिनपति अज है।

अजन्मा = न जन्म विद्यते गर्भवासो यस्येति स अजन्मा = जिसका गर्भ में आना नहीं रहा है, वह अजन्मा है।

ब्रह्मयोनि: = **आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्ते ताते च भरतराजस्य।**
ब्रह्मेति गी: प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा॥

आत्मा, मोक्ष, ज्ञान, वृत्तचारित्र तथा भरतराज के पिता इतने अर्थों में ब्रह्मशब्द का प्रयोग होता है, इससे भिन्न दूसरा कोई ब्रह्मा नहीं है और प्रभु आप ब्रह्म के अर्थात् तप, ज्ञान, आत्मा, मोक्ष तथा चारित्र के उत्पत्ति स्थान हैं, इसलिए ब्रह्मयोनि हैं। **अयोनिज:** = अयोनेर्जात: अयोनिज: अयोनौ जातो वा अयोनिज: पंचमगतौ स्त्रीणामभावत्वादिति =

पंचमगति में स्त्रियों का अभाव है, अत: उस गति को अयोनि-मोक्ष कहते हैं, मुक्तावस्था प्राप्त करने के लिए भगवान का जन्म हुआ है, अत: अब वे अयोनिज हो गये।

मोहारि: = मोहो मोहनीयं कर्म्म तस्यारि: शत्रु: स मोहारि: = मोहनीय कर्म का नाश प्रभु ने किया है, अत: वे मोह के शत्रु हैं। **विजयी** = विशिष्टो जयो विजय: भुक्तिपुर्यां गमनं विजयोऽस्यास्तीति विजयी, विजयते इत्येवंशीलो

विजयी = विशिष्ट जय को प्राप्त करना उसे विजय कहते हैं, मुक्तिपुरी में गमन करना उसे विजय कहते हैं, ऐसी विजय प्रभु को प्राप्त हुई, इसलिए उन्हें विजयी कहते हैं, मोहादि कर्मों पर प्रभु ने विशिष्ट विजय प्राप्त की अत: उन्हें विजयी कहा।

जेता = जयति सर्वोत्कर्षेण प्रवर्तते इत्येवंशीलो जेता = जिसने सर्वोत्कर्षरूप जय प्राप्त किया उसे जेता कहते हैं, प्रभु सर्वोत्कर्षयुक्त विजयी हैं, अत: जेता हैं।

धर्मचक्री = धर्मेणोपलक्षितं चक्रं धर्म्मचक्रं, धर्म्मचक्रं विद्यते यस्य स धर्म्मचक्री, भगवान् पृथ्वीस्थितो भव्यजन संबोधनार्थं यदा विहारं करोति तदा धर्म्मचक्रं स्वामिन: सेनाया: अग्रेऽग्रे निराधारं आकाशे चलति = प्रभु भव्यों को हितोपदेश देने के लिए विहार करते हैं, इसको सूचित करने वाला जो चक्र उसे धर्मचक्र कहते हैं, इससे युक्त प्रभु को धर्मचक्री कहते हैं। जब भगवान पृथ्वी पर स्थित प्राणियों के संबोधन के लिए विहार करते हैं, तब उन स्वामी की सेना के आगे-आगे निराधार आकाश में चलता है। इस धर्मचक्र का लक्षण आचार्य देवनंदी ऐसा कहते हैं -

स्फुरदरसहस्ररुचिरं विमलमहारत्नकिरणनिकरपरीतम्।
प्रहसित सहस्र किरणद्युतिमण्डलमग्रगामि धर्मसुचक्रम्॥

अर्थ - यह धर्मचक्र चमकते हुए हजार आरों से सुशोभित है, निर्मल अमूल्यरत्नों के किरण समूह से वेष्टित रहता है और मानों सूर्य के कांतिमण्डल को हँसता हुआ ही(तिरस्कृत करता हुआ) प्रभु के आगे-आगे गमन करता है।

दयाध्वज: = दया ध्वज: पताका यस्य स दयाध्वज: अथवा दयाया अध्वनि मार्गे जायते योगिनां प्रत्यक्षो भवति स दयाध्वज: = दया ही जिसकी ध्वजा पताका है, या दया के मार्ग में जो प्रकट होता है, अर्थात् योगियों को प्रत्यक्ष होता है, उसे दयाध्वज कहते हैं।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चित:।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वर:॥९॥

टीका - प्रशान्तारि: = प्रशान्ता उपशमं गता अरय: कर्मशत्रवो यस्येति प्रशान्तारि: = जिनके कर्मशत्रु उपशम को प्राप्त हुए हैं, वे जिनराज प्रशान्तारि कहलाते हैं।

अनन्तात्मा = अनन्तेन केवलज्ञानेनोपलक्षित: आत्मा यस्येति स अनन्तात्मा। अथवा अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्येति स अनन्तात्मा = अनन्तरूप केवलज्ञान से प्रभु युक्त हैं अत: वे अनन्तात्मा हैं, अथवा अनन्त अर्थात् विनाश रहित आत्मा जिनका है वे जिनराज अनन्तात्मा हैं।

योगी = योग: चेतो निरोधनं विद्यते यस्य स योगी - चित्त को एकाग्र करना योग है। वह जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे जिनराज को योगी कहना चाहिए।

तत्त्वे पुमान् मन:पुंसि मनस्यक्षकदंबकम्।
यस्य युक्तं स योगी स्यान्न परेच्छादुरीहित:॥

तत्त्व में पुमान् आत्मा, आत्मा में मन, मन में स्पर्शनादिक पाँच इन्द्रियाँ जिसकी एकाग्र हो जाती हैं, उसे योगी कहना चाहिए। जो दूसरी वस्तुओं के चाहरूपी दुष्ट संकल्प से युक्त है, वह योगी नहीं है।

योगीश्वरार्च्चित: = यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणाध्यान-समाधिलक्षणा अष्टौ योगा विद्यन्ते येषां ते योगिन:। योगिनां मुनीनां ईश्वरा: गणधर-देवादयस्तैरर्चित: पूजित: स योगीश्वरार्चित:। = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि स्वरूपी आठ योग जिनके होते हैं, वे योगी हैं, ऐसे योगियों के, मुनियों के जो ईश्वर गणधर देवादिक हैं, उनसे जिनप्रभु पूजे जाते हैं, उन्हें योगीश्वरार्चित कहते हैं।

ब्रह्मवित् = ब्रह्माणमात्मानं वेत्तीति ब्रह्मवित् = आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और आत्मा को जानने वाले जिनराज ब्रह्मवित् कहलाते हैं।

ब्रह्मतत्त्वज्ञ: = ब्रह्मण: आत्मन: ज्ञानस्य, दयाया:, कामविनिग्रहस्य तत्त्वं मर्म जानातीति ब्रह्मतत्त्वज्ञ:। "ज्ञानं ब्रह्म, दयाब्रह्म, ब्रह्म कामविनिग्रह:" इतिवचनात् = आत्मा का, ज्ञानका, दया का तथा इच्छाओं के निरोध का तत्त्व, स्वरूप या मर्म प्रभु जानते हैं, इसलिए वे ब्रह्मतत्त्वज्ञ कहे जाते हैं, क्योंकि ज्ञानको दया को और इच्छानिरोध को ब्रह्म कहते हैं।

ब्रह्मोद्यावित् = वद् व्यक्तायां वाचि। वद् ब्रह्मन्पूर्व: ब्रह्मण: उच्यते कथ्यते या कथा सा ब्रह्मोद्या नाम्नि वद्क्विप् प्रत्यय:। स्वपिवचियजादीनाम् यण् परोक्षाशी: षु संप्रसारणं। उद्व्यंजनमस्वरं परवर्णं नयेत्। उद्यजातं लिंगान्तनकारस्येति नकारलोप:। उवर्णे ओ। ब्रह्मद्यास्त्रियामादा, ब्रह्मोद्याजातां ब्रह्मोद्यां ब्रह्मविद्यां आत्मविद्यामिति वा वेत्तीति ब्रह्मोद्यावित् =

वद् धातु स्पष्ट बोलने में आती है। स्पष्ट ब्रह्मण पूर्व ब्रह्मण कहलाता है। उस ब्रह्म की कथा है वा परम ब्रह्म का जो स्वरूप है उसको ब्रह्मोद्या कहते हैं। इस ब्रह्मोद्या नाम में वद् धातुसे क्विप् प्रत्यय हुआ है तथा "स्वपिवचि यजादीनां यण परोक्षाशि:षु संप्रसारणं" स्वपि वचि यजवाची शब्दों (धातुओं) का परोक्ष, आशी क्रिया अर्थ में 'यण' संप्रसारण होता है अर्थात् यण - इ=का, य, व = का उ, ऋ - र्, और लृ का ल हो जाता है। इस सूत्र से यहाँ पर 'वद्' धातु के व का उ संप्रसारण हुआ है।

ब्रह्मन् शब्द में जो न् है उस नकार का लोप हो जाता है। "लिंगान्त-नकारस्य लोप:" इस सूत्र से। तदनन्तर "उवर्णे ओ" इस सूत्र से उ ओ को प्राप्त होता है। अत: ब्रह्मोद्या = अर्थात् ब्रह्म परमात्मा का कथन करने वाला ज्ञान - वा विद्य। स्त्रीलिंग में आकार होने से ब्रह्मोद्या इस शब्द की निष्पत्ति हुई है। उस ब्रह्म विद्या आत्मस्वरूप का जानने वाला, अनुभव करने वाला ब्रह्मोद्यावित् कहलाता है।

यतीश्वर: = यतन्ते यत्नं कुर्वन्ति रत्नत्रये इति यतय: सर्वधातुभ्य: इ:। एतेषामीश्वर: स्वामी यतीश्वर: = जो रत्नत्रय में यत्न करते हैं उन्हें यति कहते हैं, यत् धातु यत्न अर्थ में आती है और उसमें 'इ' प्रत्यय लगाने से यति बनता है और जो यतियों के ईश्वर हैं उन्हें यतीश्वर कहते हैं।

सिद्धो बुद्ध: प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थ: सिद्धशासन:।
सिद्धसिद्धान्तविद् ध्येय: सिद्धसाध्यो जगद्धित: ॥१०॥

अर्थ : सिद्ध, बुद्ध, प्रबुद्धात्मा, सिद्धार्थ, सिद्धशासन, सिद्धसिद्धान्तविद्, ध्येय, सिद्धसाध्य, जगहित ॥१०॥

सिद्धः = षिधु गत्यां षिधु शास्त्रे माङ्गल्ये च। षिधु संसिद्धौ वा षिधु धात्वादेः षः सः सिद्धः षिधधातोस्तस्मात्सिद्धः। गत्यर्था कर्मकाश्लेष शीङ्स्थासव सजनरुह जीर्यतीभ्यश्च [illegible] क्तः। [illegible] गुणो न रुधि [illegible] क्षुधि क्षुधि बंधि शुद्धि सिध्यति बुध्यति। युधि व्यधि साधेधातोर्नेट्। घढधभभ्यस्तथोर्धोधः तस्य धः घुटां तृतीयश्चतुर्थे तु घस्य दत्वं व्यंजनमस्वरं परं वर्णं नयेत्। सिरेफसो सिद्धिः विसर्जनीयः सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः संजाता यस्यातः स सिद्धः =

षिधु धातु गतिअर्थ में आता है जिससे बनता है सिद्धति = जाता है। शास्त्र अर्थ में है। शास्त्र का पर्यायवाची शब्द सिद्धान्त है, जिसका अर्थ है जिसके द्वारा वस्तुस्वभाव की सिद्धि होती है, वह सिद्धान्त कहलाता है। षिधु धातु मांगल्य अर्थ में भी आता है। षिधु धातु सिद्धि अर्थ में भी आता है। षिधु धातु के ष का सः आदेश हो जाता है। षिधु धातु का अन्तिम अक्षर द्वित्व होता है अतः सिध्ध ऐसे शब्द की उत्पत्ति होती है पुनः वर्ग के चतुर्थ अक्षर की उपधा उसी वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है, इस प्रकार सिद्ध शब्द की व्युत्पत्ति होती है।

सिद्धि - स्वात्मोपलब्धि, शिवसौख्यसिद्धि को जो प्राप्त हो चुके हैं अतः इनको सिद्ध कहते हैं।

अथवा - सि - सितं - अत्यन्त कठिन तीक्ष्ण आत्मा के साथ अनादि काल से बँधे हुए कर्मों को 'ध्मातं' नष्ट कर दिया है, ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा भस्म कर दिया है अतः सिद्ध कहलाते हैं।

षिधु धातु गमन अर्थ में है अतः जो ऐसी गति को प्राप्त हो गये हैं जिससे पुनः आगमन नहीं है इसलिए भगवान् सिद्ध कहलाते हैं।

बुद्धः = बुद्धिः केवलज्ञानलक्षणा विद्यते यस्य स बुद्धः प्रज्ञादित्वात् णः। अथवा बुध्यते जानाति सर्वमिति बुद्धः अत्रानुबंधमिति बुद्धि पूजार्थेभ्यो: वर्त्तमाने क्तप्रत्ययः = केवलज्ञान है लक्षण जिसका ऐसी बुद्धि जिनको प्राप्त हुई है, उसे बुद्ध कहते हैं प्रज्ञावान वाला होने से। अथवा जो सर्व को जानते हैं वे जिनराज बुद्ध हैं।

प्रबुद्धात्मा = प्रकर्षेण बुद्धः केवलज्ञानसहितः आत्मा जीवो यस्य स

प्रबुद्धात्मा = प्रकर्षयुक्त केवलज्ञान सहित आत्मा है जिस जीव का वह प्रबुद्धात्मा कहा जाता है।

सिद्धार्थः = सिद्धा प्राप्तिमागता अर्था धर्मार्थकाममोक्षाश्चत्वारो यस्य स सिद्धार्थः। सिद्धानां मुक्तात्मनामर्थः प्रयोजनं यस्य स सिद्धार्थः। सिद्धपर्यायादपरं प्रयोजनं यस्य न स सिद्धार्थः। सिद्धपर्यायादपरं प्रयोजनं किमपि भगवतो न वर्त्तते इत्यर्थः। अथवा सिद्धानां विदुषां प्रसिद्धिं गता अर्था जीवाजीवास्रवबंध - संवरनिर्ज्जरापुण्य पाप लक्षणा नवपदार्था - यस्मादसौ सिद्धार्थः = जिनको धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष ऐसे चार पुरुषार्थों की प्राप्ति हुई है उसे सिद्धार्थ कहते हैं। सिद्ध मुक्तात्मा को कहते हैं और मुक्तात्मा का अर्थ या प्रयोजन ही भगवान को है, इसलिए सिद्धार्थ हैं। सिद्ध पर्याय के बिना इतर प्रयोजन भगवान को नहीं होता है। अथवा सिद्ध शब्द का अर्थ विद्वान् लोगों ने ऐसा भी कहा है - जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप और पुण्य ये नवपदार्थ भगवंत से सिद्ध होते हैं। भगवंत के बिना इन नव पदार्थों का ज्ञान विद्वज्जन को नहीं होता अत: भगवान सिद्धार्थ हैं, अथवा सिद्ध हो गया मोक्ष का हेतु रत्नत्रय जिनको ऐसे भगवंत सिद्धार्थ हैं।

सिद्धशासनः = सिद्धं नित्यं निष्पन्नं प्रसिद्धं शासनं मतं यस्येति सिद्धशासनः = हमेशा निष्पन्न हुआ है प्रसिद्ध शासन, मत जिनका ऐसे भगवान सिद्धशासन हैं।

सिद्धसिद्धान्तवित् = सिद्धं परिपूर्णसिद्धान्तं लोकालोकस्वरूप प्रतिपादकं द्वादशांगाख्यशास्त्रं वेत्तीति जानातीति सिद्ध सिद्धान्तवित् = सिद्ध परिपूर्ण ऐसा जो सिद्धान्त, लोकालोक के स्वरूप का प्रतिपादक द्वादशांग शास्त्र, उसे जानने वाले भगवान सिद्धसिद्धांतवित् कहे जाते हैं।

ध्येयः = स्मृध्यै चिन्तायां। ध्यायते स्म वर्णिभिः योगिभिराराध्यो ध्येयः आत्स्वनोरिच्च = 'स्मृध्यै' धातु चिन्ता और ध्यान अर्थ में आता है अत: जो योगियों के द्वारा ध्यान करने योग्य है, आराध्य है इसलिए ध्येय कहलाते हैं।

सिद्धसाध्यः = सिद्धानां देवविशेषाणां साध्यः साधनीयः आराधनीयः सः सिद्धसाध्यः = सिद्ध जाति के देवों से भगवान साधनीय आराधनीय हैं इसलिए

सिद्धसाध्य कहे जाते हैं। **जगद्धित:**=जगतां हित:, जगद्भ्यो वा हित: पथ्य: स जगद्धित:=जगत् के लिए हित करना जिनके मन में है वे जगद्धित कहलाते हैं।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्त: प्रभविष्णुर्भवोद्भव:।
प्रभूष्णुरजरोऽयज्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्यय:।।११।।

अर्थ : सहिष्णु, अच्युत, अनन्त, प्रभविष्णु, भवोद्भव, प्रभूष्णु, अजर, अयज्य:, भ्राजिष्णु, धीश्वर, अव्यय ऐसे ग्यारह नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - सहिष्णु: = सहमर्षणे सहते इत्येवंशील: सहिष्णु: भ्राज्यलंकृभूसहि रुचिवृत्ति वृधिचरि प्रजनापत्रपेनामिष्णुचुक्षमीत्यर्थ: =

सह् धातु सहना अर्थ में आती है अत: जिसमें सहन करने की शक्ति है, वह सहिष्णु कहलाता है।

अच्युत: = न च्यवते स्म स्वरूपादित्यच्युत: परमात्मनिष्ठ इत्यर्थ: = प्रभु अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होते हैं, इसलिए वे अच्युत हैं, अपने उत्कृष्ट स्वरूप में स्थिर हैं।

अनन्त: = नास्त्यंतो विनाशो यस्येति स अनन्त: = प्रभु के स्वरूप का अन्त-नाश कभी नहीं होता है अत: वे अनन्त हैं।

प्रभविष्णु: = प्रभवति अनंतशक्तित्वात् समर्थो भवतीत्येवंशील: प्रभविष्णु: = प्रभु समर्थ हैं क्योंकि वे अनन्तशक्ति सम्पन्न हैं इसलिए प्रभविष्णु हैं।

भवोद्भव: = भवात् पंचधासंसारात् उद्गतो विनष्टो भवो जन्म यस्येति स भवोद्भव:। के ते पंचप्रकार संसारा: - द्रव्य - संसार:, क्षेत्रसंसार:, कालसंसार:, भवसंसार:, भावसंसार:। तेषां लक्षणं द्रव्यसंग्रहटीकायां ब्रह्मदेवरचितायां ज्ञातव्यं। अथवा भवे संसारे उत्कृष्टो भवो जन्म यस्येति स भवोद्भव: = प्रभु ने पंचप्रकार के संसारों का विनाश किया है अत: वे विनष्ट संसार हो गये हैं, अथवा भव में संसार में प्रभु का जन्म सर्वोत्कृष्ट है, सर्व लोक पूजित हैं इसलिए भवोद्भव हैं, वे पाँच प्रकार के संसार कौन से हैं ? द्रव्य संसार, क्षेत्रसंसार, कालसंसार, भवसंसार, भावसंसार, इनका लक्षण द्रव्यसंग्रह टीका में ब्रह्मदेव स्वामी ने लिखा है वहाँ से जानना चाहिए।

प्रभूष्णुः = प्रभवति इंद्रधरणेन्द्र नरेन्द्र चन्द्र गणीन्द्रादीनां प्रभुत्वं प्राप्नोतीत्येवंशील: प्रभूष्णु 'जिभुवोष्णुक्' = इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र, चन्द्र तथा गणीन्द्र, गणधरदेवादिक का प्रभुत्व जिनराज ने प्राप्त किया है अत: वे प्रभूष्णु हैं।

अजरः = न विद्यते जरा वार्धक्यं यस्येति स अजर: = जिनको बुढ़ापा प्राप्त नहीं हुआ ऐसे प्रभु हैं, इसलिए अजर हैं।

[१]**अयज्यः** = यष्टुं शक्यो यज्य: न यज्य: अयज्य:। शकि सहि पवर्गान्ताच्च यप्रत्यय: । शकि ग्रहणात् शक्यार्थो ग्राह्य:, स्वामिनोऽलक्ष्यस्वरूपत्वात् केनापि यष्टुं न शक्यते तेन अयज्य: इत्युच्यते = जिनकी पूजा करना शक्य है, वे यज्य कहे जाते हैं। जिसकी पूजा करना शक्य नहीं है अल्प ज्ञानी उसकी पूजा नहीं कर सकते हैं अत: भगवान् अयज्य कहलाते हैं। यज् धातु है शकि, सहि पवर्गान्त और यज् धातुमें 'य' प्रत्यय होता है। स्वामी अलक्ष्य स्वरूप होने से किसी के भी द्वारा पूजा करना शक्य नहीं है अत: अयज्य हैं।

भ्राजिष्णुः = भ्राजिटु भ्रासृटु भ्रासृ दीप्तौ इति धातो: प्रयोगात् भ्राजते चंद्रार्ककोटिभ्योऽप्यधिकां दीप्तिं प्राप्नोतीत्येवंशील: भ्राजिष्णु: = ''भ्राज्यलंकृञ् भू सहि रुचि वृति वृधि चरि प्रजनापत्रपेनामिष्णुच्''=

भ्राजिटु, भ्रासृटु, भ्रास धातु का प्रयोग दीप्ति अर्थ में होता है अत: 'भ्राजते' कोटि सूर्य और कोटि चन्द्र से अधिक जिसकी दीप्ति है, कान्ति है, अत: भगवान भ्राजिष्णु कहलाते हैं। अथवा भ्राज्य धातु अलंकार अर्थ में है। तीन जगत् को अलंकृत कर रहे हैं, अत: भ्राजिष्णु हैं।

धीश्वरः = धीनां बुद्धीनां ईश्वर: स्वामी धीश्वर: = धी याने बुद्धि, अनन्त बुद्धियों के प्रभु ईश्वर हैं, अत: धीश्वर कहे जाते हैं। **अव्ययः** = न व्ययो विनाशो यस्य द्रव्यार्थिकनयेन सोऽव्यय:। द्रव्यार्थिक नय से इनका कभी व्यय नहीं होता है अत: भगवान अव्यय हैं।

---

१. पाठान्तर - महापुराण में जिनसेनस्वामी ने इसका एक अर्थ 'अजर्य:' किया है अर्थात् आप कभी जीर्ण नहीं होते इसलिए अजर्य हैं।

विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

अर्थ : विभावसु, असंभूष्णु, स्वयम्भूष्णु, पुरातन, परमात्मा, परंज्योति, त्रिजगत्परमेश्वर, ये जिनदेव के नाम हैं।

विभावसुः = कर्मेन्धन दहन कारित्वात् विभावसुः अग्निरूपः = विभावसु को अग्निरूप माना, प्रभु आप विभावसु हैं क्योंकि कर्मरूप ईंधन के दहनकारी अर्थात् जलाने वाले होने से। मोहान्धकारविघटनपटुत्वात् विभावसुः सूर्यः = विभावसु याने सूर्य हैं क्योंकि आप मोहान्धकार का नाश करने में चतुर हैं अतः विभावसु हैं। लोकलोचनामृतवर्षित्वाद्विभावसुश्चंद्रः = संसार में लोगों की आँखों में अमृत बरसाने वाले होने से चन्द्रमा हो इसलिए विभावसु हो। कर्मसृष्टिप्रलय कारित्वाद् विभावसुः रुद्रः = कर्मरूप सृष्टि के विनाश करने वाले होने से विभावसु रुद्र हैं। आत्मकर्मबंधसंधि भेदकत्वाद्विभावसुः भेदज्ञानरूपः = आत्मा और कर्मबंध की संधि तोड़ने के लिए जिनपति भेदज्ञानरूप हैं। विभा - विशिष्टं वसु - तेजो धनं यस्य स विभावसुः केवलज्ञानधनमित्यर्थः = विशिष्ट तेज ही वसु धन जिनदेव का है, अर्थात् प्रभु केवलज्ञान धन के धारक हैं। विशिष्टया भया दीप्त्या युक्तानि वसूनि रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि यस्य स विभावसुः विशिष्ट कांति युक्त वसु रत्नों के धारक प्रभु हैं। वा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप धन के धारक होने से आप विभावसु हो। विभा विगत-तेजस्का आ समन्तात् वसवो देवविशेषाः यस्य स विभावसुः = जिनदेव ने वसुनामक देवविशेष को विभा नष्ट तेजस्क किया है। यादृशो घाति क्षयजस्तेजःसमूहो भगवति वर्त्तते न तादृशो देवेषु वर्त्तते इत्यर्थः = घातिकर्म के क्षय से जो तेजसमूह आपने प्राप्त किया है वैसा तेज देवों में नहीं है, अतः प्रभु विभावसु हैं। अथवा विशिष्टां भां दीप्तिं अवति रक्षति विभावा ईदृशी सूर्जननी यस्य स विभावसुः ''पुंवद् भाषित पुंस्कानूङ् पूरण्यादिषु स्त्रियां तुल्याधिकरणे'' इति विभावशब्दस्य पुंवद्भावत्वात् ह्रस्वत्वं = अथवा विशिष्ट 'भा' दीप्ति कान्ति की जो रक्षा करता है ऐसी सूर्जननी जिसकी है - वह विभावसु कहलाता है अर्थात् जिसकी दीप्ति निरंतर सुरक्षित रहती है।

अथवा विभावं रागद्वेषमोहादिपरिणामं स्यति विनाशयतीति-विभावसु: षोऽन्तकर्मणि। इति धातु: सर्व धातुभ्य: उ: आलोपोऽसार्वधातुके = विभावों को अर्थात् रागद्वेषमोहादि परिणामों को भगवन्त ने स्यति नष्ट कर दिया इसलिए वे विभावसु हैं।

असंभूष्णु: = न संभवतीत्येवंशील असंभूष्णु:नोत्पद्यते संसारे इत्यर्थ: = भगवान जिनेन्द्र पुन: संसार में नहीं उत्पन्न होंगे, क्योंकि जन्मजरामरणादि दशाओं के उत्पादक कर्मों का नाश उन्होंने किया है।

स्वयंभूष्णु: = स्वयं स्वयमेव भवत्येवंशील: स्वयंभूष्णु:, जिभुवोष्णुक् = स्वयं ही कर्मों का नाश करके निजशुद्ध स्वरूप को उन्होंने प्राप्त किया है।

पुरातन: = पुरा पूर्वं युगादौ भव: संजात: पुरातन: = पुरा पूर्वयुग के आदि में उत्पन्न हुए थे इसलिए वे पुरातन हैं। प्रत्येक तीर्थंकर का जो धर्म प्रवर्तन हुआ उसको युग कहते हैं ऐसे युग चौबीस हुए हैं, अपने-अपने युग के निर्माता होने से चौबीस तीर्थंकरों को भी पुरातन कह सकते हैं।

परमात्मा = परम उत्कृष्ट: केवलज्ञानी आत्मा जीवो यस्य स परमात्मा, तथाचोक्तं परमात्मप्रकाशे - परम उत्कृष्ट केवल ज्ञानी आत्मा जिसकी हो वह परमात्मा है।

तिहुयण वंदिउ सिद्धिगउ हरिहर झायहिं जो जि।
लक्खु अलक्खें धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि॥९८॥

परमात्मप्रकाश में लिखा है कि - तीन लोक में वन्दनीय, सिद्ध गति को प्राप्त, हरिहरादि के द्वारा ध्यान करने योग्य, जो लोक और अलोक को देखता है, उसको मुनि परमात्मा-कहते हैं।

परमज्योति: = परमं उत्कृष्टं ज्योति: चक्षु: प्राय: परंज्योति: लोकलोचनत्वात् = जिनेन्द्र भगवान उत्कृष्ट ज्योति युक्त नेत्र के समान हैं क्योंकि उनका केवलज्ञान लोक तथा अलोक का स्वरूप अबाधित रूप से देखता है।

त्रिजगत्परमेश्वर: = त्रयाणां जगतां परम उत्कृष्ट ईश्वर: स्वामी त्रिजगत्परमेश्वर: अथवा त्रिजगतां परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मी:, तस्या ईश्वर: स

त्रिजगत्परमेश्वर: = जिनेन्द्र देव तीन लोक के परम उत्कृष्ट ईश्वर या स्वामी हैं अथवा त्रैलोक्य की जो परा याने उत्कृष्ट मा लक्ष्मी है उसके जिनेन्द्र ईश्वर हैं, स्वामी हैं। इसलिए त्रिजगत्परमेश्वर हैं।

श्रीमद् अमरकीर्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका में प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 द्वितीयोऽध्याय: 卐

(दिव्यभाषादिशतम्)

दिव्यभाषापतिर्दिव्य: पूतवाक्पूतशासन:।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्म्माध्यक्षो दमीश्वर: ॥१॥

अर्थ : दिव्यभाषापति, दिव्य, पूतवाक्, पूतशासन, पूतात्मा, परमज्योति, धर्माध्यक्ष, दमीश्वर ये आठ नाम जिनेश्वर के हैं, जिनका क्रमश: स्पष्टीकरण करते हैं-

दिव्यभाषापति: = दिव्या अमानुषी भाषा अष्टादशमहाभाषा-सप्तशत क्षुल्लकभाषा ध्वनि: तस्या: पति: स्वामी स दिव्यभाषापति:= दिव्य अमानुषी भाषा, अठारह महाभाषा तथा सात सौ क्षुल्लक भाषाओं के जो स्वामी होते हैं, वे दिव्य भाषापति कहलाते हैं। यहाँ दो उपयोगी गाथाएँ हैं-

अट्ठारसमहाभासा खुल्लय भासा य सत्तसयसंखा।
अक्खरअणक्खरप्पया सण्णीजीवाण सयलभासाओ ॥१॥

एदेसिं भासाणं तालुवदंतोट्ठकंठवावारं।
परिहरिय इक्ककालं भव्वजणो दिव्वभासितं ॥२॥

अर्थ : अठारह महाभाषा और सात सौ लघुभाषायें हैं। इन सर्व भाषाओं के भगवान ज्ञाता हैं, ये अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक की अपेक्षा दो प्रकार की होती हैं। संज्ञी जीवों की भाषा अक्षरात्मक होती है तथा द्वीन्द्रियादिक असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की भाषा अनक्षरात्मक होती है। भगवान की भाषा तालु, ओष्ठ, दन्त, कण्ठ आदि अवयवों में व्यापार न होकर भी प्रकट होती है, अत: भगवद्वाणी को दिव्य भाषा कहते हैं।

पुनश्चोक्तं भगवज्जिनसेनाचार्यैः ध्वनिलक्षणम् -

देवकृतोध्वनिरित्यसदेतद्देवगुणस्य तथा विहतिः स्यात्।
साक्षर एव च वर्णसमूहा नैवं विनार्थगतिर्जगति स्यात्॥

अस्य व्याख्या सर्वज्ञध्वनिः किल देवनिर्म्मितः इति केचिदव्युत्पन्नाः वदन्ति, असदेतत्, असत्यमेतद्वचनं। कस्मादिति चेत् देवगुणस्य तथा विहतिः स्यात्, तथा क्षति इंद्रादिदेवकृतध्वनौ सति देवगुणस्य, तीर्थंकरपरमदेवगुणस्य कृतोपकारस्य विहतिः विघातो विच्छेदः स्याद् भवेत् पूर्वार्द्धगतम्। अथ अपरार्द्धस्य व्याख्यानं क्रियते। साक्षर एव च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिः स्यात्, परमेश्वरध्वनिः किल निरक्षरः ॐकाररूपो नादरूप इति केचिद्वदंति तन्मतनिराकरणार्थं भगवज्जिनसेनाचार्याः प्राहुः। साक्षर एव च परमेश्वरध्वनिर्निरक्षरो न भवति किन्तु साक्षर एव च दिव्यसंस्कृताक्षरसहितो भवति। देवानां गीर्वाणभाषात्वात्, वर्ण-समूहाद् विना जगति संसारे अर्थ गतिरर्थ-प्रतीतिर्नैवस्यात्, एवेति निश्चयेन अर्थो न ज्ञायते इति तात्पर्यार्थः।

जिनसेन आचार्य ने ध्वनि का लक्षण किया है- कोई अज्ञानी जन ध्वनि को देवकृत मानते हैं परन्तु उनका यह कथन असत्य है क्योंकि इन्द्रादि देवकृत ध्वनि सर्वजीवोपकारी, तीर्थंकर परमदेव का गुण नहीं हो सकता अतः ऐसा मानने पर परमदेव के उपकार का व्याघात होता है।

कोई अज्ञानी एकान्त रूप से भगवान की वाणी को निरक्षरी 'ॐकार' रूप स्वीकार करते हैं परन्तु भगवन् जिनसेनाचार्य उनके मत का निराकरण करने के लिए कहते हैं कि- भगवद् वाणी कथंचित् साक्षर है क्योंकि अक्षर के बिना संसार में अर्थ की प्रतीति नहीं होती- तीर्थंकर की वाणी दिव्य है, महान् है, सर्वभाषात्मक है अतः उस भाषा के पति, स्वामी होने से आप दिव्यभाषापति हैं।

दिव्यः = दिवि सर्वार्थसिद्धौ भवः उत्पन्नो भगवान् दिव्यः = भगवान आदीश्वर पूर्व भव में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र देव थे। वहाँ से चयकर यहाँ नाभिराय मरुदेवी के पुत्र हुए अतः वे दिव्य हैं।

पूतवाक् = पूता पवित्रिता अनर्थकश्रुति कटुक व्याहतार्था-लक्षण-स्व संकेत प्रकलृप्टार्थ प्रसिद्धा समन्तदोषोज्झिता वाक्वाणी यस्य स पूतवाक् = पूत

पवित्र अर्थात् निर्दोष यानी अनर्थक श्रुति कटु, कर्णकटु, पूर्वापर विरुद्धार्थ प्रतिपादक, अलक्षण, स्वसंकेत, प्रक्लृप्तार्थ इत्यादि दोष विरहित वाणी प्रभु बोलते हैं अतः वे पूतवाक् हैं।

पूतशासनः = पूतं पवित्रं पूर्वापरविरोधरहितं शासनं शिक्षादायकं मतं यस्य स पूतशासनः = भगवान का उपदेश पवित्र पूर्वापरविरोध रहित जीवादि तत्त्वों का प्रतिपादन करने वाला है।

पूतात्मा: = पूतः पवित्रः, कर्मकलंकरहितः आत्मा स्वभावो यस्य स पूतात्मा, अथवा पुनाति प्रकर्षेण पवित्रयति - भव्यजीवान् इति पूः पवित्रकारकः सिद्धपरमेष्ठी, तस्य ता लक्ष्मीरनंतचतुष्टयं तया उपलक्षितः आत्मा स्वभावो यस्य स पूतात्मा सिद्धस्वरूप इत्यर्थः = पवित्र, कर्मकलंक से रहित आत्मा का स्वभाव है जिसका वह पूतात्मा है। अथवा भव्य जीवों को प्रकर्ष से पवित्र करने वाले सिद्ध परमेष्ठी 'पू' शब्द से वाच्य हैं, उनकी 'ता' लक्ष्मी जो कि अनन्त चतुष्टयरूप है, उससे युक्त आत्मस्वभाव जिनका है वे पूतात्मा हैं, सिद्धस्वरूप हैं।

परमज्योतिः = परमं उत्कृष्टं ज्योतिः केवलज्ञानं यस्य स परमज्योतिः = परम उत्कृष्ट केवलज्ञान ज्योति है जिसकी वह परमज्योति है।

धर्माध्यक्षः = धर्म में अध्यक्ष है वह धर्माध्यक्ष कहलाता है।

धर्मे चारित्रे अध्यक्षः अधिकृतः अधिकारी नियोगवान् नियुक्तो न किमपि धर्मविध्वंसं कर्त्तुं ददाति स धर्म्माध्यक्षः। अथवा धर्मस्याधिश्चिन्ता धर्म्माधिः, धर्म्माधौ धर्म्मचिन्तायां अक्षो ज्ञानं आत्मा वा यस्य स धर्म्माध्यक्षः। उक्तं च-

आशाबन्धकचिन्तार्त्ति-व्यसनेषु तथैव च।
अधिष्ठाने च विद्वद्भिरधिशब्दो नरि स्मृतः॥

अथवा - धर्म अर्थात् चारित्र में अध्यक्ष है, अधिकृत है, अधिकारी है, किसी को भी धर्म का विध्वंस नहीं करने देते हैं उसको धर्म्माध्यक्ष कहते हैं। अथवा धर्म में जिसकी 'धि' बुद्धि है, चिन्ता है जिसकी वह धर्म्माधि कहलाता है उस धर्म्म बुद्धि में जिनका ज्ञान है, लीनता है। अथवा धर्मबुद्धि में जो अध्यक्ष है, प्रमुख है उसको धर्माध्यक्ष कहते हैं।

विद्वानों में अधिशब्द आशाबन्धक, चिन्ता, पीड़ा, दु:ख, अधिष्ठान और मनुष्य शब्द में प्रयुक्त किया है।

अथवा धर्माधौ धर्मचिन्तायां अक्षाणि इन्द्रियाणि यस्य स धर्माध्यक्ष:।

अथवा - धर्म का चिंतन करने में जिसकी इन्द्रियाँ लीन हैं उसको धर्माध्यक्ष कहते हैं।

इन्द्रिय, आत्मा, ज्ञान, रावण का पुत्र, सूचिका, बहेड़ा, पासा, रथ की कील आदि अनेक अर्थों में अक्ष शब्द का प्रयोग होता है।

दमीश्वर: = दम: उपशम: इन्द्रियनिग्रहो वा विद्यते येषां ते दमिन: तेषामीश्वर: स्वामी स दमीश्वर:। क्रोधादि कषायों का उपशमन करना अथवा इन्द्रियों को अपने विषयों में नहीं जाने देना दम कहलाता है। क्रोधादि कषायों का वा इन्द्रियों का दमन करने वाले दमी कहलाते हैं अर्थात् मुनिगणों को दमी कहते हैं, जो मुनियों के ईश्वर हैं वे दमीश्वर कहलाते हैं॥१॥

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजा: शुचि:।
तीर्थकृत्केवलीशान: पूजार्ह: स्नातकोऽमल:॥२॥

श्रीपति: = अभ्युदय (स्वर्गादिसम्पत्ति), नि:श्रेयस् (मोक्ष) लक्ष्मी के पति (स्वामी) श्रीपति कहलाते हैं।

भगवान् = भग (ज्ञान) परिपूर्ण ऐश्वर्य, वैराग्य, मोक्ष और तप जिसके हैं वे भगवान कहलाते हैं। भग शब्द के छह अर्थ होते हैं-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य ज्ञानस्य तपस: श्रिय:।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इति स्मृत:॥

समग्र ऐश्वर्य, ज्ञान, तप, श्री, वैराग्य और मोक्ष इन छह अर्थों का वाचक भग-शब्द है। अत: इनसे युक्त को भगवान कहते हैं।

अर्हन् = इन्द्रादि कृत अन्य जीवों में असंभवी, पूजा के योग्य अवस्था को प्राप्त हो उसको अर्हन् कहते हैं। ''अर्ह'' धातु पूजा अर्थ में है इस धातु में वर्तमान काल में ''शन्तृङ्'' और आनश प्रत्यय होता है, उसका प्रथमा एक

वचन 'अर्हन्' शब्द है। जिसका अर्थ है पूजा के योग्य। अथवा 'अ' शब्द अरि (शत्रु) का वाचक है। 'र' कार शब्द रज् (ज्ञानावरण और दर्शनावरण) तथा 'रहस्य' (अन्तराय) का सूचक है। इस आत्मा का शत्रु मोहनीय कर्म है। अथवा 'अरे' शब्द का अर्थ चार घातिया कर्म हैं। इनका 'हन्त' नाश करने वाला अरहंत कहलाता है।

गौतम ऋषि ने भी **चैत्य भक्ति** में कहा है-

मोहारिसर्वदोषादि-घातिकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः।
विरहित रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः॥

मोहरूपी शत्रु से उत्पन्न सर्व दोषों के घातक, सदा ज्ञानावरण और दर्शनावरण रूप रज रहित तथा अन्तराय रूप रहस्य के नाश करने से पूजा को (सत्कार को) प्राप्त अरहंत प्रभु के लिए नमस्कार हो।

चामुण्डराय ने चारित्रसार ग्रन्थ में इसी अर्थ की सूचक गाथा लिखी है-

अरिहनन रजोहनन, रहस्यहर पूजनार्हमर्हन्तं।
सिद्धान् सिद्धाष्टगुणान्, रत्नत्रयसाधकान् स्तुवे साधून्॥

अरि (मोहनीय कर्म) का घात करने वाले, रज (ज्ञानावरण, दर्शनावरण) के घातक, रहस्य (अन्तराय) का नाश करने वाले और पूजा के योग्य अरहंत प्रभु को, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों के धारक सिद्धों को और रत्नत्रय के आराधक आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार चार घातिया कर्म का नाश कर पूजनीय हुए हैं उनको अर्हन् कहते हैं।

अरजाः = ज्ञानावरण और दर्शनावरण ये दो रज जिसके नहीं हैं वह अरज कहलाता है।

विरजाः = नष्ट हो गये हैं ज्ञानावरणादि कर्म रज जिसके वह विरज कहलाता है।

शुचिः = शुच् शौचे। भूवादौ परस्मैपदीशौ शोचति निर्मलीभवतीति शुचिः। शुच् धातु शौच (पवित्र) अर्थ में आता है। भू आदि गण में परस्मैपदी

धातु, शोचति शुचि होता है निर्मल होता है पवित्र करता है वह शुचि कहलाता है।

अथवा, परमब्रह्मचर्य प्रतिपालनेन निजशुद्धबुद्धैकस्वभावात्मपवित्रतीर्थ-निर्मल भावना जल प्रक्षालितांतरंग शरीरत्वात् शुचि: परम पवित्र इत्यर्थ:।

अथवा, परम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से उत्पन्न निज शुद्ध बुद्ध एक स्वभावात्मक पवित्र तीर्थ निर्मल भावनारूप जल के द्वारा प्रक्षालित अंतरंग शरीर होने से हे भगवन् आप शुचि हैं, परम पवित्र हैं।

यशस्तिलक चम्पूनामक महाकाव्य में **सोमदेव सूरि** ने कहा है-

आत्माशुद्धिकरैर्यस्य नासंग: कर्मदुर्जनै:।
स पुमान् शुचिराख्यातो नाम्बुसंप्लुतमस्तक:॥

आत्मा को अशुद्ध करने वाले कर्म रूपी दुर्जनों के साथ जिसकी संगति नहीं है वह पुरुष शुचि (पवित्र) कहलाता है। केवल जल से मस्तक धोने से या स्नान करने मात्र से कोई पवित्र नहीं होता है।

अथवा, अष्ट कर्म रूपी काष्ठ (ईंधन) के समूह का नाश करने में समर्थ होने से आप शुचि हैं, अग्निमूर्त्ति हैं।

अथवा, जन्म से ही आप मल, मूत्र, पसीना से रहित हैं अत: आप शुचि हैं।

अथवा, निर्लोभरूपी जलस्नान के द्वारा अभ्यन्तर पापमल का प्रक्षालन करने वाले होने से आप शुचि हैं।

हेमचन्द्र अनेकार्थ कोश.में लिखा है-

शुचि शुद्धेसितेऽनिले। ग्रीष्माषाढानुपहेतुपूपधा शुद्ध मंत्रिणि। शृंगारे च। इति हेमचन्द्र:।

शुद्ध श्वेत वायु, ज्येष्ठ, आषाढ़ का महीना, अनुपहन (जिसका कोई खण्डन नहीं कर सके) आरोग्य, उपधा, शुद्ध लोभादि दोष रहित मंत्री और शृंगार अर्थ में शुचि शब्द का प्रयोग होता है।

तीर्थकृत् = जिसके द्वारा संसार समुद्र पार किया जाता है ऐसे आचारादि द्वादशांग श्रुतज्ञान को तीर्थ कहते हैं। उस तीर्थकर्त्ता जिनेश्वर देव को ''तीर्थकृत्'' कहते हैं।

केवली = मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का नाश करने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह केवल-ज्ञान जिसके होता है वह केवली कहलाता है।

सो ही कहा है, उमास्वामी आचार्यदेव ने तत्त्वार्थ सूत्र में- मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं, केवलं केवलज्ञानं विद्यते यस्येति केवलं।

ईशान: = जिनेश्वर भगवान अहमिंद्रों के भी स्वामी हैं। अहमिन्द्र भी स्वस्थान में स्थित होकर प्रभु की वन्दना करते हैं। इसलिए भगवान ईश: हैं

सो ही कहा है - इष्टेऽहमिन्द्राणामपि स्वामी भवति ईशान:।

पूजार्ह: = पूजा के योग्य होने से पूजार्ह कहलाते हैं।

अथवा - पूजार्ह: पूजा पूजायां पूजश्चुरादेच्च ईन् पूजनं पूजामिषिं चिति पूजिकथिकुचिचर्च्चिस्पृहितोलिदोलिभ्यश्च अकारित लोपास्त्रियामादा पूजा जाता।

पूज् धातु चुरादिगणकी है। इसमें 'ईन्' प्रत्यय होता है तथा पूजा में इषि, चिति, पूजि, कथि, कुचि, चर्च्चि, स्पृहि, तोलि, दोलि इनमें अकार होता है 'इ' का य होकर पूजयति, कथयति चर्च्चयति स्पृहयति, तोलयति दोलयति आदि शब्दों की उत्पत्ति होती है। इनमें स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय होता है अकार ईकार का लोप होता है तब चर्चा अर्च्चा पूजा कथा आदि शब्दों की उत्पत्ति होती है।

अर्हमहपूजायां अर्हणं पूजनं अर्ह: पूजाया: अष्टविधार्चनस्य अर्हो योग्य:। पूजालक्षणं चारित्रग्रन्थेऽप्युक्तं - नित्यमहपूजा, चतुर्मुख पूजा, कल्पवृक्षपूजा, अष्टाह्निकपूजा, ऐन्द्रध्वजपूजा इति तत्र नित्यमह: नित्यं यथाशक्ति जिनगृहेभ्यो निजगृहाद्गंध धूप पुष्पाक्षतादि निवेदनं, चैत्यालयं कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासनदानं मुनिजनपूजनं च भवति।

चारित्रसार ग्रन्थ में नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पवृक्ष पूजा, अष्टाह्निकपूजा, इन्द्रध्वज पूजा, इन पूजाओं के लक्षण इस प्रकार हैं, अपने घर से लिये हुए गंध अक्षतादिकों से जिनालय में जिनेश्वर की पूजा करना, चैत्यालय निर्मित करके जिनपूजन के लिए ग्राम, खेत आदि को अर्पण करना, घर में मुनियों की पूजा करके दान देना यह नित्यमह पूजा का लक्षण है। मुकुटबद्ध सामन्तादिकों से जो जिनपूजा की जाती है, उसे सर्वतोभद्र पूजा, चतुर्मुखपूजा, महामहपूजा कहते हैं। सर्व प्राणिवृन्द का कल्याण करने वाली होने से उसे सर्वतोभद्र पूजा कहते हैं, चतुर्मुख मण्डप में जो जिनपूजा की जाती है, उसे चतुर्मुख पूजा कहते हैं, आष्टाह्निक पूजा की अपेक्षा से यह बड़ी होने से इसे महामह पूजा कहते हैं, इन रूपों से जिनकी पूजा की जाती है उसे पूजार्ह कहते हैं।

स्नातक: = कर्म मल कलंकरहित: द्रव्यकर्मनोकर्म रहितत्त्वात् पूत: प्रक्षालित: क: आत्मा यस्य स स्नातक:, उक्तं च-

पुलाक: सर्वशास्त्रज्ञो बकुशो भव्यबोधक:।
कुशीले स्तोकचारित्रे निर्ग्रंथो ग्रन्थहारक:॥

स्नातक : केवलज्ञानी, शेषा: सर्वे तपोधना:॥ = कर्ममल रहित जिनराज को स्नातक कहते हैं, अर्थात् द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, भावकर्म रागद्वेषादि तथा नोकर्म रहित हो जाने से पूत पवित्र प्रक्षालित हुई है आत्मा जिनकी ऐसे जिनराज को स्नातक कहते हैं। पुलाक मुनि सर्वशास्त्रों के ज्ञाता होते हैं। बकुश मुनि भव्यों को धर्म का स्वरूप समझाते हैं, कुशीलमुनि अल्प चारित्र के धारक होते हैं, तथा निर्ग्रन्थ मुनि सर्व परिग्रहों के त्यागी होते हैं, स्नातक मुनि केवलज्ञानी होते हैं, बाकी के मुनि तपोधन होते हैं।

अमल: = न विद्यते मलोवसादिर्यस्य सोऽमल:। यत्स्मृति:-

वसाशुक्रमसृक् मज्जामूत्रं विट्कर्णविट्नखा:।
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदा द्वादशैते नृणां मला:॥

जिनदेव के देह में वसादिमल नहीं होने से वे अमल हैं, मल बारह प्रकार

के कहे हैं, वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विट्, विष्ठा, कर्ण में उत्पन्न होने वाला मल, नख, श्लेष्मा, अश्रु, दूषिका-नेत्रमल तथा स्वेद ये बारह मल मनुष्य के शरीर में होते हैं।

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

अनंतदीप्तिः = अनंता अमेया दीप्ति : केवलज्ञानद्युतिर्यस्य सोऽनंतदीप्तिः अथवा अनन्ता विनाशरहिता दीप्तिःवपुः कांतिर्यस्य सोऽनन्तदीप्तिः। अथवा अनन्ते मोक्षपदे दीप्तिर्यस्य स अनन्तदीप्तिः = जिनदेव के केवलज्ञान की दीप्ति बुद्धि के द्वारा नापने योग्य नहीं होती है, अतः वे अनन्तज्ञान के प्रकाश को धारण करते हैं, अथवा जिनप्रभु की शरीर कान्ति अनन्त, विनाश रहित होती है, अथवा अनन्त ऐसे मोक्षस्थान में जिनकी आत्मदीप्ति सदा रहती है, ऐसे वे जिनेन्द्र अनन्तदीप्ति के धारक हैं।

ज्ञानात्मा = ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं - आत्मा स्वभावो यस्य स ज्ञानात्मा = मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञान ये ज्ञान जिसके आत्मा के स्वभाव हैं, उन्हें ज्ञानात्मा कहते हैं।

स्वयंबुद्धः = स्वयमात्मना गुरुमन्तरेण बुद्धो निर्वेदं प्राप्तः स स्वयंबुद्धः। उक्तं च-

निन्नीरा तत्ततवा अप्पडिलेहा य अवहिणाणी य।
निग्गरुआ अरहंता निक्कम्मा होइ सिद्धा य॥

स्वयं गुरु के बिना जिनेश्वर निर्वेद को, वैराग्य को प्राप्त होते हैं, इसलिए स्वयंबुद्ध कहे जाते हैं, वे जिनेश्वर स्वयंसिद्धों को नमस्कार कर दीक्षा लेते हैं।

नीर रहित, ताप रहित, अप्रतिलेह, अवधिज्ञानी, गुरु रहित, अरिहंत, निष्कर्म सिद्ध ये सर्व स्वयंबुद्ध होते हैं।

प्रजापतिः = प्रजानां त्रिभुवनस्थितलोकानां पतिः स्वामी स प्रजापतिः अथवा प्रजानां भरतबाहुबलि-वृषभसेनब्राह्मी-सुन्दरी-प्रमुखानां संततीनां पतिः प्रतिपालको शास्त्रोपदेशको वा प्रजापतिः = त्रिलोक के सर्व प्राणियों के वे जिनदेव

स्वामी होते हैं, अथवा प्रजाओं के - भरत, बाहुबली, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि अपनी सन्तति की प्रतिपालना करके उनको अनेक शास्त्रों को पढ़ाया अतः वे प्रजापति थे।

मुक्तः = भवबन्धनैर्मुच्यते इति मुक्तः मुक्तात्मेत्यर्थः = संसार-बन्धन से वे मुक्त हैं, अर्थात् मुक्तात्मा कहे जाते हैं।

शक्तः = द्वाविंशति परीषहान् सोढुं शक्नोति स्म शक्तः क्षम इत्यर्थः 'क्षमः शक्तः' हलायुध नाममालायाम् = क्षुधा, पिपासा आदि बाईस परिषहों को सहन करने में वे समर्थ होते हैं। हलायुध नाममाला में शक्त और क्षम को एकार्थ कहा है।

निराबाधः = निर्गता आबाधा कष्टं यस्येति स निराबाधः = वे जिनदेव आबाधाओं से, कष्टों से बहुत दूर थे, रहित थे।

निकलः = निर्गता कला कालो यस्येति निष्कलः, अथवा निश्चिता कला विज्ञानं यस्येति निष्कलः। उक्तं च -

षोडशांशो विधोर्मूलं रैवृद्धिः कलनं तथा।
शिल्पं कालश्च विज्ञेयाः कला बुधजनैरिह॥

अथवा निर्गतं कलं रेतो यस्येति निष्कलः कामशत्रुत्वात्।

अथवा निर्गतं कलं अजीर्णं यस्येति निष्कलः, कवलाहाररहितत्वात् उक्तं च -

'अव्यक्तमधुरध्वाने कलं रेतस्यजीर्णके'। अथवा निष्कं हेम लाति आदत्ते रत्नवृष्टेरवसरे इति निष्कलः । अथवा निष्कं सुवर्णं लाति ददाति पंचाश्चर्यावसरे दातुर्जनस्येति निष्कलः । अथवा निष्कं लाति राज्यावसरे वक्षोविभूषणं गृह्णाति सतरलं सहस्र - सरहारं कण्ठे ददाति निष्कलः । उक्तं च -

वक्षोविभूषणे साष्टशते हेम्नश्च हेम्नि च।
तरले चैव दीनारे कर्षे निष्को निगद्यते॥

तथा चोक्तमार्षे-

गर्भगेहे शुचौ मातुस्त्वं दिव्ये पद्मविष्टरे।
निधाय स्वां परां शक्तिमुद्भूतो निष्कलोऽस्यत: ॥

निकल गया है काल वा शरीर जिनके वे निष्कल हैं अर्थात् जिनके संसार-परिभ्रमण काल समाप्त हो गया, वा जो शरीर रहित हो गये वे निष्कल कहलाते हैं।

धन की वृद्धि की शिल्पी कारादि १६ कलांश हैं उन कलाओं से जो रहित है वह निष्कल है।

'कल' का अर्थ वीर्य भी है, अत: कामके शत्रु होने से कामोद्रेक वीर्य का नाश हो जाने से वे निष्कल हैं।

'कल' का अर्थ अजीर्ण होता है, कवलाहार रहित होने से वे अजीर्ण रहित हैं अत: निष्कल हैं।

अव्यक्तमधुर आवाज, वीर्य और अजीर्ण अर्थ में 'निष्कल' शब्द का प्रयोग होता है। अथवा - 'निष्क' का अर्थ सुवर्ण है, रत्नवृष्टि के समय सुवर्ण को लाता है देता है, अत: निष्कल है। अथवा आहारदान के समय दाता के घर में सुवर्ण और रत्नों की वर्षा होती है अत: निष्कल है। अथवा राज्यपद प्राप्ति के समय, वक्षस्थल को विभूषित करने वाला, सतरल, एक हजार लड़ी वाला, रत्न निर्मित सुवर्ण का हार कंठ में धारण करते हैं अत: निष्कल है। कहा भी है- वक्षस्थल का भूषण, एक सौ आठ लड़ी का सुवर्ण का हार, सुवर्ण, तरल, दीनार कष् ये सर्व निष्कवाची हैं। माता के पवित्र गर्भगृह में कमल-विष्टर पर अपने को रख कर परम शक्ति से तुम उत्पन्न हुए हो इसलिए भी निष्कल हो - ऐसा आर्ष ग्रन्थों में लिखा है।

भुवनेश्वर: = भुवनस्य त्रैलोक्यस्येश्वर: प्रभु: स भुवनेश्वर: = भुवन याने लोक जो तीन लोक के ईश्वर हैं वे भुवनेश्वर कहे जाते हैं।

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामय:।
अचलस्थितिरक्षोभ्य: कूटस्थ:स्थाणुरक्षय: ॥४॥

हे जिनराज! निरञ्जन, जगज्ज्योति, निरुक्तोक्ति, निरामय, अचलस्थिति, अक्षोभ्य, कूटस्थ, स्थाणु, अक्षय ये आपके नाम हैं।

निरञ्जनः = निर्गतं अञ्जनं कर्म्ममलं कलंकं यस्येति स निरञ्जनः द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरहित इत्यर्थः। निरञ्जनलक्षणमुक्तं श्रीसोमदेवसूरिणा यशस्तिलकमहाकाव्ये =

क्षुत्पिपासा भयद्वेषश्चिन्तनं मूढतागमः ।
रागो जरा रुजा मृत्युः क्रोधः स्वेदो मदो रतिः ॥

विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश ध्रुवं।
त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे॥

एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोऽयमाप्तो जिनेश्वरः ।

कर्म मल कलंक को अञ्जन कहते हैं और जिनेन्द्र के ये कर्म - द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म नहीं हैं इसलिए निरञ्जन हैं। सोमदेव आचार्य ने यशस्तिलक महाकाव्य में निरञ्जन का यह लक्षण कहा है- भूख, प्यास, भय, द्वेष, चिन्ता, मोह, राग, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, स्वेद, क्रोध, मद, रति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा तथा खेद ये अठारह दोष त्रिलोक के प्राणियों में पाये जाते हैं, जिसमें ये दोष नहीं हैं वही आप्त है, तथा वही निरंजन कर्ममल कलंक रहित है, ऐसा समझना।

तथा परमात्मप्रकाशे निरञ्जनस्वरूपं सूत्रत्रयेण व्यक्तीकृतं श्रीयोगीन्द्रदेवैः

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु ण वि णाउ णिरंजणु तासु॥

जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणि॥

अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ॥

जिसमें वर्ण, गंध, रस नहीं; शब्द, स्पर्श, जन्म, मरण नहीं, उसका नाम निरञ्जन है, जिसमें क्रोध, मोह, मद, माया, अभिमान नहीं है। जिसके गुणस्थान और ध्यान नहीं उसे निरंजन मानो। जिसमें पुण्य तथा पाप नहीं, हर्षविषाद नहीं, जिसमें कोई भी दोष नहीं उसे निरंजन समझो।

जगज्ज्योतिः = जगति विश्वस्मिन् लोके अलोके च ज्योतिः चक्षुः स जगज्ज्योतिः। लोकलोचनमित्यर्थः = इस लोक में तथा अलोक में केवलदर्शन नामक लोचन जिसके है वह जिनदेव जगज्ज्योति है। अथवा जो लोगों के लिए चक्षु, लोचन समान है उसे जगज्ज्योति कहते हैं।

निरुक्तोक्तिः = निरुक्ता निश्चिता पूर्वापरविरोधरहिता उक्तिर्वचनं यस्य स निरुक्तोक्तिः = जिनकी उक्ति अर्थात् उपदेश पूर्वापर दोष रहित है ऐसे जिनदेव निरुक्तोक्ति हैं।

निरामयः = निर्गतो विनाशं गतः आमयो रोगो यस्येति स निरामयः = जिसके आमय - रोग नष्ट हो गये हैं वे निरामय हैं।

अचलस्थितिः = अचला निश्चला स्थितिः स्थानं सीमा वा यस्येति स अचलस्थितिः = निश्चल जिनका स्थान मोक्ष है व सीमा है उसे अचल स्थिति कहते हैं।

अक्षोभ्यः = न क्षोभयितुं - चारित्राच्चालयितुं शक्यः अक्षोभ्यः । हेताविनसति स्वराद्यः कारितस्यानामिद्विकरणो इनो लोपे रूपमिदं, अथवा अक्षेण केवलज्ञानेन उभ्यते पूर्यते अक्षोभ्यः =

जिसको क्षोभित करना, चारित्र से प्रच्युत करना शक्य नहीं है, अथवा अक्ष से केवलज्ञान से जो पूर्ण भरा है, उससे पूर्णता प्राप्त होने से जिनमें क्षोभजनन का कारण नहीं है, वे जिनदेव अग्रेसर अक्षोभ्य हैं।

कूटस्थः = कूटस्त्रैलोक्य शिखराग्रे तिष्ठतीति कूटस्थः अथवा अप्रच्युतानुत्पन्न स्थिरैक स्वभावात् कूटस्थः, अथवा कूटः पर्वतराशिः तद्वत्तिष्ठतीति कूटस्थः, निर्विषयत्वेन निर्विकारत्वेन चेत्यर्थः =

कूट में त्रैलोक्य के शिखराग्र में जो स्थित हैं, वे जिननाथ कूटस्थ हैं, तथा जो अपने स्थान से च्युत नहीं होते, जिनकी बार-बार उत्पत्ति नहीं है, जो स्थिर तथा एक स्वभाव के हैं, ऐसे जिन कूटस्थ हैं, अथवा पर्वतराशि के समान स्थिर रहने वाले जिन कूटस्थ हैं, जो निर्विषय हैं, पंचेन्द्रिय के विषयों का सेवन नहीं करते हैं, तथा जो निर्विकार हैं वे ही जिनदेव कूटस्थ हैं।

स्थाणुः = स्था गति निवृत्तौ, जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठतीति स्थाणुः धेन्वादयः धेनुजिष्णु स्थाणु वेणुवग्नवः एते प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते=

स्था धातु गतिनिवृत्ति अर्थ में है अतः जो जगत् के प्रलय होने पर स्थिर रहते हैं, अपने स्थान वा स्वभाव से च्युत नहीं होते अतः आप स्थाणु हैं। धेनु, जिष्णु, स्थाणु, वेणु - ये प्रत्ययान्त निपात सिद्ध होते हैं।

अक्षयः = नास्ति क्षयः विनाशः यस्य स अक्षयः अथवा न अक्षाणि इंद्रियाणि याति प्राप्नोति स अक्षयः, - जिसका क्षय नहीं है, विनाश नहीं है, वह जिन अक्षय है, अथवा जिनके अक्ष याने इन्द्रियाँ नहीं हैं, वे अक्षय हैं।

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेतान्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्द्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत्।।५।।

अर्थ : अग्रणी, ग्रामणी, नेता, प्रणेता, न्यायशास्त्रकृत्, शास्ता, धर्मपति, धर्म्य, धर्मात्मा, धर्मतीर्थकृत् ये नाम जिननाथ के हैं।

अग्रणीः = अग्रं त्रैलोक्योपरि नयति स अग्रणीः। उक्तं च -

प्रांतं संघातयोर्भिक्षा प्रकारे प्रथमेऽधिके।
पलस्य परिमाणे वाऽवलंनोपरिवाच्ययोः॥

पुरः श्रेष्ठे दशस्वेव विद्विदग्रं च कथ्यते = त्रैलोक्य के ऊपर अग्र भाग को ले जाने वाले प्रभु को अग्रणी कहते हैं। सोही कहा है- संघात, भिक्षा, प्रकार, प्रथम, अधिक, पल का परिमाण, अवलंबन, प्राप्त अपरिवाच्य, पुर, श्रेष्ठ इन दस को विद्वान् अग्रण कहते हैं। 'णी' धातु प्राप अर्थ में है, अतः जो सब मुखियापने को प्राप्त हुआ है उसको अग्रणी कहते हैं।

ग्रामणीः = णीस् प्रापणे णी णो नः, नी पूर्वः ग्रामं सिद्धं समूहं, नयतीति ग्रामणी 'सत्सुद्धिषद्रुक्विप्'। अग्रग्राभ्यां नियोणत्वं वैर्लोपो पृक्तस्य =

'णी' धातु प्राप्ति अर्थ में है, अतः 'णी' का 'नी' आदेश हुआ है 'ग्रामं' का अर्थ है सिद्धों का समूह। अतः जो सिद्धसमूह को प्राप्त कराता है, सिद्ध स्थान में ले जाता है वह ग्रामणी कहलाता है। सर्व प्राणियों में श्रेष्ठ है, मुखिया है इसलिए भी ग्रामणी है।

नेता: = नयति स्वस्वधर्म्ममित्येवंशीलो नेता = जो जनता को रत्नत्रय धर्म के प्रति ले जाता है, उसे नेता कहते हैं, सब तीर्थंकरों ने जिसकी जैसी योग्यता है, उसे वैसा उपदेश दिया अत: वे भव्य जन के नेता हुए।

प्रणेता: = प्रणयति सृजतीति सृष्टिमार्गमिति प्रणेता: - जिसने प्रजा को सृष्टिमार्ग बताया, समीचीन जीवन मार्ग बताया, असि, मषि, कृषि आदि छह जीवन मार्ग बताये जो अल्पसावद्य के हैं।

न्यायशास्त्रकृत् = न्यायशास्त्रं कामंदकीसोमनीति - प्रभृत्यविरुद्धं शास्त्रं कृतवान् स न्यायशास्त्रकृत् =

प्रभु ने राज्यावस्था में राजनीति से अविरुद्ध शास्त्र की रचना की तथा उसको अपने पुत्रादिकों को पढ़ाया।

शास्ता = शासु अनुशिष्टौ, शास्ति धर्माधर्ममुपदिशतीति शास्ता गुरुरित्यर्थ: - धर्म मार्ग हितकर है, मोक्षप्रद है, अधर्म मार्ग मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रादिक संसारवर्धक हैं, ऐसा जिनदेव ने उपदेश किया, अत: वे भव्यों के शास्ता हैं, गुरु हैं।

धर्म्मपति: = धर्म्म: चारित्रं रत्नत्रयं वा जीवानां रक्षणं वा वस्तु स्वभावो वा क्षमादि दशविधो वा, तस्य पतिर्नायक: धर्म्मपति:, उक्तं च -

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दहविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

जिनेश्वर धर्म के पति हैं, चारित्र धर्म है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र अर्थात् रत्नत्रय धर्म है। क्षमादि भावरूप दस प्रकार का धर्म है तथा जीवों का पालन करना, उनका रक्षण करना धर्म है। पदार्थों के स्वभाव धर्म हैं। जिनने ऐसा यथार्थ प्रतिपादन किया अत: वे धर्मपति थे।

धर्म्य: = **धर्मेभ्योहितो धर्म्य: यदुगवादित:** = धर्म की प्रवृत्ति में तत्पर होकर जगत् में उसकी प्रभावना करने के लिए कटिबद्ध होने वाले जिनराज धर्म्य कहे जाते हैं।

धर्मात्मा = उत्तम क्षमामार्दवार्जव शौच सत्य संयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्म्मः । धर्म्मः आत्मा यस्येति स धर्म्मात्मा = उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य व ब्रह्मचर्य ऐसा दश प्रकार का धर्म ही जिनका आत्मा है ऐसे जिनदेव धर्मात्मा कहे जाते हैं।

धर्मतीर्थकृत् = धर्मश्चारित्रं स एव तीर्थः तं करोतीति धर्म्मतीर्थकृत् उक्तमार्षे पुराणे श्रीजिनसेनाचार्यैः =

निवृत्तिर्मधुमांसादिसेवायाः पापहेतुतः।
स धर्म्मस्तस्य लाभो यो 'धर्म्मलाभ' उदाहृतः॥

धर्म चारित्र रूप है और वही तीर्थ है, ऐसे तीर्थ को जिनदेव ने उत्पन्न किया अतः वे धर्मतीर्थकृत् हैं।

आर्षपुराण (महापुराण) में जिनसेनाचार्य ने कहा है कि पाप के कारण-भूत मधु, मांस आदि की निवृत्ति को धर्म कहते हैं, उस धर्म का लाभ जिसको होता है, वह धर्मलाभ है। उस धर्मलाभ रूपी धर्मतीर्थ के कर्त्ता जिन कहलाते हैं।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्त्ता वृषभांकोवृषोद्भवः॥६॥

अर्थ : वृषध्वज, वृषाधीश, वृषकेतु, वृषायुध, वृष, वृषपति, भर्त्ता, वृषभाङ्क, वृषोद्भव ये सब जिनदेव के नाम हैं।

वृषध्वजः = वृषो वृषभो ध्वजः पताका यस्य स वृषध्वजः = वृष को बैल कहते हैं, उसका चिह्न जिसकी ध्वजा पर है वह जिनपति वृषभध्वज है।

वृषाधीशः = वृषस्य अहिंसालक्षणधर्मस्य अधीशः स्वामी स वृषाधीशः = वृष शब्द का अर्थ धर्म होता है और अहिंसा लक्षणात्मक धर्म का जो अधीश स्वामी है उसे वृषाधीश कहते हैं।

वृषकेतुः = वृषः पुण्यं केतुश्चिह्नं यस्येति स वृषकेतुः तथा चोक्तमनेकार्थे 'केतुर्द्युतिपताकयोः ग्रहोपरि चिह्नेषु'। पुण्य को वृष कहते हैं, वह ध्वजा एवं चिह्न जिनका है, वे भगवान वृषकेतु कहे जाते हैं। अनेकार्थ कोश में केतु, द्युति,

पताका, घर के ऊपर जो चिह्न होता है वह, सब एकार्थक कहे गए हैं। धर्म ही जिनकी कान्ति है, चिह्न है, ध्वजा है, केतु है अत: वे वृषकेतु हैं।

वृषायुध: = वृषोधर्म: स एव आयुधं प्रहरणं कर्म्मशत्रु निपातनत्वात् यस्य स वृषायुध: = वृषधर्म ही जिनेश्वर का आयुध है, उससे वे कर्मशत्रु को धराशायी करते हैं।

वृष: = वर्षति वृणोति वा पापमनेन स वृष: = जो धर्म की वृष्टि, वर्षा करते हैं, उन्हें बुधलोक वृष कहते हैं।

वृषपति: = वृषस्य अहिंसाधर्म्मस्य पति: स्वामी वृषपति: = अहिंसा धर्म को वृष कहते हैं, जिनेन्द्र उसके पति स्वामी हैं अत: वृषपति कहे जाते हैं।

भर्त्ता = बिभर्त्ति धरति वा जगत् भव्यजनं उत्तमस्थाने धरति केवलादिगुणै: पुष्णातीति स भर्त्ता = भव्यजनों को उत्तम स्थान में जो धारण करते हैं ऐसे भगवान भर्त्ता हैं, तथा केवलज्ञानादि गुणों से जो भव्यों का पोषण करते हैं, वे प्रभु भर्त्ता हैं।

वृषभांक: = वृषभ: अंको लक्ष्म यस्य स वृषभाङ्क - उक्तमनेकार्थे अंकोभूषा रूपक लक्ष्म सुचित्रा जौ नाटकाद्यंशे स्थाने क्रोडेऽतिकागसो: = वृषभ बैल जिनका लांछन है, अनेकार्थ कोश में अंक के अनेक अर्थ कहे हैं। अंक चिह्न, भूषा-आभूषण, रूपक, लक्षण, सुचित्र, नाटक का एक अंश, क्रीड़ा का स्थान आदि अनेक अर्थ वाला है। अत: वृषभ जिसका चिह्न है, भूषण है, लक्षण है अत: वृषभांक कहलाते हैं।

वृषोद्भव: = वृषस्य सुकृतस्य उद्भव: प्रादुर्भावो यस्य तस्माद्वा स वृषभोद्भव: अथवा वृषात् वृषभ दर्शनात् जन्म यस्य स वृषभोद्भव: = जिनको वृष की, पुण्य की उत्पत्ति हुई वे आदि जिन वृषोद्भव हैं, अथवा वृष का माता ने स्वप्न में दर्शन किया था इसलिए जिनेश्वर वृषोद्भव हैं।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावन:।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तक:।।७।।

अर्थ : हिरण्यनाभि, भूतात्मा, भूतभृद्, भूतभावन, प्रभव, विभव, भास्वान्, भव, भाव, भवान्तक, ये जिनवर के नाम हैं।

टीका – हिरण्यनाभिः = हिरण्यं सुवर्ण नाभिः यस्यासौ हिरण्यनाभिः = हिरण्य सुवर्ण उसके समान प्रभु की नाभि चमकीली थी इसलिए वे हिरण्यनाभि नाम से प्रसिद्ध हुए।

भूतात्मा = भूतः सत्यार्थः आत्मा यस्येति भूतात्मा, कोऽसौ आत्मा शब्दस्य सत्यार्थः इति चेदुच्यते। अतः सातत्यगमने इति तावद्धातुर्वर्त्तते। अतति सततं गच्छति लोकालोकस्वरूपं जानातीत्यात्मा, सर्वधातुभ्यो मत् 'सर्वे गत्यर्थाः' इत्यभिधानात्। सच्चे अर्थ से युक्त है आत्मा जिनका ऐसे प्रभु भूतात्मा हैं, आत्मा शब्द का सत्यार्थ कौनसा है ? उत्तर = 'अत्' धातु से आत्मा शब्द की सिद्धि होती है। अत् धातु का अर्थ सतत गमन करना है, जो गत्यर्थक धातु हैं, वे ज्ञानार्थ में भी मानी जाती हैं। अतः अतति जानाति इति आत्मा ऐसी निरुक्ति यहाँ उपयोगी है, अर्थात् लोकालोक स्वरूप को जो जानता है, उसे आत्मा कहना चाहिए अतः सम्पूर्ण लोक को जानने से जिनका आत्मा व्यापक है ऐसे भगवान जिनदेव भूतात्मा हैं।

भूतभृद् = भूतान् प्राणिनः देवविशेषांश्च बिभर्त्ति पालयति स भूतभृत् = भूतों का याने प्राणियों का और भूत जाति के देव विशेषों का भी जो भगवान पालन करते हैं, वा सर्व जीवों के रक्षक हैं अतः भूतभृत् हैं।

भूतभावनः = भूता सत्यरूपा भावना वासना पुनश्चिन्तनं यस्य स भूतभावनः अथवा भूता सत्तारूपा दर्शनविशुद्धिर्विनय-संपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ, शक्तितस्त्याग-तपसी-साधु-समाधि-वैयावृत्य करण मर्हदाचार्य बहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग प्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य। एताः षोडशभावनाः यस्यासौ भूतभावनः = भूता सत्यरूप भावना – पुनःपुनः चिन्तन जिनका है, ऐसे प्रभु भूतभावन हैं, अथवा दर्शन-विशुद्धि आदि ऐसी तीर्थंकरत्व को प्राप्त कराने वाली सत्य भावनायें जिन्होंने भायी हैं वे जिनराज भूतभावन हैं। आपकी भावनाएँ सत्यरूप हैं। अतः आप भूतभावन हैं।

प्रभव: = प्रभवत्यस्माद्वंश: प्रभव: अच् अथवा प्रकृष्टो भवो जन्म यस्येति प्रभव:।

जिनसे वंश उत्पन्न हुआ, आदिनाथ भगवान से इक्ष्वाकु वंश उत्पन्न हुआ तथा उन्होंने कुरुनाथ आदि वंशों की स्थापना की, या प्रकृष्ट-उत्कृष्ट है भव या जन्म जिनका उन्हें प्रभव कहते हैं। वा मोक्षप्राप्ति का कारण होने से आप प्रभव हैं।

विभव: = विभवत्यनेन विगमो संसारस्य भवस्य स विभव: विशिष्टो भवो जन्म यस्य स विभव: = जिन्होंने भव का संसार का नाश किया ऐसे जिनराज विभव हैं, अथवा विशिष्ट भव जन्म है जिनका, तीर्थंकरपद विशेष से युक्त भव जन्म होने से वे विभव हैं। अथवा 'वि' विगत 'भव' उत्पत्ति है अर्थात् अब आप जन्म धारण नहीं करेंगे।

भास्वान् = भा केवलज्ञानलक्षणा दीप्तिर्यस्य स भास्वान् = 'भा' आभा केवलज्ञान लक्षण जिसका ऐसी दीप्ति जिनकी वे भगवान भास्वान् हैं। वा प्रकाशमान होने से आप भास्वान् हैं।

भव: = भवति अस्तीति भव्यप्राणिनां हृदये स भव: अच् = जो भव्य प्राणियों के हृदय में सदा रहते हैं ऐसे प्रभु भव हैं। अथवा आप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त होने से भव हैं।

भाव: = भवति विद्यते महामुनीनामपि मानसे भाव: वा ज्वलादि दुनी भुवो ण:।

जो महामुनियों के चित्त में निरंतर स्थिर रहता है अत: भाव: है अथवा - ज्वलादि दुनी में 'भुव' ण प्रत्यय होता है।

जो होता है, उसे भाव कहते हैं। चैतन्य मात्र में लीन रहने से आप भाव हैं।

भवान्तक: = भवस्य संसारस्य अन्तक: विनाशक: भक्तानां भवान्तक: - भक्तों के संसार का विनाश करने वाले होने से प्रभु भवान्तक कहे जाते हैं। वा स्वकीयसंसार-परिभ्रमण का नाश करने से आप भवान्तक हैं।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः।
स्वयम्प्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥

अर्थ : हिरण्यगर्भ, श्रीगर्भ, प्रभूतविभव, अभव, स्वयम्प्रभु, प्रभूतात्मा, भूतनाथ, जगत्प्रभु ये आठ जिनेश्वर के नाम हैं।

टीका - हिरण्यगर्भः = हिरण्येन सुवर्णेनोपलक्षितो गर्भो यस्य स हिरण्यगर्भः, भगवति गर्भे स्थिते नवमासान् रत्नकनकवृष्टिर्मातुर्गृहांगणे भवति तेन हिरण्यगर्भः। गर्भागमनात्पूर्वमपि षण्मासान् रत्नैरुपलक्षिता सुवर्णवृष्टिर्भवति तेन हिरण्यगर्भः। अथवा हि निश्चयेन रण्ये रणे साधुः गर्भो यस्य स हिरण्यगर्भः भगवतः पिता केनापि रणे जेतुं न शक्यो यस्मात् तेन भगवान् हिरण्यगर्भः - हिरण्य-सुवर्ण से उपलक्षित हुआ है गर्भ जिसका, जिनदेव जब माता के गर्भ में आये तभी से गर्भ से छह मास पूर्व १५ मास तक माता के गृहाङ्गण में रत्नसुवर्णों की वृष्टि हुई, इस कारण से प्रभु का हिरण्यगर्भ यह नाम सार्थक हुआ। अथवा निश्चय से रण्ये रण में साधु है गर्भ जिनका ऐसे प्रभु हैं। भगवान पिता रण में किसी से भी जीते नहीं गये इसलिए भगवान का हिरण्यगर्भ नाम जनप्रसिद्ध हुआ। अथवा जब आप माता के गर्भ में आये थे, उस समय पृथ्वी सुवर्णमय हो गयी थी अतः हिरण्यगर्भ हैं।

प्रभूतविभवः = प्रभूतः प्रचुरः विभवस्त्रैलोक्यसाम्राज्यं यस्य स प्रभूतविभवः- प्रभु को त्रैलोक्य का साम्राज्य प्राप्त हुआ अतः वे प्रभूतविभव नाम से प्रसिद्ध हैं। वा आपका समवसरण रूप अपूर्व वैभव होने से आप 'प्रभूत विभव' हैं।

अभवः = न विद्यते भवः संसारो यस्य सोऽभवः। प्रभु संसार से पुनर्जन्म से रहित थे। जिनके भव नहीं है, वे अभव कहलाते हैं।

स्वयम्प्रभुः = स्वयमात्मना प्रभुः स न तु केनापि कृतः स्वयंप्रभुः = जिनदेव स्वयं समर्थ थे, अन्य किसी ने प्रभु को समर्थ नहीं बनाया।

प्रभूतात्मा = प्रभूतः सत्तालक्षण आत्मा यस्य स प्रभूतात्मा सिद्धस्वरूप इत्यर्थः - प्रभूत सत्ता लक्षण से युक्त प्रभु का आत्मा है अतः वे प्रभु सिद्धस्वरूप

हैं। वा केवलज्ञान की अपेक्षा आपकी आत्मा सर्वत्र व्याप्त होने से आप प्रभूतात्मा हैं।

भूतनाथः = भूतानां प्राणिनां देवविशेषाणां च नाथः स्वामी स भूतनाथः अथवा भूतैः पृथिव्यप्तेजो वायुश्चतुर्भिर्भूतैरुपलक्षितो नाथः सः भूतनाथः, अथवा भूतानां अतीतानां उपलक्षणत्वात् वर्तमान भविष्यतां च नाथः स भूतनाथः, अथवा भुवि पृथिव्यां उता संतानं प्राप्ता पृथिव्याद्या ये ते भूतः तेषां नाथः स भूतनाथः = प्रभु भूतों के प्राणियों के नाथ देवविशेषों के नाथ स्वामी हैं। तथा भूत - पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इनसे उत्पन्न हुए प्राणियों के भगवान, नाथ, स्वामी हैं। अथवा भूत अतीतों के भगवान नाथ हैं। भूत शब्द यहाँ उपलक्षण है। वह वर्तमान तथा भविष्य का भी ग्रहण करता है। अर्थात् प्रभु भूत-वर्तमान तथा भविष्यत् सर्व पदार्थों के नाथ स्वामी हैं। अथवा भुवि पृथ्वी पर उतः सन्तान परंपरा को प्राप्त हुए जो पृथिवी, हवा, पानी, अग्नि आदिक प्राणी उनके प्रभु नाथ स्वामी हैं।

जगत्प्रभुः = जगतस्त्रैलोक्यस्य प्रभुः स्वामी स जगत्प्रभुः = तीन जगतों के, त्रैलोक्य के जिनदेव स्वामी हैं प्रभु हैं अतः जगत्प्रभु कहे जाते हैं।

सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्व्वलोकेशः सर्ववित् सर्व्वलोकजित्।।९।।

अर्थ : सर्वादि, सर्वदृक्, सार्व, सर्वज्ञ, सर्वदर्शन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, सर्ववित्, सर्वलोकजित् ये नव नाम भगवन्त के हैं।

टीका - सर्वादिः = सर्वस्य जगतः आदिरुद्भवः यस्मात् स सर्वादिः = सर्व जगत् की आदि, उत्पत्ति जिनसे हुई है ऐसे जिनराज सर्वादि कहे जाते हैं। धर्मसृष्टि की उत्पत्ति जिनेश्वर से ही होती है अतः वे सर्वादि हैं।

सर्वदृक् = सर्वं पश्यति सर्वप्रमाणैरिति सर्व्वदृक् = सर्व जगत् को भगवान सर्व प्रमाणों से देखते हैं।

सार्वः = सर्वेभ्यः सुदृष्टि मिथ्यादृष्टिभ्यः एकेंद्रिय-द्वींद्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय-सूक्ष्म बादर पर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तादि जीवानां हितः स

सार्व:-सुदृष्टि, मिथ्या-दृष्टियों से लेकर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्तादि जीवों का हित जिनदेव करते हैं, सर्व प्राणिवर्ग के ऊपर दया करने का उपदेश वे करते हैं अत: वे सार्व हैं।

सर्वज्ञ: = सर्वत्रिलोककालत्रयवर्तिद्रव्यपर्यायसहितं वस्त्वालोकं च जानातीति सर्वज्ञ:। तथा चोक्तं गौतमस्वामिना-

य: सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूतभाविभवत: सर्वान् सदा सर्वथा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षण मत: सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नम:॥

सर्व त्रैलोक्य तथा त्रिकालवर्ती द्रव्यपर्याय सहित वस्तुओं को तथा अलोक को प्रभु जानते हैं अत: वे सर्वज्ञ हैं, श्री गौतमगणधर ने भी सर्वज्ञ शब्द का विवरण ऐसा किया है- जो संपूर्ण चर द्रव्यों को अर्थात् क्रिया-युक्त जीवपुद्गलों को, संपूर्ण अचर द्रव्य-क्रियारहित द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इनको उनके संपूर्ण विशेषों के साथ जानते हैं। तथा इन द्रव्यों के संपूर्ण गुणों को तथा उनके संपूर्ण भूत भावी और वर्तमान पर्यायों को सतत और सर्वथा युगपत् जानते हैं अत: जो यथार्थ कहे गये हैं उन महावीर सर्वज्ञ जिनेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्वदर्शन: = सर्वं परिपूर्णं दर्शनं क्षायिकं सम्यक्त्वं यस्य स सर्वदर्शन:, तथा चोक्तं श्री पद्मनंदिगुरुणा-

दर्शनमात्मविनिश्चित्तिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोध:।
स्थितिरात्मनि चारित्रं निश्चयरत्नत्रयं वन्दे॥

अथवा सर्वाणि च तानि दर्शनानि मतानि सर्वदर्शनानि तानि सन्तीति यस्य स सर्वदर्शन: सर्वदर्शननायक इत्यर्थ: - परिपूर्ण क्षायिक दर्शन, क्षायिक परमावगाढ़ सम्यक्त्व जिनको प्राप्त हुआ है, वे जिनराज सर्वदर्शन हैं। इसी अभिप्राय को पद्मनंदी गुरु ऐसा कहते हैं, आत्मा का अनुभवप्राप्त होना दर्शन है, आत्मा का ज्ञान होना ज्ञान है तथा आत्मा में स्थिर होना चारित्र है, इस निश्चय रत्नत्रय को मैं वन्दन करता हूँ। अथवा संपूर्ण बौद्ध, सांख्यादि दर्शन स्याद्वाद की अपेक्षा

से जिसके अनुकूल हैं, अर्थात् जो सर्वदर्शनों का नायक है वे जिनेश्वर सर्व-दर्शन कहे जाते हैं।

सर्वात्मा = सर्वं अतति जानाति इति स सर्वात्मा, अथवा सर्वे प्राणिगणः आत्मा यस्य स सर्वात्मा = सर्वं अतति जानाति इति सर्वात्मा, सर्व वस्तुओं को जानने वाला जिनेश्वर सर्वात्मा है। अथवा सर्व प्राणिसमूह जिसका आत्मा है, ऐसा जिनेश्वर सर्वात्मा है।

सर्वलोकेशः = सर्वस्य लोकस्य त्रैलोक्यस्थित प्राणिगणस्य ईशः प्रभुः सर्वलोकेशः- सर्व त्रैलोक्य के अर्थात् त्रिलोकस्थित प्राणियों के जिनेश स्वामी हैं।

सर्ववित् = सर्व जगत् को जानते हैं अतः वे सर्ववित् हैं।

सर्वलोकजित् = सर्वलोकं पंचधासंसारं जितवान् स सर्वलोकजित् = सर्व लोक को अर्थात् पंच प्रकार संसार को जिन्होंने जीता है ऐसे जिनेश्वर सर्वलोकजित् कहे जाते हैं।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः॥१०॥

अर्थ : सुगति, सुश्रुत, सुश्रुत्, सुवाक्, सूरि, बहुश्रुत, विश्वतःपाद, विश्वशीर्ष, शुचिस्रवा, इन दस नाम से प्रभु जाने जाते हैं।

सुगतिः = सुष्ठु शोभना गतिः मुक्तिः यस्य स सुगतिः पंचमगति स्वामीत्यर्थः - जिनकी गति शोभन है, सुंदर है ऐसे जिनराज सुगति हैं अर्थात् पंचमगति के, मुक्ति के स्वामी हैं। वा मोक्षरूप उत्तम गति को प्राप्त होने से सुगति हैं।

सुश्रुतः = शोभनं श्रुतं शास्त्रं यस्य स सुश्रुतः अबाधितार्थश्रुतः इत्यर्थः। अथवा सुष्ठु अतिशयेन श्रुतो विख्यातस्त्रिभुवनजनप्रसिद्धःसुश्रुतः =

समीचीन शोभन शास्त्र जिसके हैं वह सुश्रुत कहलाता है अथवा अबाधित प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण के द्वारा जो बाधित न हो। अर्थ को सुश्रुत कहते हैं। अथवा जिनका श्रुत (वचन) तीन भुवनके प्राणियों में विख्यात हो, प्रसिद्ध हो उसको भी सुश्रुत कहते हैं।

सुवाक् = सुष्ठु सप्तभंगी सहिता वाक् भाषा यस्य स सुवाक अथवा सुवक्तीति सुवाक् = सप्तभंगी सुवाक् नाम से युक्त हैं। आपकी वाणी मनोरम होने से आप सुवाक् हैं।

सूरि: = सूते बुद्धिं सूरि: भू सु आदिभ्य: किं। तथा चोक्तमिन्द्रनन्दिना-

पंचाचाररतो नित्यं मूलाचारविदग्रणी:।
चतुर्विधस्य संघस्य य: स आचार्य इष्यते॥

सूते बुद्धिं सूरि:। जीवादि पदार्थों को जानने वाली बुद्धि को उत्पन्न करने वाले जिनपति का सूरि नाम है। इन्द्रनन्दि आचार्य, सूरि का लक्षण ऐसा कहते हैं। जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ऐसे पाँच आचारों में तत्पर हैं, यतियों के जितने मुख्य आचार हैं उनको वे जानते हैं, मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ऐसे चतुर्विध संघ के जो अग्रणी हैं उनको आचार्य कहते हैं, सूरि कहते हैं। सब विद्याओं को प्राप्त होने से आप सूरि हैं।

बहुश्रुत:= बहु प्रचुरं श्रुतं-

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्र संख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि॥

यस्य स बहुश्रुत: तथाचोक्तं हलायुधे-

प्राज्यं भूरि प्रभूतं च प्रचुरं बहुलं बहु:।
पुरजं पुष्कलं पुष्टमदभ्रमभिधीयते॥

एकसौ बारह करोड़ तैरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच पद हैं। ऐसे श्रुतको मैं नमस्कार करता हूँ।

प्राज्य, भूरि, प्रभूत, प्रचुर, बहुल, बहु, पुरज, पुष्कल, पुष्ट, अदभ्र इनको बहु कहा है हलायुध कोश में। बहुश्रुत के ज्ञाता होने से बहुश्रुत कहा है। अथवा बहुत शास्त्रों के ज्ञाता होने से आपको बहुश्रुत कहते हैं।

विश्रुत: = विशिष्टं श्रुतं श्रवणमाकर्णनं यस्य स इन्द्रनरेन्द्रधरणेन्द्रादीनां सुविश्रुत: जगत्प्रसिद्ध: इत्यर्थ: = विशिष्ट प्रख्याति प्रभु की है। इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्रादिकों में जो जगत्प्रसिद्ध हुए हैं ऐसे जिनेश का विश्रुत नाम है। अथवा

केवलज्ञान हो जाने से 'वि' नष्ट हो गया है श्रुतज्ञान जिनका अत: वे विश्रुत हैं।

विश्वत: पाद: = विश्वस्मिन् विश्वत: ''सार्वविभक्तिकस्तसित्येके'' विश्वत: ऊर्ध्वलोक मध्यलोकाधोलोकेषु पादावंघ्री यस्य स विश्वत: पाद: केवलज्ञानसूर्यत्वात् = सम्पूर्ण विश्व में अर्थात् अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक में जिनेश्वर के दो पाँव फैले हुए हैं। अत: वे विश्वत:पाद हैं। अर्थात् जिनेश्वर के केवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणें संपूर्ण विश्व में चिरन्तन फैली हुई हैं अत: वे विश्वत:पाद हैं। अथवा केवलज्ञान और केवलदर्शन रूप पाद (चरण) संसार में व्याप्त हैं, वा जिनके ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें सारे जगत् में विस्तरित हैं, वे सारे जगत् को जानते हैं अत: विश्वत:पाद हैं।

विश्वशीर्ष: = विश्वस्य त्रैलोक्यस्य शीर्षं उत्तमांगं यस्य स विश्वशीर्ष: त्रैलोक्याग्रनिवासत्वात् = विश्व का त्रैलोक्य का मस्तक अर्थात् मुक्तिस्थान जिनका निवासस्थान है ऐसे जिनेश को विश्वशीर्ष कहते हैं। अथवा लोक के शीर्ष भाग में विराजमान होने से आप विश्वशीर्ष हैं।

शुचिश्रवा: = शुचिनी पवित्रे श्रवसी कर्णौ यस्य स शुचिश्रवा: - शुचि पवित्र श्रवसी दो कान जिनके हैं ऐसे प्रभु शुचिश्रवा नाम के धारक हैं। अथवा आपकी श्रवण शक्ति निर्दोष होने से भी आप शुचिश्रवा हैं।

सहस्रशीर्ष: क्षेत्रज्ञ: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।
भूतभव्यभवद्भर्त्ता विश्वविद्या महेश्वर: ॥११॥

अर्थ : सहस्रशीर्ष, क्षेत्रज्ञ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, भूतभव्यभवद्भर्ता, विश्वविद्यामहेश्वर ये नाम जिनदेव के हैं।

सहस्रशीर्ष: = 'सहमर्षणे धात्वादे: ष: स: सह' इति सहस्रं 'सहेरस्र:' सहस्रशब्दोऽनेकपर्याय: सहस्रं शीर्षाणां अनंतसुखानां यस्य स: सहस्रशीर्ष: अनंतसुखीत्यर्थ:-

सहस्रं शब्द अनेक अर्थों वाला है। सह् सहन करना है।

अनन्त सुखी होने से आप सहस्रशीर्ष कहलाते हैं।

क्षेत्रज्ञः = क्षियंति अधिवसंति तदिति क्षेत्रं 'सर्वधातुभ्यःष्ट्रन्' क्षेत्रमधो मध्योदूर्ध्वलोकलक्षणं त्रैलोक्यमलोकाकाशं च जानाति इति क्षेत्रज्ञः नाम्युपधाः प्रीकृदृगृज्ञां कः' 'आलोपोऽसार्वधातुके'। अथवा क्षेत्रं भगं, भगस्वरूपं जानातीति क्षेत्रज्ञः। उक्तं च भगस्वरूपं शुभचंद्रेण मुनिना-

> **मैथुनाचरणे मूढ म्रियन्ते जंतुकोटयः।**
> **योनिरंध्रसमुत्पन्ना लिङ्ग संघट्टपीडिताः॥**

एकैकस्मिन् घातेऽसंख्येयाः पंचेन्द्रियादयो जीवा म्रियंते इत्यर्थः। 'घाए घाए असंखिज्जा' इति वचनात्। अथवा क्षेत्राणि वंशपत्रकूर्म्मोन्नतशंखावर्तयोनीन् जानातीति क्षेत्रज्ञः, वंशपत्रयोनिः सर्वलोकोत्पत्ति सामान्या, कूर्म्मोन्नतयोनौ शलाकापुरुषा उत्पद्यन्ते, शंखावर्तयोनौ न कश्चिदुत्पद्यते, अथवा क्षेत्रं स्त्री तत्स्वरूपं जानातीति क्षेत्रज्ञः। अथवा क्षेत्रं शरीरं शरीरप्रमाणमात्मानं जानातीति क्षेत्रज्ञः। नहि श्यामाककणमात्रं, न चांगुष्टप्रमाणः न घटस्थित-चटकवदेक-देशस्थितः, न च सर्वव्यापी जीवपदार्थः, किन्तु निश्चयेन लोकप्रमाणोऽपि व्यवहारेण शरीरप्रमाण इति जानातीति क्षेत्रज्ञः = त्रैलोक्य तथा अलोकाकाशरूपी क्षेत्र को प्रभु जानते हैं अर्थात् प्रभु अनन्तज्ञानी हैं। अथवा क्षेत्र शब्द का अर्थ भग-योनि ऐसा है। भग के स्वरूप को जिनदेव जानते हैं अतः वे क्षेत्रज्ञ हैं। शुभचंद्र मुनिवर्य ने क्षेत्र का स्वरूप ऐसा कहा है-

''हे मूढ़ पुरुष ! मैथुन करते समय लिंग के आघात से योनि में उत्पन्न हुए कोट्यवधि जन्तु मरते हैं, 'घाए घाए असंखेज्जा' लिंग के प्रत्येक आघात से असंख्यात जन्तु मरते हैं,'' ऐसा आगमवचन है।

योनि के वंशपत्र, कूर्मोन्नत तथा शंखावर्त्त ऐसे तीन भेद हैं, वंशपत्रयोनि से सर्व लोगों की उत्पत्ति होती है, कूर्मोन्नत योनि में शलाका पुरुष, २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ नारायण, ९ प्रति नारायण तथा ९ बलभद्र उत्पन्न होते हैं। शंखावर्त्त योनि में कोई उत्पन्न नहीं होता। अथवा क्षेत्र-स्त्री उसके स्वरूप को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है।

अथवा क्षेत्र = शरीर उसको जानने अर्थात् तत्प्रमाण आत्मा को जानना ऐसा क्षेत्रज्ञ शब्द का अर्थ है। यह आत्मा राई के कणतुल्यनहीं है। अथवा अंगूठे

का प्रमाण जितना है उतना आत्मा है ऐसा भी मानना योग्य नहीं है। या घर में स्थित चटका पक्षी के समान आत्मा शरीर के एकदेश में स्थित है, ऐसा मानना भी योग्य नहीं है। या यह आत्मा सर्वव्यापी है ऐसा मानना भी योग्य नहीं है। परन्तु निश्चय नय से आत्मा लोकव्यापक होने पर भी व्यवहार नय से यह शरीर प्रमाण है, ऐसा जिन जानते हैं, अत: वे क्षेत्रज्ञ हैं।

क्षेत्र अर्थात् आत्मा को जानने वाले होने से आप क्षेत्रज्ञ हैं।

सहस्राक्ष: = अक्षशब्दस्य सकलेन्द्रियोपलक्षणं, सहस्रमक्षाणां अनंतज्ञानानां यस्य स सहस्राक्ष: अनंतदर्शीत्यर्थ: = अक्ष शब्द का अर्थ केवल नेत्र न समझना परन्तु अक्ष शब्द को कान, नाक, जिह्वा आदि सर्व इन्द्रियों का वाचक मानना चाहिए अर्थात् सहस्रों इन्द्रियों से जिनको ज्ञान उत्पन्न होता है ऐसे अनन्तज्ञानी जिनेन्द्र को सहस्राक्ष कहना चाहिए अर्थात् अनन्तदर्शी जिनेश्वर, यह अर्थ सहस्राक्ष शब्द से लेना चाहिए। अनन्त पदार्थों के दर्शक होने से भगवान् सहस्राक्ष हैं।

सहस्रपात् = सहस्रं पादानां अनंतवीर्याणां यस्य स सहस्रपात् अनंतवीर्य इत्यर्थ: = जिनेश्वर के सहस्रों पाद याने चरण हैं अर्थात् वे अनन्तवीर्य युक्त हैं। अनन्त वीर्य के धारक होने से आप सहस्रपात् हैं।

भूतभव्यभवद्भर्त्ता = भूतमतीतं, भव्यं भविष्यद्, भवच्च वर्त्तमानं कालत्रयावच्छिन्नं जगत्तस्य भर्त्ता नाथ: स भूत भव्य भवद् भर्त्ता = भूत अतीतकाल, भव्य भविष्यकालीन तथा भवन् - वर्त्तमान कालीन ऐसे जगत् के जिनेश्वर भर्त्ता स्वामी हैं। वर्त्तमान, भविष्यत् और भूत तीनों कालों के ज्ञाता होने से भूत, भव्य, भवद्भर्त्ता है।

विश्वविद्यामहेश्वर: = .विश्वविद्याया: केवलज्ञानविद्याया: महेश्वर: महांश्चासौ ईश्वर: महेश्वर: स्वामीत्यर्थ: = सम्पूर्ण विद्या - केवलज्ञान को विश्वविद्या कहते हैं, उसके जिनपति महान् ईश्वर हैं, स्वामी हैं। सम्पूर्ण द्वादशांग विद्याओं के पारगामी होने से आप विश्वविद्या महेश्वर कहे जाते हैं।

इस प्रकार सूरिश्री अमरकीर्ति विरचित जिनसहस्रनाम की टीका का दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ।

#卐 तृतीयोऽध्यायः 卐

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः॥

स्थविष्ठ, स्थविर, ज्येष्ठ, प्रष्ठ, प्रेष्ठ, वरिष्ठधी, स्थेष्ठ, गरिष्ठ, बंहिष्ठ, श्रेष्ठ, अणिष्ठ, गरिष्ठगी ये बारह नाम जिनेश्वर के हैं।

स्थविष्ठः = अयमेषामतिशयेन स्थूलः स स्थविष्ठः 'गुणादिष्ठेयन्सौ वा' स्थूल दूर वयुक्षिप्रक्षुद्राणामंतस्थादेर्लोपो गुणश्च = गुणों की अपेक्षा अत्यन्त विशाल होने से स्थविष्ठ हैं। अत्यन्त स्थूल को स्थविष्ठ कहते हैं- आप ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुणों में अति स्थूल हैं, महान् हैं अतः स्थविष्ठ हैं।

स्थविरः = मुक्तिपदे तिष्ठतीति स स्थविरः = जो मुक्तिपद पर तिष्ठते हैं, निश्चल रहने वाले हैं वे स्थविर कहे जाते हैं। अनन्त ज्ञानादिक गुणों के द्वारा वृद्ध होने से स्थविर कहलाते हैं।

ज्येष्ठः = अतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा ज्येष्ठः = गुणादिष्टेयन्सौ वा वृद्धस्य च ज्यः चकारात् प्रशस्य च ज्यः - अतिशय बृहत् अथवा प्रशस्य ऐसे जिनदेव ज्ञानादि गुणों में वृद्ध होने से ज्येष्ठ हैं। अथवा लोक में श्रेष्ठ होने से भी ज्येष्ठ हैं।

प्रष्ठः = प्रकर्षेण अग्रे तिष्ठतीति प्रष्ठः 'आतश्चोपसर्गेऽड्प्रत्ययः' = सबसे आगे तिष्ठने वाले सबके अग्रणी होने से प्रष्ठ हैं। सबके अग्रगामी होने से प्रष्ठ कहे जाते हैं।

प्रेष्ठः = अतिशयेन इंद्र-धरणेन्द्र - नरेन्द्र - मुनीन्द्र - चंद्रादीनां प्रियः प्रेष्ठ 'गुणादिष्टेयन्सौ वा' इष्ट प्रत्ययः, इष्ट प्रत्यये सति प्रियशब्दस्य प्र इति आदेशः तद्वदिष्ठमेयस्सु बहुलमिति वचनात्। प्रिय स्थिर स्फिरोरुगुरु बहुल तृ प्रदीर्घ ह्रस्व वृद्धवृन्दारकाणां प्रस्थस्फुवरगरवंहंत्रपद्राघ ह्रसवर्ष वृन्दाः प्रियशब्दस्य प्र आदेशः=

अतिशय रूप से इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र, मुनीन्द्र, चन्द्रादि को प्रिय होने

से प्रेष्ठ कहलाते हैं। 'इष्ट्' धातु श्रेष्ठ अर्थ में है, 'प्र' उत्कृष्ट अर्थ में, 'प्र' आदेश होता है। इ का आदेश होकर प्रिय शब्द बनता है जिसका अर्थ है सारे जगत् में प्रिय होने से श्रेष्ठ है।

वरिष्ठधी: = वरिष्ठा विस्तीर्णा धी: केवलज्ञानलक्षणा बुद्धिर्यस्य स वरिष्ठधी: तथा चोक्तं हलायुधे -

बृंहदुरुगुरुविस्तीर्णं, पुरुष्कलं महद् विशालं च।
व्यूढं विपुलं रुन्द्रं वरिष्टमेकार्थमुद्दिष्टम्॥

वरिष्ठ विस्तृत 'धी' केवलज्ञान लक्षण बुद्धि जिसके है वह वरिष्ठधी कहलाता है।

हलायुध कोश में लिखा है-

बृहद्, उरु, गुरु, विस्तीर्ण, पुष्कल, महद्, विशाल, व्यूढ, विपुल, रुन्द्र वरिष्ठ ये सर्व एकार्थवाची हैं अत: अत्यन्त विशाल अविनाशी बुद्धि जिनकी है वे वरिष्ठधी कहलाते हैं। (अथवा, श्रेष्ठ बुद्धि होने से वरिष्ठधी हैं।)

स्थेष्ठ: = अयमेषामिंद्रनरेन्द्रधरणेन्द्रादीनां मध्ये अतिशयेन स्थिर: स्थेष्ठ: = इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्रादिकों में भगवान अत्यंत स्थिर हैं। अत्यन्त स्थिर निष्कंप होने से आप स्थेष्ठ हैं।

गरिष्ठ: = अयमेषामतिशयेन गुरु: गरिष्ठ: ''प्रिय स्थिर स्फिरोरु गुरु बहुलतृप्रदीर्घहस्व वृद्ध वृंदारकाणां प्रस्थ स्फुवरगरबंहत्रपद्राघहसवर्षवृंदा:'' =

इन उपर्युक्त इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि के मध्य में अतिशय रूप से गुरु हैं, महान् हैं, स्थिर हैं अत: गरिष्ठ हैं।

बंहिष्ठ: = अयमेषामतिशयेन बहुल: स बंहिष्ठ: = भगवान जिनदेव सबसे केवलज्ञानादि गुणों से विपुल पीवर मोटे हैं। वा गुणों की अपेक्षा अनेक रूप धारण होने से आप बंहिष्ठ हैं।

श्रेष्ठ: = अतिशयेन प्रशस्य: श्रेष्ठ: 'गुणादिष्ठेयन्सौ वा' प्रशस्य: श्रेष्ठ: = केवलज्ञान-दर्शन-सुख-शक्त्यादि गुणों से श्रेष्ठ हैं। वा अत्यन्त प्रशंसनीय होनेसे श्रेष्ठ हैं।

अणिष्ठः = अयमेषामतिशयेन अणुः सूक्ष्मः अणिष्ठः = प्रभु अति सूक्ष्म अणु से भी छोटे हैं अत्यन्त सूक्ष्म होने से इन्द्रिय अगोचर होने से अणिष्ठ हैं।

गरिष्ठगीः = गरिष्ठा जगत्पूज्या गीः भाषा यस्य स गरिष्ठगीः- जिनकी केवल दिव्यध्वनि सबसे अत्यन्त पूजनीय है। या गौरवपूर्ण जगत्पूज्य दिव्यध्वनि के स्वामी होने से आप गरिष्ठगी कहे जाते हैं।

विश्वमुट् विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वासीर्विश्वरूपात्मा विश्वजित् विजितान्तकः ॥१॥

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरोऽजरन्।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥२॥

टीका – विश्वमुट्[1] – विश्वं चातुर्गतिकं संसारं मुष्णातीति विश्वमुट्- = विश्व, चातुर्गतिक संसार को विश्व कहते हैं। ऐसे विश्व का जिनदेव ने हरण किया, विनाश किया है अतः वे विश्वमुट् हैं। विश्व के रक्षक होने से विश्वभृत् हैं।

विश्वसृट् = विश्वं सृजतीति विश्वसृट् = अभ्युदय सुख तथा निःश्रेयससुख को देने वाली धर्मसृष्टि की रचना आदिप्रभु ने युगारम्भ में की अतएव वे जैनधर्म सृष्टि के आद्य रचयिता माने गये हैं इसलिए उनको विश्वसृट् आदिनाथ कहते हैं। विश्व की लुप्त व्यवस्था के निरूपक होने से भी वे विश्वसृट् है।

विश्वेट् = विश्वस्य त्रिभुवनस्य ईट् स्वामी स विश्वेट् = वे जिनेन्द्र विश्व के त्रिभुवन के ईट् याने स्वामी हैं। इसलिए विश्वेट् कहे जाते हैं।

विश्वभुक् = विश्वं भुंनक्ति पालयतीति विश्वभुक् = विश्व को संसार से छूटने का उपाय बताकर भुनक्ति उसका पालन करते हैं अतः वे विश्वभुक् हैं।

विश्वनायकः = विश्वस्य त्रैलोक्यस्य नायकः स्वामी स विश्वनायकः

---

१. विश्वभृत् पाठ भी है।

अथवा विश्वं नयतीति सुकर्म्म प्रापयति स विश्वनायक: = जिनदेव विश्व के- त्रैलोक्य के नायक स्वामी हैं, विश्व के जीवों को शुभ कर्म के प्रति ले जाते हैं उनको देवपूजा, सामायिकादि शुभ कर्म में प्रवृत्त कराते हैं अत: वे विश्वनायक हैं।

विश्वासी = विश्वासो विद्यते यस्य स विश्वासी तदस्यास्तीति मत्वंत्वीन् अथवा विश्वस्मिन् लोकालोके केवलज्ञानापेक्षया आस्ते तिष्ठतीत्येवंशील: विश्वाशी: = विश्वास को धारण करने से आप विश्वासी हैं अथवा केवलज्ञान की अपेक्षा से आप विश्वभर में आस् अर्थात् निवास करते हैं, रहते हैं अत: आप विश्वासी हैं।

विश्वरूपात्मा = विशंति प्रविशंति पर्यटंति प्राणिनो यस्मिन्निति विश्वं त्रैलोक्यं तद्रूपस्तदाकार: आत्मा लोकपूरणावसरे जीवो यस्येति स विश्वरूपात्मा अथवा विशंति जीवादय: पदार्था: यस्मिन्निति विश्वं केवलज्ञानं स विश्वरूपात्मा, 'अशिलटिस्वटिविशिभ्य: क:' = जिसमें प्राणी विशन्ति प्रवेश करते हैं, पर्यटन्ति भ्रमण करते हैं, वह विश्व त्रैलोक्य है। लोकपूरण समुद्घात के समय जिनेश्वर का आत्मा तदाकार विश्वाकार होता है अत: वे विश्वरूपात्मा हैं। अथवा जीवादिक पदार्थ जिसमें विशन्ति प्रवेश करते हैं उसे विश्व कहना योग्य है। जिनेश्वर के केवलज्ञान में सम्पूर्ण जीवादिक पदार्थों ने प्रवेश किया है अत: केवलज्ञान को विश्व कहना उचित ही है अत: केवलज्ञान स्वरूप होने से आप विश्वरूपात्मा हैं। अथवा आपकी आत्मा अनन्त पर्याय तथा अनन्त गुण रूप है अत: आप विश्वरूपात्मा हैं।

विश्वजित् = विश्वं संसारं जितवान् स विश्वजित् = प्रभु ने संसार को जीत लिया है अत: वे विश्वजित् हैं। आप सर्व जगत् को जीतने वाले हैं अत: विश्वजित् हैं।

विजितांतक: = विजित: समूलकाषं कषित: अंतको यमो येन स विजितांतक: अथवा विजित: अंतक: परमपदापेक्षया मृत्युरहितत्वात् = जिनदेव ने अन्तक को, यम को मूलसहित नष्ट किया अत:वे विजितान्तक हैं। अथवा परमपद मोक्ष की अपेक्षा से उन्होंने अन्तक को जीत लिया और वे मृत्युरहित हो गये। अत: अब तक मृत्यु को जीत लेने से वे विजितांतक हैं।

विभव: = विशिष्टो भवो यस्य स विभव:। विगतो भवो जन्म संसारो यस्य स विभव: अथवा विभाव इत्यपि पाठो वर्त्तते, विशब्देन विशिष्टा: भावा:परिणामा: यस्य स विभाव: शुद्धात्मोपयोगी इत्यर्थ: अथवा विशिष्टा: भा कान्तिस्तां रक्षति अवति इति विभाव:, 'अवरक्षपालने' अवतीत्यव: = विशिष्ट भव के धारक प्रभु हैं, क्योंकि वे तीर्थंकर नामकर्म के उदय से अन्य तद्भव-मोक्षगामी पुरुषों में तथा शलाका पुरुषों में भी श्रेष्ठ माने जाते हैं। अथवा जिनका जन्म तथा संसार-भ्रमण नष्ट हुआ है अत: वे विभव हैं। अथवा विभाव ऐसा भी पाठ है। विशब्द से विशिष्ट तथा भाव शब्द से परिणाम जिनके हैं वे विभाव हैं। अर्थात् जिनेश्वर शुद्धात्मोपयोगी होने से विशिष्ट परिणाम धारण करने वाले हैं। अथवा वि विशिष्ट जो भी कान्ति उसको अवति रक्षण करने वाले प्रभु को विभाव कहना चाहिए।

विभय: = विशिष्टा भा प्रभा येषां ते विभास्तान् यातीति विभय: विजित-सर्वकांति:, अथवा विनष्टानि भयानि सप्तप्रकाराणि इहलोक - परलोक - वेदना-आकस्मिकात्राणागुप्तिमरणजनितानि यस्य यस्माद् वा भव्यानामिति स विभय:= वि- विशिष्ट, भा प्रभा - कान्ति जिनकी है वे जन विभा हैं। उनको याति भगवान अपनी कान्ति से पराभूत करते हैं अत: वे जिननाथ विभय हैं। अथवा विनष्ट हुए हैं इहलोकभय, परलोकभय, वेदनाभय, आकस्मिकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय तथा मरणभय जिनके वा जिनसे भव्यों के, वे प्रभु विभय हैं।

वीर : = विशिष्टा 'ई' लक्ष्मीर्मोक्षलक्ष्मीस्तां राति ददाति यो भक्तानामिति वीर: वार्हन्त्यं मुक्तिदाता इत्यर्थ:, अथवा कर्म्म-रिपुसंग्रामे वीर इव वीर: = वि-विशिष्ट ई लक्ष्मी - को - मोक्षलक्ष्मी को जो जिननाथ राति भक्तों को देते हैं वे वीर हैं। अर्थात् वे भक्तों को अर्हत्पद देकर अनन्तर मुक्ति को देते हैं। अथवा कर्मशत्रुओं को वीर के समान नष्ट करते है। वा अनन्त बलशाली होने से वीर हैं।

विशोक: = विगत: शोको यस्य यस्माद्वा स विशोक: अथवा विशिष्टं शं सुखरूपमेव क: आत्मा यस्य स विशोक: यस्माद् भव्यानां यस्य वा इति विशोक: अनंतसौख्यं मुक्ति-स्थाने स्थायी आत्मा यस्येत्यर्थ: । 'शं सुखं शरणं

वपुरित्यभिधानात् उ: शिवे मंदिरे मुक्तावित्यपि को ब्रह्मा आत्मा प्रकाशांके कोषात्' = जिनका अथवा जिनसे शोक नष्ट हुआ है वे जिनेन्द्र विशोक हैं। अथवा विशिष्ट शं सुखं विशिष्ट शं सुख युक्त है, 'क' आत्मा जिनका ऐसे जिनेश्वर विशोक हैं। अथवा जिनसे भव्यों का आत्मा शोक रहित होता है, और मुक्तिसुखयुक्त होता है वे जिन विशोक हैं। वा अनन्त सौख्य, मुक्ति स्थान स्थायी है 'क' आत्मा जिसकी अत: विशोक है। अथवा 'वि' विशिष्ट 'श' सुख रूप वा शरण रूप शरीर से 'उ' शिव मन्दिर में 'क' आत्मा जिनकी वह विशोक कहलाते हैं। जिनकी आत्मा विशिष्ट सुख रूप शरीर युक्त मुक्तावस्था में विराजमान है।

विजर: = विगता जरा यस्य स विजर: अथवा विशिष्टो जरो वृद्धो योऽसौ विजर: पुराणपुरुष: इत्यर्थ: = जिनेश्वर जरा रहित होते हैं अत: वे विजर हैं। अथवा जो विशिष्ट वृद्ध हैं ऐसे जिन विजर हैं। अत्यन्त प्राचीन होने से उन्हें वृद्धपना प्राप्त नहीं होने पर भी वे विजर पुराण पुरुष हैं।

अजरन् = अतिशयेन वृद्ध: अजरन् अथवा न जरिष्यतीति अजरन् 'शंतृणानौ निपातवत् क्रियायामिति शतृ प्रत्यय:' भूमिस्थोपि परमानन्द क्रीडनत्वादेवेत्यर्थ: - अतिशय वृद्ध, अतिशय प्राचीन होने से जो जिनेश्वर अजरन् कहे जाते हैं, अथवा 'न जरिष्यति इति अजरन्' जो कभी जीर्ण नहीं होंगे ऐसे प्रभु अजर कहे जाते हैं क्योंकि वे परमानंद में सदा क्रीड़ा करते हैं।' अथवा एक संधि करने से 'जरन्' शब्द भी है जिसका अर्थ है अत्यन्त।

विराग: = विशिष्टो रागो यस्य स विराग : अथवा विगतो रागो यस्य स विराग: । विशिष्ट राग जिसके हो वह विराग है अथवा जिसका राग नष्ट हो गया है वह विराग है। वि: विशिष्ट रूप से 'र' देते हैं 'आ' आत्मीय 'ग' ज्ञान जो वह विराग है अर्थात् जिनकी वाणी से भव्यों को विशिष्ट आत्मीय ज्ञान प्राप्त होता है- वे विराग कहलाते हैं।

विरत: = विनष्टं रतं भवसुखं यस्य यस्माद् वा स विरत: = नष्ट हुआ है भवसुख जिनका ऐसे जिनेश्वर विराग होते हैं। 'वि' नष्ट हुआ है 'रत' संसार-सुख जिसका वा जिससे, वे विरत कहलाते हैं। वा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पाँच पापों से विरक्त होने से विरत हैं।

असंग: = अविद्यमान: संग: परिग्रह: यस्य स असंग: = जिनके परिग्रहों का पूर्ण अभाव है ऐसे जिनवर असंग हैं।

विविक्त: = सर्वविषयेभ्य: पृथग्भूतो विविक्त: विविच्यते स्म विविक्त: विचिरपृथग् भावे = संपूर्ण पंचेन्द्रिय विषयों से जिनराज अलग होते हैं, विचिर धातु पृथक् भाव में है। अत: जो सर्व विभाव भावों से पृथक् होकर एकाकी शुद्धात्मा में रमण करते हैं, लीन रहते हैं अत: आप विविक्त कहलाते हैं।

वीतमत्सर: = वीतो विनष्टो मत्सर: परेषां शुभकर्म्मद्वेषो वा यस्य स वीतमत्सर: - दूसरों के शुभ कर्म को देखकर जो द्वेष होता है ऐसा मत्सर भाव जिनसे निकल गया है। ऐसे जिनेश्वर वीतमत्सर कहे जाते हैं।

विनेयजनताबंधुर्विलीनाशेषकल्मष:।
वियोगो योगविद्विद्वान् विधाता सुविधि: सुधी:॥४॥

अर्थ : विनेयजनताबंधु, विलीनाशेषकल्मष, वियोग, योगवित्, विद्वान्, विधाता, सुविधि:, सुधी। ये जिनेश्वर के नाम हैं।

विनेयजनताबन्धु: = विनेयजनस्य भाव: विनेयजनता, विनीयन्ते शिष्यन्ते गुरुभिरिति विनेया: शिष्या:, विनेयानां भव्यानां जनानां समूहो भावो वा विनेयजनता, तस्या: बन्धु: परिच्छदवर्ग: स विनेयजनताबन्धु: = गुरुओं के द्वारा विनयादिक गुण जिनको सिखाये जाते हैं, उनको विनेय शिष्य कहते हैं। उनके समूह को जिनेश्वर आत्महित का उपाय बताते हैं अत: विनेयजनता-बन्धु हैं। वा विनयशील, भव्य प्राणियों के समूह के बन्धु होने से विनेयजनता-बन्धु हैं।

विलीनाशेषकल्मष: = जिनके संपूर्ण कर्ममल नष्ट हो गए हैं।

वियोग: = विशेषेण योगो मुक्तिस्त्रिया सह यस्य स वियोग : - मुक्तिस्त्री के साथ जिनका सम्बन्ध कभी टूटने वाला नहीं है ऐसे जिनपति को वियोग कहते हैं।

'वि' विशेष रूप से 'योग' मुक्ति रूपी स्त्री के साथ सम्बन्ध है। अत: वियोग है अथवा आत्मप्रदेश के कम्पन रूप योग से रहित है।

योगवित् = योगमष्टांगलक्षणं वेत्तीति योगवित् = धारणा, प्राणायामादिक आठ भेद जिसके हैं ऐसे ध्यान के स्वरूप को जानने वाले जिनदेव को योगविद् कहते हैं। योग (ध्यान) के धारणा, ध्यान, प्राणायाम, आसन, प्रत्याहार आदि अष्ट अंग को जानते हैं। वा योग (ध्यान) को जानते हैं अत: योगवित् हैं।

विद्वान् = वेत्तीति जानातीति विद्वान् - जो आत्मादिक पदार्थों के स्वरूप को जानते हैं, ऐसे जिनेश्वर को विद्वान् यह नाम देते हैं। वा सर्व पदार्थों के ज्ञाता होने से विद्वान् कहे जाते हैं।

विधाता = विदधाति व्यवहारेण नियुङ्क्ते जनमित्येवंशीलो विधाता; व्यवहार नय के द्वारा जिनदेव लोगों को अधर्म से हटाकर धर्म में लगाते हैं। अत: वे विधाता हैं। विशिष्ट मोक्ष मार्ग का विधान करने वाले होने से वा धर्म रूप सृष्टि के कर्त्ता होने से आप विधाता हैं।

सुविधि: = शोभनो निरतिचारो विधि: चारित्रं यस्य स सुविधि: - जो निरतिचार चारित्र से शोभित होते हैं, ऐसे प्रभु सुविधि हैं। वा आपका कार्य उत्तम होने से आप सुविधि हैं।

सुधी: = सुष्ठु ध्यायतीति सुधी: शुक्ल ध्यान के चिन्तन से कर्मविनाश करने वाले प्रभु को सुधी कहते हैं। वा शोभनीय 'धी' केवलज्ञान रूप बुद्धि जिनके है वे सुधी कहलाते हैं।

क्षांतिभाक् पृथिवीमूर्ति: शांतिभाक् सलिलात्मक:।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥५॥

अर्थ : क्षान्तिभाक्, पृथिवीमूर्त्ति, शान्तिभाक्, सलिलात्मक, वायुमूर्ति, असङ्गात्मा, वह्निमूर्ति, अधर्मधक् ये आठों नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका = क्षांतिभाक् = क्षांतिवान् वा क्षांति: तितिक्षा सा विद्यते यस्य स क्षांतिवान् क्षमाशील: = क्षान्तिभाक् क्षमा धारण करना यह क्षमाभाक् नाम क्षमाशील जिनेश्वर का है। क्षांतिवान् वा क्षांति-तितिक्षा जिसके है वह क्षांतिभाक् है अर्थात् क्षमा को धारण करने वाले होने से आप क्षांतिभाक् कहलाते हैं।

पृथिवीमूर्ति: = पृथिवी वसुधा मूर्तिर्यस्य स पृथिवीमूर्ति: सर्वसहत्वात्

सर्वगतत्वाद्वा = पृथ्वी-वसुधा भूमि है मूर्ति शरीर जिनका ऐसे जिनेश्वर सर्व उपद्रव सहन करते थे इसलिए उनका पृथ्वीमूर्ति नाम प्रसिद्ध हुआ है। सर्वत्र पृथ्वी जैसी व्याप्त हुई है वैसा आपका सहन करने का स्वभावगुण प्रसिद्ध हुआ है अर्थात् पृथ्वी के समान सहनशील होने से पृथिवीमूर्ति हैं।

शांतिभाक् = शांतिं भजते इति शांतिभाक् = आपने शांति का अवलम्बन किया है अत: शांतिभाक् यह आपका नाम प्रसिद्ध हुआ है अर्थात् शांति को भजते हैं, धारण करते हैं अत: शांतिभाक् हैं।

सलिलात्मक: = सलिलं आत्मा यस्य स सलिलात्मा सलिलात्मक: मृदुत्वात् स्वच्छत्वात् वा मलापगमत्वाद्वा तृष्णाभंजनत्वात् = जलस्वरूप यह आपका नाम मृदुपना, स्वच्छपना, मल दूर करना, तृष्णा विनाश करना इत्यादि कार्यों से प्रसिद्ध हुआ है। आपकी भक्ति करने से भक्त में मार्दव गुण उत्पन्न होता है, भक्त का कर्ममल दूर होता है, उसकी तृष्णा, आशा, लोभ ये दोष दूर होते हैं। अत: सलिल (जल) के समान शीतलतादि गुणों के धारक होने से आप सलिलात्मक हैं।

वायुमूर्त्ति: = वायु: समीरणो मूर्त्तिर्यस्य स वायुमूर्त्ति: जगत्प्राणरूपत्वात् अप्रतिहतगतित्वाद्वा - हवा को वायु कहते हैं, जिनेश्वर वायुस्वरूपी है, इसका अभिप्राय यह है- वे जगत् के प्राणस्वरूप हैं। जिनेश्वर की आराधना करने से कर्म हमारी मुक्ति के प्रति होने वाली गति को नहीं रोकते हैं। वा वायु के समान अन्य पदार्थों के संसर्ग से रहित होने से आपको वायुमूर्ति कहते हैं।

असंगात्मा = असंग: अपरिग्रह: आत्मा स्वरूपं यस्य स असंगात्मा अपरिग्रहीत्यर्थ: = परिग्रह रहित होना, ऐसे गुणों को आप प्राप्त हुए हैं। आप परिग्रह रहित हुए हैं अर्थात् आपकी आत्मा परिग्रह रहित है, अत: आप असंगात्मा हैं।

वह्निमूर्त्ति: = वह्नेरग्नेर्मूर्त्तिराकारो यस्य स वह्निमूर्त्ति: = जिनेश्वर अग्निस्वरूप हैं, कर्मरूपी लकड़ियों को आपने जला दिया है। अत: कर्मरूपी ईन्धन को भस्म करने के कारण आप वह्निमूर्त्ति हैं।

अधर्मधक् = अधर्मं हिंसादिलक्षणं पापं स्वस्य परेषां च दहति भस्मीकरोतीति स अधर्म्मधक् = हिंसादिक लक्षण जिसके हैं ऐसे अधर्म को आपने जलाकर खाक बनाया है अत: आप अधर्मधक् हैं।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्रामपूजित:।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्यो यज्ञाङ्गममृतं हवि: ॥६॥

अर्थ : सुयज्वा, यजमानात्मा, सुत्वा, सूत्रामपूजित, ऋत्विग्, यज्ञपति, यज्य, यज्ञाङ्गम्, अमृतम्, हवि ये जिनेश्वर के नाम हैं।

टीका = सुयज्वा = सु इष्टवान् सुयज्वाऽनित्सुयजो। जिनेश्वर ने पूर्वभव में अतिशय भक्तियुक्त अंत:करण से पूजा की थी। अथवा कर्मरूप सामग्री का अच्छी तरह होम किया था अत: आप सुयज्वा हैं।

यजमानात्मा = यजते यजमान: यजमान: आत्मा स्वरूपं यस्य स यजमानात्मा दानाधिरूप इत्यर्थ: = अपने आत्मा का आपने आराधन किया, पूजन किया इसलिए आप यजमानात्मा हैं अर्थात् आत्मस्वरूप की आराधना करने के कारण आप यजमानात्मा हैं।

सुत्वा = षुञ् अभिषवे 'धात्वादे: ष: स:' सुनोति सौधर्मेन्द्राद्यज्ञस्नानं प्राप्नोतीति सुत्वा, सूत्रो यज्ञसंयोगे शंतृङन् स्वादेर्नुविकरण: तो विकारो विकरणस्य, उकारस्य वत्वं सुत्वन् जातं = 'षुञ्' धातु अभिषेक वा स्नान अर्थ में है। इसमें षुञ् के षु - के स्थान में 'सु' आदेश होता है अत: जो सौधर्मादि इन्द्रों के द्वारा 'यज्ञ' स्थान प्राप्त हुए हैं अत: सुत्वा हैं। इसमें यज्ञ और संयोग में शंतृन् प्रत्यय करके सुत्कुन् शब्द की उत्पत्ति हुई तथा व्याकरण से 'उ' का व होता है अत: 'सुत्वन्' तथा नकार का लोप कर आदि स्वर की वृद्धि से अत्वा शब्द बना। अत: इन्द्रों के द्वारा मेरु पर स्नान करने से वा आत्मानन्द सिंधु में स्नान करने से सुत्वा हैं।

सूत्रामपूजित: = सूत्रामा शचीपति: तेन सूत्राम्णा पूजित: सूत्रामपूजित: - शचीपति इन्द्र से आप पूजे गये अत: आप सूत्रामपूजित हैं।

ऋत्विक् = यजदेव पूजा संगति करणदानेषु यज ऋतु पूर्व: ऋतौ

गर्भाधानकाले यजति यजते वा ऋत्विक्। 'ऋत्विक् दधृक् स्रक् दिगुष्णिहश्चक्विप् स्वपि वचि संप्रसारणं' इज्, वमुवर्णः ऋत्विग् जातं वेर्लोपशिव्यंजन, चवर्गदुजस्य गः वा विरामे गस्य कः यज्ञकृदित्यर्थः

यज् धातु यज्-देवपूजा, संगति, करण और दान आदि अनेक अर्थ में है अतः (ऋ) पूर्व गर्भाधान काल में पूजा को प्राप्त हुए थे वा गर्भाधानादिकाल के समय इन्द्र आकर आपकी पूजा करते हैं अतः 'ऋत्विक्' कहलाते हैं। वा 'ऋ' ऋतु गर्भाधानादि काल में (यज्) पूजा को प्राप्त हुए, 'यज्' धातु का संप्रसारणं (या) का इ आदेश हुआ अतः 'इज्' हुआ और चवर्ग 'ज' का कवर्ण 'क' आदेश हुआ, अतः ऋतु के उ का व हुआ और ऋत्विक् शब्द बना। अतः ज्ञान यज्ञ के कर्त्ता होने से भी ऋत्विक् कहलाते हैं।

यज्ञपतिः = यज्ञस्य यजनस्य पातिः स्वामी स यज्ञपतिः - आप यज्ञ के स्वामी हैं, यजन करने वाले के पति हैं इसलिए यज्ञपति कहे जाते हैं।

यज्य : = यज् देवपूजा संगति करणदानेषु यज् इज्यते शतेन्द्रेण स यज्यः, तकिचिनियतिशसियजिभ्यो य एव =

'यज्' धातु देवपूजा, संगति, करण और दान अर्थ में है, अतः जो सौ इन्द्रों के द्वारा पूजनीय है अतः 'यज्य' कहलाते हैं। किसी प्रति में यज्य के स्थान में 'यज्ञ' शब्द भी है। जिसका अर्थ है भगवान यज्ञ स्वरूप हैं, पूजनीय हैं अतः यज्ञ कहलाते हैं।

यज्ञांगम् = यज्ञस्य अंगं अभ्युपायः स्वामिनं विना पूज्यो जीवो न भवतीति यज्ञांगम् आविष्ट लिंगनामेदम् = यज्ञ के अंग - कारण अभ्युपाय है। क्योंकि स्वामी के बिना जीव पूज्य नहीं होता है अतः यज्ञ के कारण होने से आप यज्ञांग कहलाते हैं।

अमृतं = मरणं मृतं न मृतं अमृतं मृत्युरहितः इत्यर्थः। आविष्टलिंगमिदं नाम अमृतं रसायनं जरामरणनिवारकत्वात्, संसार भोगतृष्णा निवारकत्वात्, स्वभावेन निर्म्मलत्वात्, वा, अमृतं जलं अनंतसुखदायकत्वात्, वामृतं मोक्षः अमृतं अयाचितं स्वभावेन लभ्यत्वात्, अमृतं यज्ञशेषःयज्ञे कृतेऽनुभूय मानत्त्वादमृतं, तदुक्तं-

मोक्षे सुधायां पानीये यज्ञशेषेप्ययाचिते।
गोरसस्वादुनोर्जग्धावाकाशे धृतहृद्ययो: ॥

रसायनेऽन्नेच स्वर्णेऽतथामृतमुदीर्यते = मरण को मृत कहते हैं, आपको मरण नहीं है अत: आप अमृत हैं। अथवा आप अमृत हैं, क्योंकि आप जरा-मरण निवारक हैं। संसार भोगों की तृष्णा आपने अपनी तथा भव्यों की दूर की है अत: आप अमृत हैं। स्वभाव से निर्मल होने से आप अमृत जल हैं। अनन्त सुखदायक होने से आप अमृत-मोक्ष हैं। याचना के बिना स्वभाव से आपकी प्राप्ति होती है। अत: आप यज्ञशेष के समान हैं। यज्ञशेष को भी अमृत कहते हैं। यज्ञ करने पर, पूजा करने पर जो आनन्दानुभव होता है, उसे भी अमृत कहते हैं। आकाश को भी अमृत कहते हैं, क्योंकि जिनेश्वर का आत्मा कर्म-मल-कलंक रहित होने से आकाश के समान है। मोक्ष, सुधा, पानी, यज्ञशेष, अयाचित, गोरस, स्वादु भोजन, घृत, हृदय, रसायन, अन्न और स्वर्ण को अमृत कहते हैं।

हवि: = हूयते निजात्मनि लक्षतया दीयते हवि:, 'अर्चि-शुचिरुचिहु स्पृहि-छादि-छर्दिभ्य: इस् = निज आत्मा में वा ज्ञानयज्ञ में अशुद्ध आत्मपरिणति को होम देने से आप हवि हैं।

'हू' धातु होम अर्थ में है और अर्चि, शुचि, रुचि, हू, स्पृहि, छादि और छर्दि धातु से इस् प्रत्यय होता है और 'हू' का हो तथा हो का हव होकर हवि बनता है। होम की अग्नि हवि कहलाती है। भगवान ने अपनी आत्मा में अपनी विभाव परिणतियों का होम किया था, जलाया था अत: वे हवि हैं।

व्योममूर्त्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचल:।
सोममूर्त्ति: सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्त्तिर्महाप्रभ: ॥७॥

अर्थ : व्योममूर्त्ति, अमूर्तात्मा, निर्लेप, निर्मल, अचल, सोममूर्त्ति, सुसौम्यात्मा, सूर्यमूर्त्ति, महाप्रभ ये नव नाम जिनेश्वर के हैं।

व्योममूर्त्ति: = व्योम्न आकाशस्य मूर्त्तिराकारो यस्य स व्योममूर्त्ति: = आकाश के समान जिनदेव का स्वरूप है अत: वे व्योममूर्त्ति हैं। अर्थात् आकाश के समान निर्मल होने से आप व्योममूर्त्ति हैं।

अमूर्तात्मा = स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित होने से आप अमूर्तात्मा हैं।

निर्लेपः = निर्गतो निर्नष्टो लेपः पापं कर्म्ममलकलंको यस्य स निर्लेपः, अथवा निर्गतो लेपः आहारो यस्य स निर्लेपः। उक्तं च - **श्वेते द्रव्येऽशने चापि लेपने लेप उच्यते** = नष्ट हुआ है, पाप-मल-कलंक का लेप जिनके ऐसे जिनदेव निर्लेप हैं। अथवा निर्गतः नष्ट हुआ है, लेप भोजन आहार जिनका ऐसे प्रभु निर्लेप हैं। श्वेत, द्रव्य, भोजन, लेपन को लेप कहते हैं- द्रव्य, भोजन, श्वेत आदि वर्ण और उबटन आदि से रहित होने से आप निर्लेप हैं।

निर्म्मलः = निर्गतं मलं विण्मूत्रादि यस्य स निर्मलः। उक्तं च -

तित्थयरा तप्पियरा हलहरचक्की य अद्धचक्की य।
देवा य भोगभूमा आहारो अत्थि णत्थि णीहारो॥

अथवा निर्गतानि मलानि पापकर्म्माणि यस्मादसौ निर्मलः, अथवा निर्गता 'मा' लक्ष्मीर्धनं येभ्यस्ते निर्मा निर्ग्रंथमुनयः तान् लाति स्वीकरोति यः स निर्मलः, अथवा निर्मान् पंचप्रकारनिर्ग्रन्थान् लातीति निर्मलः। के ते पंचप्रकार निर्ग्रन्था इत्याह ''पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका-निर्ग्रन्थाः,'' ''संयम-श्रुत-प्रति-सेवनातीर्थ-लिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्या'' इत्यनयोः सूत्रयोः विवरणं तत्त्वार्थतात्पर्यवृत्तौ नवसहस्रश्लोक प्रमाणायां श्रुतसागरकृतायां ज्ञातव्यं। विस्तारभयाद् मयात्रैव न लिखितम् = नष्ट हुआ है मल विष्ठा-मूत्रादि जिनका ऐसे प्रभु हैं, इस विषय में ऐसा कहा है- तीर्थंकर, उनके माता-पिता, बलभद्र पद के धारकपुरुष, षट्खण्डचक्रवर्ती, त्रिखण्ड चक्रवर्ती जिनको नारायण, प्रतिनारायण कहते हैं, भवनवास्यादिक चतुर्णिकायदेव तथा भोगभूमिज स्त्री-पुरुष इनके आहार है परन्तु नीहार मलमूत्र नहीं है। अथवा नष्ट हुआ है पापकर्म जिनसे ऐसे जिनदेव निर्मल हैं। अथवा 'निर्गता मा लक्ष्मीर्धनं येभ्यस्ते निर्मा मुनयः तान् लाति स्वीकरोति यः स निर्मलः' अथवा जिनके पास लक्ष्मी धन नहीं है। ऐसे मुनियों को निर्मा कहते हैं। ऐसे निर्मा मुनियों को जो स्वीकारते हैं वे जिनराज निर्मल हैं। अथवा निर्मान् पंच प्रकार के पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ तथा स्नातक ऐसे पाँच प्रकार के मुनियों को जो स्वीकारते हैं ऐसे जिनदेव निर्मल

हैं। इन पाँच निर्ग्रन्थ मुनियों के स्वरूप का विवरण श्रुतसागरी (तत्त्वार्थ सूत्र की टीका) में देखो, विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा है।

अचल: = न चलतीत्यचल: - जिनेश्वर अपने स्वरूप से कभी चलित नहीं होते अत: वे अचल हैं।

सोममूर्त्ति : = सोमस्य चंद्रस्य मूर्त्तिरुपमा यस्य स सोममूर्त्ति: शांतत्वादित्यर्थ: = चन्द्र की मूर्त्ति की उपमा जिन्हें दी जाती है ऐसे जिनदेव सोममूर्त्ति हैं, शांत स्वरूप हैं। वा चन्द्रमा के समान शांतिदायक होने से सोममूर्त्ति हैं।

सुसौम्यात्मा = सुष्ठु सौम्योऽक्रूर: आत्मा स्वभावो यस्य स - सुसौम्यात्मा = अतिशय सौम्य अक्रूर क्रूरता-रहित है आत्मा स्वभाव जिनका ऐसे जिनदेव सुसौम्यात्मा हैं।

सूर्यमूर्त्ति: = सूर्यस्य मूर्त्तिरुपमा यस्य स सूर्यमूर्त्ति: = सूर्य की उपमा जिनकी है ऐसे जिनदेव सूर्यमूर्त्ति हैं, सूर्य के समान अत्युज्ज्वल हैं। अत: सूर्यमूर्त्ति हैं।

महाप्रभ: = महती अमिता प्रभा केवलस्वरूपं तेजो यस्येति महाप्रभ: - जिनकी प्रभा देहकान्ति महती है, बड़ी है, तथा जिनका केवलज्ञान तेज अमित है वे जिनराज महाप्रभ हैं।

मन्त्रविन्मन्त्रकृत्मन्त्री, मन्त्रमूर्त्तिरनन्तग: ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्त:, कृतान्तान्त: कृतान्तकृत् ॥८॥

अर्थ : मन्त्रवित्, मन्त्रकृत्, मन्त्री, मन्त्रमूर्त्ति, अनन्तग, स्वतन्त्र, तन्त्रकृत्, स्वन्त, कृतान्तान्त, कृतान्तकृत् ये दश नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका-मंत्रवित् = मंत्रं देवादिसाधनं वेत्तीति मंत्रवित्। तथा चोक्तमनेकार्थे - "मंत्रो देवादिसाधने वेदांशे गुप्तनादे च" - देवादिकों को साधने वाले मन्त्र को जानने वाले होने से मंत्रवित् हैं। देवादि के साधन (वश) में, वेद के अंश में तथा गुप्त मंत्रणा में मंत्र शब्द का प्रयोग होता है, उसका आपने कथन किया है, जानते हैं अत: मंत्रवित् हैं।

मंत्रकृत् = मंत्रं प्रथमानुयोगं, करणानुयोगं, चरणानुयोगं, द्रव्यानुयोगं शास्त्रं करोतीति मंत्रकृत् = प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग

शास्त्रों की रचना करने वाले जिनेश्वर को मन्त्रकृत् कहते हैं, क्योंकि शास्त्रों को मंत्र कहते हैं।

मन्त्री = मकारं च मनः प्रोक्तं त्रकारं त्राणमुच्यते।
मनसस्त्रीणि योगेन मंत्र इत्यभिधीयते॥

मंत्रोऽस्यास्ति स मंत्री = मंत्री शब्द में 'म' कार जो है वह मन है और 'त्र' कार का अर्थ रक्षण होता है। मन और रक्षा का योग, संयोग होता है वा मन, वचन, काय ये तीनों एकाग्र जिसके होते हैं उसको मंत्री कहते हैं।

मन्त्रमूर्त्तिः = मन्त्रः सप्ताक्षरोमंत्रः स एव मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य स मंत्रमूर्त्तिः अथवा मंत्रस्तुतिः सा मूर्त्तिर्यस्य स मंत्रमूर्त्तिः मंत्रं स्तुतिं कुर्वंतो भगवंतं प्रत्यक्षं पश्यंतीति कारणात् मंत्रमूर्त्तिः, उक्तं च-

त्रिदशेन्द्र मौलि मणि रत्न किरण विसरोपचुम्बितं,
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम्।
नखचन्द्ररश्मि कवचातिरुचिर शिखराऽगुलिस्थलम्,
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमंति मन्त्रमुखरा महर्षयः॥

अथवा मंत्रेण गुप्तभाषणेन ताल्वोष्ठाद्यचलत्वं तेनोपलक्षिता मूर्त्तिः शरीरं यस्य स मंत्रमूर्त्तिः = मन्त्र, सप्ताक्षरों से युक्त मंत्र का ग्रहण यहाँ करना चाहिए। अर्थात् 'णमो अरहंताणं' यह मंत्र ही जिनेश्वर का स्वरूप है। अथवा मन्त्र स्तुति ही मूर्त्ति स्वरूप जिनका है ऐसे जिनेश्वर की स्तुति करने वाले भगवंत को प्रत्यक्ष देखते हैं। अतः जिनेश्वर मन्त्रमूर्त्ति हैं। इस विषय में आचार्य ऐसा लिखते हैं- हे भगवन् ! देवेन्द्रों के किरीटों में स्थित मणियों की किरणसमूहों से चुम्बित ऐसे आपके चरण, विकसने वाले कमलदल के समान लाल तलुओं से युक्त हैं। नखरूपी चन्द्र की किरणों की कवचों से अति सुन्दर अग्रभाग युक्त अंगुलियों से युक्त हैं। उन चरणों को मंत्रस्तुति पाठ से मुखर मुख वाले आत्महित में जिनका मन लीन हुआ है ऐसे महर्षि नमस्कार करते हैं।

अथवा चंचलता रहित हे जिनराज ! मन्त्र के गुप्त उच्चार से आपके तालुओष्ठादिक मुखावयव चंचलता रहित हैं। अतः आप मंत्रमूर्त्ति हैं।

अनन्तगः = अनंतं आकाशं मोक्षं वा गच्छतीति अनन्तगः 'डो संज्ञायामपि' = अनन्त रूप आकाश या अनन्तगुण रूप मोक्ष को, हे जिनराज! आप प्राप्त हुए हैं। अनन्त पदार्थों को जानते हैं अतः आप अनन्तग कहलाते हैं। आप अनन्त ज्ञानी हैं।

स्वतंत्रः = स्व आत्मा तन्त्रं शरीरं यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा तंत्रं इति कर्तव्यता यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा इहलोक-परलोक लक्षणद्व्यर्थसाधको यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा तंत्रं करणं परिच्छेदो यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा तंत्रं औषधं यस्य स स्वतन्त्रः, स्व आत्मा तंत्रं कृत्यं कुटुम्बं यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा तंत्रः प्रधानो यस्य स स्वतंत्रः, स्व आत्मा तंत्रं सिद्धांतो यस्य स स्वतंत्रः। उक्तं च-

इति कर्त्तव्यतायां च शरीरे द्व्यर्थसाधके,
श्रुतिशाखांतरे राष्ट्रे कुटुम्बेकृति चौषधे।
प्रधाने च परिच्छेदे करणे च परिच्छदे,
तन्तुवाद्ये च सिद्धान्ते शास्त्रे च तंत्रमिष्यते।।

हे प्रभो ! आपका शरीर आपके आत्मा के आधीन है। इसलिए आप स्वतंत्र हैं। अथवा हे प्रभो, आपका आत्मा ही आपका तन्त्र शरीर है। अथवा आपका आत्मा ही आपका तन्त्र, कर्त्तव्य है। आत्मस्वरूप को छोड़कर आपका अन्य कुछ तन्त्र कर्त्तव्य है ही नहीं। हे प्रभो ! इहलोक-परलोक रूप स्वार्थद्वय साधना ही आपका तन्त्र आत्मा है। आपका स्वआत्मा ही मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधकतम तन्त्रकरण है। अपना आत्मा ही अपना तन्त्र शास्त्र है, अन्य नहीं। अपना आत्मा ही आपका तन्त्र परिच्छेद है, अन्य नहीं अर्थात् अपना आत्मा ही आपका ज्ञेय विषय है, अन्य नहीं। आपका आत्मा ही आपके लिए तन्त्र औषध रूप है, अन्य औषध की आपको आवश्यकता नहीं है। आपका आत्मा ही आपका तन्त्र-कुटुंबकृत्य है, अन्य कुटुम्बकृत्य आपको नहीं है। आपका आत्मा ही आपका-तन्त्र सिद्धान्त है अन्य नहीं है। कर्त्तव्य, शरीर, द्व्यर्थ साधक, श्रुति, शाखान्तर, राष्ट्र, कुटुम्ब, कृति, औषध, प्रधान, परिच्छेद, तन्तु, वाद्य, करण, परिच्छद, सिद्धान्त-शास्त्र आदि अनेक अर्थों में तंत्र शब्द का प्रयोग

होता है अथवा पराधीनता के कारण कर्मबन्ध से रहित होने से आप स्वतंत्र हैं।

तन्त्रकृत् = तन्त्रं शास्त्रं करोतीति तन्त्रकृत् = तन्त्र शास्त्र को आपने ही किया है अतः आप तन्त्रकृत् हैं।

स्वन्तः = सुष्ठुः शोभनं अन्तः सामीप्यं यस्य स्वन्तः = सुशोभन, कल्याण करने वाला है अन्त सामीप्य जिनका ऐसे आप हैं। अथवा आपका अन्तःकरण उत्तम है अतः आप स्वन्त हैं।

कृतान्तान्तः = कृतान्तस्य सिद्धान्तस्य अंतं प्राप्तं येन स कृतान्तान्तः= कृतान्त-सिद्धान्त के अन्त तक आप प्राप्त हुए हैं। अथवा 'कृतान्त' मृत्यु का आपने अन्त किया है अतः आप कृतान्तान्त हैं।

कृतान्तकृत् = कृतान्तं करोतीति कृतान्तकृत् तथा चोक्तमनेकार्थे कृतान्तं क्षेमकर्मणि सिद्धान्त-यमदेवेषु = आप कृतान्त (शास्त्रों) के करने वाले होने से कृतान्तकृत् हैं, 'कृतान्त' शब्द शास्त्र, क्षेम, कर्म सिद्धान्त, मृत्यु और देव अर्थ में आता है। आप सब का कल्याण करने वाले होने से भी कृतान्त-कृत् हैं। कर्मों का नाश करने के लिए ये यमराज के समान हैं अतः कृतान्तकृत् हैं। देव पद को करने वाले होने से भी कृतान्तकृत् हैं।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥८॥

अर्थ : कृती, कृतार्थ, सत्कृत्य, कृतकृत्य, कृतक्रतु, नित्य, मृत्युञ्जय, अमृत्यु, अमृतात्मा, अमृतोद्भव ऐसे दश नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - कृतीः = कृतं पुण्यफलमस्यास्तीति कृती, अथवा सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यमिति वचनात् कृतं पुण्यं विद्यते यस्य स कृती निदान-दोष-रहित विशिष्ट पुण्य प्रकृतिरित्यर्थः, अथवा कृती योग्यः हरिहर हिरण्यगर्भादीनाम-संभाविन्याः शक्रादिकृतायाः पूजायाः योग्य इत्यर्थाः, अथवा कृती विद्वान् अनंत-केवलज्ञानानंतकेवलदर्शन तदुत्थ लोकालोक विज्ञान सामर्थ्य लक्षणानंतशक्ति-तद्विज्ञानोत्थानंतसौख्यसमृद्धः कृतीत्युच्यते, अनंतचतुष्टय-

विराज-मान इत्यर्थ: = कृत-पुण्यफल जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे जिनराज कृती अन्वर्थ नाम धारक हैं। अथवा साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम कर्म, उच्चगोत्र ये कर्म पुण्यकर्म हैं इनको कृत कहते हैं, अर्थात् कृत-पुण्य जिनके पास हैं, वे कृती हैं। पुण्यवान हैं, निदान दोष रहित विशिष्ट पुण्य प्रकृति युक्त ही तीर्थंकर होते हैं अत: वे कृती हैं। अथवा कृती शब्द योग्यतावाचक है, हरि, हर, ब्रह्मदेवादिकों में जिनका असम्भव है ऐसे इन्द्रादिकों से की गई पूजा के लिए जो योग्य है ऐसे जिनेश्वर कृती हैं अथवा कृती का अर्थ विद्वान् होता है। वह इस प्रकार अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवल दर्शन, इन दो गुणों से उत्पन्न हुआ जो लोकालोक जानने का सामर्थ्य उसको ही अनन्त शक्ति कहते हैं। इस विद्वान् से ही अनन्त सौख्य की समृद्धि होती है। ऐसी अनन्त सौख्य समृद्धि जिनको प्राप्त हुई है वे कृती हैं अर्थात् आप अनन्त चतुष्टय से विराजमान हैं। आप अत्यन्त कुशल हैं अत: कृती हैं।

कृतार्थ: = कृता विहिता धर्मार्थकाम-मोक्ष-लक्षणा: पदार्था: येनासौ कृतार्थः - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ऐसे चार पदार्थ जिन्होंने बनाये हैं वे जिनदेव कृतार्थ हैं। अर्थात् उपर्युक्त चार पदार्थों का विवेचन जिनेन्द्र ने किया है। अथवा आपने अपने आत्मा के सर्व पुरुषार्थ सिद्ध कर लिये हैं इसलिए कृतार्थ हैं।

सत्कृत्य: = क्रियते कृत्यं 'कृ वृषि मृजां वा क्यप्' समीचीनं कृत्यं कर्त्तव्यं प्रजापोषणलक्षणं यस्य स सत्कृत्य: - समीचीन प्रजापोषण कार्य जिन्होंने किया वे जिनेन्द्र सत्कृत्य हैं। असि-मषि-कृषि आदि अल्प सावद्य क्रिया जीवन के उपाय हैं, ऐसा प्रजा को उपदेश देकर उन्होंने प्रजापोषण कार्य किया है अत: जिनराज सत्कृत्य हैं। अथवा संसार के सारे जीवों के द्वारा सत्कार करने योग्य हैं अत: सत्कृत्य हैं।

कृतकृत्य: = कृतं कृत्यं आत्मकार्यं येन स कृतकृत्यः, अथवा कृतपुण्यं, कृतं कार्यं कर्त्तव्यं करणीयं यस्य स कृतकृत्यः-किये हैं अपने योग्य कार्य जिन्होंने ऐसे जिनदेव कृतकृत्य हैं। अथवा पुण्यकार्य ही करने योग्य हैं, ऐसा जानकर जिनेश्वर ने वे ही कार्य किये हैं, अन्य पापकार्य नहीं किये अत: वे कृतकृत्य

हैं। वा समस्त कार्य कर चुके हैं, कोई भी कार्य शेष नहीं रहा है अत: कृतकृत्य हैं।

कृतक्रतु: = कृतो विहित: क्रतु: यज्ञ: शक्रादिभिर्यस्य स कृतक्रतु:, अथवा कृतं परिपूर्णं फलं वा कृतौ पूजायां यस्य स कृतक्रतु:, भगवतो भव्यै: कृता पूजा निष्फला न भवति किन्तु स्वर्गमोक्षदायिका भवति तेन कृतक्रतु:, अथवा कृत: पर्याप्त: समाप्तिं नीत: क्रतुर्यज्ञो येन स कृतक्रतु: । उक्तं च योगेन्द्रपादै:-

मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
दोहि वि समरस हूआहं पुज्ज चडाऊ कस्स ॥८२॥

कृत-की है इन्द्रादिकों ने क्रतु: पूजा जिनकी ऐसे जिनदेव कृतक्रतु हैं। अथवा जिनेश्वर की पूजा करने से भव्यों को पूर्ण फल प्राप्ति होती है। वह पूजा निष्फल नहीं होती है। वह स्वर्ग-मोक्ष दायिनी होती है। इसलिए जिनेश्वर कृतक्रतु हैं। अथवा जिन्होंने भक्तों की पूजा पूर्णावस्था को पहुँचायी है ऐसे जिनदेव कृतक्रतु हैं। अर्थात् जिनपूजा करने से भक्त भी जब जिनेश्वर हो जाता है तब भक्त भी जिन के समान पूज्य हो गया। इस विषय में योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं- ''मेरा मन परमेश्वर में मिलकर उसमें घुल गया है। परमेश्वर भी मेरे मन में मिलकर एकरूप हुआ है। दोनों ही समरस हुए हैं। अत: मैं पूजा किसकी करूँ ?''

नित्य: = नियतं भवो नित्य: - नियत अपने शुद्ध स्वरूप में सतत रहने वाले जिनेश नित्य हैं।

मृत्युंजय: = मृत्युं अंतकं यमं कृतांतं धर्मराजं जयतीति मारयित्वा पातयतीति मृत्युंजय:, नाम्नि तृ भृवृ जि धारित पिद मिसहां संज्ञायां खश् प्रत्यय: एजे: खश् इत्यतो वर्तते ह्रस्वा रुषोमोंत = मृत्यु, अंतक, कृतान्त, यम, धर्मराज इत्यादि नामधारक मृत्यु को मारकर, गिराकर, जीतकर, अपने शुद्ध स्वरूप को धारण करने वाले जिनदेव मृत्युंजय हैं। मृत्यु, अंतक, यम, कृतान्त, धर्मराज ये सर्व एकार्थवाची हैं।

अमृत्यु: = मृङ् प्राणत्यागे म्रियते अनेनेतिमृत्यु:। 'भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ' न मृत्यु: अन्तकालो यस्य स अमृत्यु: - प्राणों के त्याग करने को मरण या मृत्यु

कहते हैं, 'मृङ्' धातु प्राणत्याग अर्थ में है, नहीं है मृत्यु जिसकी वह अमृत्यु कहलाता है।

अमृतात्मा = अमृतो मरणरहित आत्मा स्वरूपं यस्य स अमृतात्मा मरण रहित स्वरूप को धारण करने वाले जिनेश्वर अमृतात्मा हैं।

अमृतोद्भव: = अविद्यमानं मृतं मरणं यत्र तदमृतं मोक्ष: तस्य उद्भव: उत्पत्तिर्भव्यानां यस्मादसावमृतोद्भव:, अथवा मृतं मरणं उद्भवो जन्म मृतं च उद्भवश्च मृतोद्भवौ न विद्येते मृतोद्भवौ मरणजन्मनी यस्य सोऽमृतोद्भव: = जिसमें मरण नहीं है ऐसी अवस्था को अमृत कहते हैं। अर्थात् मोक्ष को अमृत कहते हैं। उस मोक्ष की उत्पत्ति भव्यों को जिससे होती है उस जिनदेव को अमृतोद्भव कहते हैं। अथवा मृत-मरण तथा उद्भव-जन्म ये दोनों अवस्थायें जिसको नहीं हैं, ऐसे जिनेश्वर को अमृतोद्भव कहते हैं।

ब्रह्मनिष्ठ: परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भव:।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्मपदेश्वर: ॥९॥

सुप्रसन्न: प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभु:।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तम: ॥१०॥

अर्थ : ब्रह्मनिष्ठ, परंब्रह्म, ब्रह्मात्मा, ब्रह्मसम्भव, महाब्रह्मपति, ब्रह्मेट्, महाब्रह्मपदेश्वर, सुप्रसन्न, प्रसन्नात्मा, ज्ञानधर्मदमप्रभु, प्रशमात्मा, प्रशान्तात्मा, पुराणपुरुषोत्तम ये तेरह नाम जिनेश्वर के हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

टीका - ब्रह्मनिष्ठ: = ब्रह्मणि केवलज्ञानेऽतिशयेन। ब्रह्मनिष्ठ: तथा चोक्तं-

आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्ते ताते च भरतराजस्य।
ब्रह्मेति गी: प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥

ब्रह्म में, केवलज्ञान में अतिशय निश्चल रहने वाले जिनेश्वर ब्रह्मनिष्ठ हैं। केवलज्ञान को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे आत्मा, मोक्ष, ज्ञान, चारित्र, भरतचक्रवर्ती के पिता वृषभनाथ, इतने अर्थों में ब्रह्मशब्द प्रसिद्ध है। इनसे अन्य कोई ब्रह्म नहीं है। आप सदा शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन रहते हैं अत: ब्रह्मनिष्ठ हैं।

परंब्रह्म = परमुत्कृष्टं ब्रह्म पंचमज्ञानस्वरूप: परंब्रह्म - पर उत्कृष्ट ब्रह्म केवलज्ञान जिनका स्वरूप है ऐसे जिनेश्वर परंब्रह्म हैं।

ब्रह्मात्मा = बृहंति वृद्धिं गच्छन्ति केवलज्ञानादयो गुणा यस्मिन् स ब्रह्मा आत्मा यस्य स ब्रह्मात्मा = बृहन्ति, बढ़ते हैं, केवलज्ञानादिक गुण जिसमें ऐसा आत्मा जिसके है ऐसे जिनेश्वर को ब्रह्मात्मा कहते हैं। ब्रह्म-ज्ञान वा ब्रह्मचर्य ही आपका स्वरूप है अत: आप ब्रह्मात्मा हैं।

ब्रह्मसंभव: = ब्रह्मण: आत्मन: चारित्रस्य ज्ञानस्य मोक्षस्य च संभव उत्पत्तिर्यस्मात्स ब्रह्मसंभव:, अथवा ब्रह्मण: क्षत्रियात् संभव: उत्पत्तिर्यस्य स ब्रह्म-संभव:, अथवा ब्रह्मा धर्माधर्मसृष्टिकारक: स चासौ स समीचीनो भव: पाप-सृष्टिप्रलयकारक: ब्रह्मसंभव: - ब्रह्म की अर्थात् आत्मा की एवं ज्ञान, चारित्र तथा मोक्ष की उत्पत्ति जिनसे होती है ऐसे जिनेश्वर को ब्रह्मसम्भव कहते हैं। अथवा ब्रह्म से-क्षत्रिय से जिनकी उत्पत्ति हुई है, ऐसे जिनेश्वर को ब्रह्मसम्भव कहते हैं। अथवा ब्रह्मा-धर्मसृष्टि को उत्पन्न करने वाले जिनेश्वर को ब्रह्मा कहते हैं। वह ब्रह्मसम्भव उत्तम जन्म धारण करने वाला है। अर्थात् पापसृष्टि का नाश करने वाला है। अथवा आपको स्वयं शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति हुई है तथा आपके निमित्त से दूसरों को होती है अत: ब्रह्मसंभव हैं।

महाब्रह्मपति: = ब्रह्मणां मतिज्ञानादीनां चतुर्णामुपरि वर्तमान पंचमकेवलज्ञानं महाब्रह्मोच्यते तस्य पति: स्वामी महाब्रह्मपति:, अथवा महाब्रह्मा सिद्धपरमेष्ठी स पति: स्वामी यस्य स महाब्रह्मपति:, दीक्षावसरे 'नम:सिद्धेभ्य:' इत्युच्चारणत्वात् अथवा महाब्रह्मणां निरागधराणां लोकान्तिकानामहमिन्द्राणां च पति: स्वामी स महाब्रह्मपति: - मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इन चार ज्ञानों को ब्रह्म कहते हैं, पाँचवाँ ज्ञान केवलज्ञान है, उसको महाब्रह्म कहते हैं, उसके स्वामी जिनेश्वर होने से वे महाब्रह्मपति हैं। अथवा सिद्धपरमेष्ठी महाब्रह्म हैं, वे जिनेश्वर के स्वामी हैं अत: अर्हन् महाब्रह्म सिद्ध परमेष्ठी जिनके स्वामी हैं ऐसे अर्हन् महाब्रह्मपति कहे जाते हैं। दीक्षा के समय सिद्ध परमेष्ठी को जिनेश्वर नमस्कार करते हैं। अथवा गणधर, लौकान्तिक देव तथा अहमिन्द्र इनको महाब्रह्म कहते हैं, क्योंकि ये आजीवन ब्रह्मचारी होते हैं। इनके जिनेश्वर स्वामी होने से वे महाब्रह्मपति हैं। वा गणधर आदि महाब्रह्माओं के अधिपति हैं अत: आप महाब्रह्मपति हैं।

ब्रह्मेट् = ब्रह्मणो ज्ञानस्य वृत्तस्य मोक्षस्य इट् स्वामी स ब्रह्मेट् = ज्ञान, चारित्र और मोक्ष को ब्रह्म कहते हैं। इनके इट्-स्वामी-जिनेश्वर हैं, इसलिए वे ब्रह्मेट् हैं। आप केवलज्ञान के स्वामी हैं अत: ब्रह्मेट् हैं।

महाब्रह्मपदेश्वर: = ब्रह्मण: केवलज्ञानस्य पदं स्थानं ब्रह्मपदं महच्च तद्ब्रह्मपदं च महाब्रह्मपदं मोक्षस्तस्य ईश्वर: स्वामी स महाब्रह्मपदेश्वर:, अथवा महाब्रह्माणो गणधरदेवादय: पदयोश्चरणकमलयो: लग्ना: ते महाब्रह्मपदा: तेषामीश्वर: महाब्रह्मपदेश्वर: अथवा महाब्रह्मपदं समवसरणं तस्येश्वर: महाब्रह्म पदेश्वर: - ब्रह्म जो केवलज्ञान उसका पदस्थान मोक्ष है वह मोक्ष महाब्रह्म पद है। उसके ईश्वर स्वामी ऐसे जिनेश्वर महाब्रह्मपदेश्वर हैं। अथवा गणधर देवादिक महाब्रह्म हैं। वे गणधर देवादिक जिनेश्वर के चरणों का आश्रय लेते हैं। ऐसे गणधर देवों के जिनेश्वर ईश्वर हैं, अत: महाब्रह्मपदेश्वर हैं। अथवा समवसरण को महाब्रह्मपद कहते हैं। जिनेन्द्र उसके ईश्वर हैं। अत: वे महाब्रह्मपदेश्वर हैं।

सुप्रसन्न: = सुष्ठु अतिशयेन प्रसन्न: प्रहसितवदन: स्वर्गमोक्षप्रदायको वा सुप्रसन्न: - जिनेश्वर सुष्ठु अतिशय प्रसन्न - प्रहसित-वदन-हास्ययुक्त मुख वाले होते हैं। अथवा स्वर्ग तथा मोक्ष को देने वाले होने से सुप्रसन्न हैं। आप सदा प्रसन्न रहते हैं अत: सुप्रसन्न हैं।

प्रसन्नात्मा = प्रसन्नो निर्म्मल: आत्मा स्वभावो यस्य - स प्रसन्नात्मा निर्मलात्मेत्यर्थ: – जिनेश्वर प्रसन्ननिर्मल आत्मस्वभाव जिनका ऐसे होते हैं,अत: वे प्रसन्नात्मा हैं।

ज्ञानधर्मदमप्रभु: = ज्ञानं केवलज्ञानं, धर्मो दयालक्षण: दम: तप: क्लेश-सहिष्णुत्वं ज्ञानधर्मदमास्तेषां प्रभु:,स्वामी स ज्ञानधर्म्मदमप्रभु: = ज्ञान-केवलज्ञान, धर्म-दयालक्षणं और दम तप:क्लेश को सहन करना, इनके अर्थात् ज्ञान, दया-लक्षण-धर्म और दम-तप: क्लेश को सहन करना इन बातों के जिनेश्वर प्रभु हैं, स्वामी हैं।[१] आप केवलज्ञान, उत्तमक्षमा आदि धर्म और इन्द्रियनिग्रहरूप दम के स्वामी हैं।

---

१. महापुराण

प्रशमात्मा = प्रशमः कामक्रोधाद्यभावः आत्मा स्वभावो यस्य स प्रशमात्मा = प्रशम-कामक्रोधादिकों के अभाव को प्रशम कहते हैं। यह प्रशम जिनका आत्मस्वभाव है ऐसे जिनेश्वर को प्रशमात्मा कहते हैं। आप उत्कृष्ट शांति सहित हैं अतः प्रशमात्मा हैं।

पुराणपुरुषोत्तमः = पुराणः चिरंतनः पुरुषेषु त्रिषष्टिलक्षणेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः पुराणश्चासौ पुरुषोत्तमश्च पुराणपुरुषोत्तमः, अथवा पुराणेषु त्रिषष्टि-लक्षणेषु प्रसिद्धः, पुरुषोत्तमः पुराणपुरुषोत्तमः, अथवा पुराणे अनादिकालीने, पुरुणि महति स्थाने शेते तिष्ठतीति पुरुषोत्तमः स चासौ चेतिपुराणपुरुषोत्तमः, अथवा पुरे शरीरे परमौदारिककाये अनति जीवति मुक्तिं यावद्गच्छति तावत् पुराणः स चासौ पुरुषोत्तमः आत्मा पुराण पुरुषोत्तमः, तस्मिं प्राणः सन् शरीरे तिष्ठतीत्यर्थः जीवन् मुक्तः इत्यर्थः।

उक्तं च -

यं प्रशंसन्ति राजानो, यं प्रशंसन्ति सज्जनाः।
साधवो यं प्रशंसन्ति, तमाहु पुरुषोत्तमः॥

पुराण चिरन्तन-अतिशय प्राचीन तथा त्रिषष्टि शलाका पुरुषों में प्रसिद्ध तीर्थंकर होते हैं, उनको पुराण पुरुषोत्तम कहते हैं। अथवा तिरेसठ लक्षण पुराणों में प्रसिद्ध जो पुरुषोत्तम हैं उन्हें पुराण पुरुषोतम कहते हैं। अथवा अनादि काल में जो उत्पन्न हुए हैं तथा पुरु-महास्थान में मोक्ष में जो निवास करते हैं उन्हें पुराण पुरुषोत्तम कहते हैं। अथवा पुरे-शरीर में अर्थात् परमौदारिक शरीर में जो अनिति जीवन धारण करता है अर्थात् जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती तब तक रहता है, उस आत्मा को पुराणपुरुषोत्तम कहते हैं। उसको ही जीवन्मुक्त कहते हैं। इस विषय में ऐसा कहा जाता है- जिसकी राजा लोग प्रशंसा करते हैं, जिसकी सज्जन लोग प्रशंसा करते हैं तथा साधु जिसकी प्रशंसा करते हैं उसको पुरुषोत्तम कहते हैं।

श्रीमद् अमरकीर्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका में तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 चतुर्थोऽध्यायः 卐

(महाशोकध्वजादिशतम्)

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥

पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥

गणाधिपो गणज्येष्ठो गुण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गणनायकः ॥३॥

अर्थ : महाशोकध्वज, अशोक, क, स्रष्टा, पद्मविष्टर, पद्मेश, पद्मसम्भूति, पद्मनाभि, अनुत्तर, पद्मयोनि, जगद्योनि, इत्य, स्तुत्य, स्तुतीश्वर, स्तवनार्ह, हृषीकेश, जितजेय, कृतक्रिय, गणाधिप, गणज्येष्ठ, गुण्य, पुण्य, गणाग्रणी, गुणाकर, गुणाम्भोधि, गुणज्ञ, गणनायक ये जिनेन्द्र के नाम हैं।

टीका - महाशोकध्वजः = महांश्चासावशोकः महाशोकः महाशोको ध्वजं चिह्नं लाञ्छनं यस्य स महाशोकध्वजः - महान् अशोकवृक्ष जिसका ध्वज है, चिह्न है, लाञ्छन है ऐसे जिनेन्द्र को महाशोकध्वज कहते हैं।

अशोकः = न शोकः शोचनं पुत्रकलत्रमित्रादीनां यस्य स अशोकः= जिनको पुत्र, कलत्र, स्त्री, मित्र आदिकों का कभी शोक नहीं हुआ ऐसे जिनेश्वर का अशोक नाम अन्वर्थक है।

कः = कै, गै रै शब्दे कायति पुण्यं गायतीति कः, कायतेर्डतिडिमौडानुबंधेत्यस्वरादेर्लोपार्थः = कै गै रै इन धातुओं का शब्द करना, वर्णन करना ऐसा अर्थ होता है, भगवान के पुण्य का वर्णन कविजन करते हैं, अतः वे कनाम धारक हैं। वा सबको सुख देने वाले होने से भी 'क' कहलाते हैं।

स्रष्टा = सृजति करोति निंद्यमानः पापिष्ठैर्नरक तिर्यग्गतौ उत्पादयति, मध्यस्थैर्न स्तूयते न निन्द्यते तेषां मानवगतिं करोति। यैः स्तूयते पूज्यते आराध्यते तान् स्वर्गं नयति, यैः ध्यायते तान् मुक्तान् करोति। सृजति करोति प्रणयति घटयति

निर्माति निर्मिमिते च। अनुतिष्ठति विदधाति च रचयति कल्पयति चेति, करणार्थे वुणतृचौ तृच्, प्रत्यय: सृजि दृशौ रागमोकार:, स्वरात्परो धुटि गुणवृद्धिस्थाने छशोश्चषत्वं तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्ग:, आसौ सिलोपश्च स्रष्टा इति जातं = जो पापिष्ठ लोक जिनेश्वर की निन्दा करते हैं उनको जिनभगवान नरकगति में तथा तिर्यग्गति में उत्पन्न करते हैं। मध्यस्थ लोग न निंदा करते हैं न स्तुति करते हैं उनको मनुष्य गति में उत्पन्न करते हैं और जो स्तुति, पूजा, आराधना करते हैं उनको स्वर्ग ले जाते हैं, जो ध्यान करते हैं उनको कर्ममुक्त कर देते हैं।

'सृज्' धातु के करने, नमस्कार, स्तुति, आराधना, निर्माण, रचना, अनुष्ठान आदि अनेक अर्थ होते हैं।

पद्मविष्टर: = पदगतौ पद्यते याति लक्ष्मीं पद्मं 'अर्ति हु सु धृक्षिणी-पदभाषास्तुभ्यो म:'। सृञ्, आच्छादने सृ वि पूर्व्व: विस्तरणं विष्टर: स्वर: वृ-अल् नाम्यं गुण: वे स्तृणाते संज्ञाया: सस्य षत्वं तवर्गस्य ट:, पद्मं योजनैकप्रमाणं सहस्रदलकनक - कमलं तदेवविष्टर: आसनं यस्य स पद्मविष्टर: कमलासन: इत्यर्थ: = 'पद्' धातु गति अर्थ में है, 'मा' लक्ष्मी होती है जो लक्ष्मी को प्राप्त है अर्थात् जो लक्ष्मी स्थान है वह पद्म कहलाता है। 'सृञ्' धातु आच्छादन और विस्तरण अर्थ में आती है 'वि' उपसर्ग पूर्वक स्तरणं विस्तरणं। नामि परे स् का ष् आदेश हो जाता है और 'ष' के समीप तवर्ग का टवर्ग हो जाता है। अत: विष्टर (सिंहासन) अर्थ होता है। पद्मा लक्ष्मी है आसन जिसका अर्थात् समवसरण लक्ष्मी के स्वामी वा पद्म (कमल) है आसन जिसका वह पद्मविष्टर कहलाते हैं। एक हजार पाँखुड़ी वाले कनक निर्मित कमल पर आसीन होने से पद्मविष्टर कहलाते हैं।

पद्मेश: = पद्मस्य पद्मनिधे: ईश: स्वामी पद्मेश: - भगवान पद्मनामक निधि के स्वामी हैं, अत: वे पद्मेश हैं।

पद्मसंभूति: = पद्मानां कमलानां सम्भूतिर्यस्मात् स पद्मसंभूति: = पद्मों की, कमलों की, उत्पत्ति जिनसे होती है ऐसे जिनराज पद्मसंभूति हैं। प्रभु जब देशना के लिए विहार करते हैं उस समय उनके आगे पीछे सात-सात और बीच में एक कमल ऐसे कमलों की रचना होती है; जिसमें कुल २२५ कमल होते हैं।

पद्मनाभि: = पद्मं नाभौ यस्य स पद्मनाभि: = जिसके नाभि में कमल है या प्रभु की नाभि कमलाकार होती है।

अनुत्तर: = न विद्यते उत्तर: श्रेष्ठो यस्मात् स अनुत्तर: = जिनेन्द्र से अधिक श्रेष्ठ जगत् में कोई भी व्यक्ति नहीं है। अत: वे अनुत्तर हैं।

पद्मयोनि: = पद्माया: लक्ष्म्या: योनिरुत्पत्तिर्यस्मात्स पद्मयोनि: = पद्मा की, लक्ष्मी की उत्पत्ति जिनसे होती है वे जिनराज पद्मयोनि हैं।

जगद्योनि: = जगतां योनि: उत्पत्ति: जगद्योनि: जगदुत्पत्तिकारणमित्यर्थ: = जगत् की उत्पत्ति जिनेश्वर से हुई अत: जिनेश जगद्योनि हैं। जगत् को असि, मषि, कृषि आदि जीवन निर्वाह के उपाय बताकर जगत् का रक्षण किया अत: वे जगद्योनि हैं, जगदुत्पत्ति के कारण हैं।

इत्य: = इण्गतौ ईयते गम्यते ज्ञानेनेति इत्य:। 'वृ ञ् दृ जुषीण् शासु स्तुगुहां क्यप' इण् धातु का अर्थ गमन करना ऐसा है। भगवज्जिनेश्वर के पास हम ज्ञान से जा सकते हैं, उनका स्वरूप हम ज्ञान से जान सकते हैं, अत: वे इत्य हैं। अथवा जो स्वयं केवलज्ञान को प्राप्त हैं।

स्तुत्य: = स्तोतुं योग्य: स्तुत्य: 'वृञ्, दृजुषीण् शासुस्तुगुहां क्यप्' = जिनवर स्तुति के योग्य हैं, स्तुत्य हैं।

स्तुतीश्वर: = स्तुतेरीश्वर: स्तुतीश्वर: अथवा स्तुतौ स्तुतिकरणे ईश्वरा: समर्था: इन्द्रादयो यस्य स स्तुतीश्वर: = जिनेश्वर स्तुति के स्वामी हैं। अथवा जिनेश्वर की स्तुति करने में इन्द्रादिक समर्थ हैं, इतर नहीं हैं।

स्तवनार्ह: = स्तवनस्य स्तुतेरर्ह: योग्य: स्तवनार्ह: - जिनवर ही स्तुत्य हैं, स्तुतियोग्य हैं।

हृषीकेश: = हृषीकाणां इन्द्रियाणां ईशो वशिता हृषीकेश: विजितेन्द्रिय: इत्यर्थ: = हृषीक - इन्द्रियों को ईश-वश करने वाले जिनेन्द्र जितेन्द्रिय हैं। अत: हृषीकेश हैं।

जितजेय: = जेतुं योग्या जेया: कामक्रोधादय: जिता जेया: येनासौ जितजेय: = भगवज्जिनेश्वर ने जीतने योग्य काम-क्रोधादिकों को जीत लिया है अत: वे जितजेय हैं।

कृतक्रिय: = कृता समाप्तिं नीता क्रिया येनासौ कृतक्रियः कृतकृत्य इत्यर्थ: = कृता - समाप्त की है क्रिया जिन्होंने ऐसे जिनेश्वर कृतक्रिय हैं अर्थात् कर्मनाश करने की क्रिया भगवन्त ने पूर्ण की है।

गणाधिप: = गणस्य द्वादशभेदसंघस्य अधिपो नाथ: गणाधिप: = बारह प्रकार की सभा में स्थित गणों के अधिपति होने से गणाधिप हैं।

गणज्येष्ठ: = गणेषु ज्येष्ठ: गणज्येष्ठ: = बारह भेद वाले संघ में जिनेश सबसे ज्येष्ठ हैं अत: गणज्येष्ठ हैं।

गुण्य: = गुणाय हितो गुण्य: अथवा गुणेषु पूर्वोक्तेषु चतुरशीतिलक्ष संख्येषु नियुक्त: साधुर्वा गुण्य: 'यदुगवादित:' = जिनेश्वर गुणों के लिए हितकर हैं, गुणवर्द्धक हैं अथवा चौरासी लक्ष उत्तर गुणों में जिनेश्वर ने पूर्णता प्राप्त की है अत: वे गुण्य गुणों में साधु हैं। वा 'गण्य' भी पाठ है, तीन लोक में आप ही गणना करने योग्य हैं अत: गण्य हैं।

पुण्य: = पुण् शोभे पुणति शोभते इति पुण्य:, पर्यजन्यपुण्ये - जो शोभता है, शोभन है गुणों से तथा देह से भी सुन्दर है, वह पुण्य है। वा पवित्र होने से भी पुण्य है, वा शरण में जाने वाले को पवित्र करने वाले होने से भी पुण्य है।

गणाग्रणी: = गणानां द्वादशसभानामग्रणी: प्रधान: स गणाग्रणी: - समवसरण की बारह सभाओं में प्रभु ही अग्रणी प्रधान होते हैं अत: गणाग्रणी हैं। वा बारह सभा में स्थित जीवों को कल्याण के मार्ग में आगे ले जाने वाले हैं अत: गणाग्रणी हैं।

गुणाकर: = गुणानां केवलज्ञानादीनां चतुरशीतिलक्षानां आकर: उत्पत्ति-स्थानं गुणाकर : अथवा गुणानां षट्-चत्वारिंशत् संख्यानामाकरो गुणाकर:

उक्तं च -

अरहंता छियाला सिद्धा अट्ठेव सूरि छत्तीसा।
उज्झाया पणवीसा साहूणं होंति अडवीसा॥

जिनेश्वर केवलज्ञानादि गुणों के आकर उत्पत्ति स्थान हैं। अथवा चौरासी

लाख गुणों के वे उत्पत्ति स्थान हैं। अथवा छियालीस गुणों के आकर हैं। अरिहंतों के ४६ गुण, सिद्धों के आठ, आचार्यों के ३६, उपाध्यायों के २५ और साधुओं के २८ गुण होते हैं। उन गुणों का आकर (खान) होने से आप गुणाकर हैं।

गुणांभोधिः = गुणानां चतुरशीतिलक्षगुणानामम्भोधिर्महार्णवः गुणांभोधिः = प्रभु चौरासी लाख गुणों के समुद्र हैं इसलिए गुणांभोधि हैं।

गुणज्ञः = गुणान् जानातीति गुणज्ञः = प्रभु गुणों को जानते हैं। अतः गुणज्ञ हैं।

गणनायकः = गणानां द्वादशगणानां नायकः स्वामी गणनायकः = १२ गणों के नायक प्रभु गणनायक हैं।[1] पाठान्तर गुणनायकः = गुणों के स्वामी हैं इसलिए गणधर आपको गुणनायक भी कहते हैं।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः॥४॥

अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत् पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः॥५॥

अर्थ : गुणादरी, गुणोच्छेदी, निर्गुण, पुण्यगी, गुण, शरण्य, पुण्यवाक्, पूत, वरेण्य, पुण्यनायक, अगण्य, पुण्यधी, गण्य, पुण्यकृत्, पुण्यशासन, धर्म्माराम, गुणग्राम, पुण्यपापनिरोधक, ये १८ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - गुणादरी = गुणे सत्वादौ आदरोऽस्यास्तीति गुणादरी, उक्तं चानेकार्थे - गुणो ज्या सूदतंतुषु।

रज्जौ सत्वादौ संध्यादौ शौर्यादौ भीमइन्द्रिये।
रूपादावप्रधाने च दोषेन्यस्मिन् विशेषणे॥

सत्वादि ज्ञानादि गुणों में जिनेश्वर का आदर रहता है इसलिए वे गुणादरी हैं।

गुण, ज्या (डोरी), सूद, तंतु, रजु (रस्सी) सत्त्व आदि (सत्त्व, रज, तम)

---

१. महापुराण - पृ. ६१३, २५वाँ पर्व

संध्या, शौर्य, भीम, इन्द्रिय, रूप, प्रधान, दोष आदि में गुण शब्द का प्रयोग होता है।

गुणोच्छेदी = गुणानामिन्द्रियाणामुच्छेदोऽस्यास्तीति गुणच्छेदी इत्यर्थः, अथवा गुणान् क्रोधादीन् उच्छेदयतीत्येवंशीलो गुणोच्छेदी। गुण शब्द का वाच्य इन्द्रिय भी है। इन्द्रियों का उच्छेद प्रभु ने किया है और अपने शुद्ध स्वरूप को वे प्राप्त हुए हैं। अतः गुणोच्छेदी हैं। क्रोधादिको भी गुण कहते हैं अर्थात् क्रोधादि को जिनदेव ने उच्छेद किया है इसलिए वे गुणोच्छेदी हैं। वा सत्त्व, रज, तम, काम-क्रोधादि वैभाविक गुणों के नष्ट करने वाले होने से आप गुणोच्छेदी हैं।

निर्गुणः = निश्चिताः केवलज्ञानादयो गुणा यस्य स निर्गुणः अथवा निर्गता गुणा रागद्वेष मोह क्रोधादयोऽशुद्धगुणा यस्मादिति निर्गुणः, अथवा निर्गता समुदिता गुणास्तंतवो वस्त्राणि यस्मादिति निर्गुणो दिगम्बर इत्यर्थः, अथवा निर्नीचैः स्थितान् पादपद्मसेवातत्परान् भव्यजीवान् गुणयतीति आत्मसमानगुणयुक्तान् करोतीति निर्गुणः = निश्चित है केवलज्ञानादिक गुण जिनके ऐसे जिनदेव निर्गुण हैं। अथवा राग, द्वेष, मोह, क्रोधादिक अशुद्ध गुण जिनसे निकल गये हैं ऐसे जिनेश्वर निर्गुण हैं। अथवा निकल गये हैं समुदित गुण तन्तुओं से बने हुए वस्त्रादिक जिनके ऐसे जिनेश्वर निर्गुण हैं। अर्थात् वस्त्र रहित दिगम्बर हैं। अथवा 'निर्नीचैः स्थितान्' निम्न अपने से नीची अवस्था वाले तथा अपने पादपद्मों की सेवा करने में तत्पर ऐसे भव्य जीवों को जिनप्रभु 'गुणयति' अपने समान गुणयुक्त करते हैं इसलिए करण हैं और वे निर्गुण हैं। वा काम क्रोधादि वैभाविक गुणों से रहित होने से भी आप निर्गुण हैं।

पुण्यगीः = पुण्या पवित्रा गीर्वाणी यस्य स पुण्यगीः = पुण्य पवित्र वाणी जिनकी है ऐसे जिनेश्वर पुण्यगी हैं।

गुणः = गुण्यते इति गुणः अथवा गुण एव गुणः प्रधान इत्यर्थः 'गुण्यते' इति गुणः' जिनमें गुण बढ़ गये हैं ऐसे जिनेश्वर गुण शब्द से वाच्य होते हैं। अथवा जो गुण हैं प्रधान हैं, गणधरादिकों से श्रेष्ठ हैं उन्हें गुण कहते हैं। वा गुणों की राशि होने से गुण हैं।

शरण्यः = शृणाति भयमनेनेतिशरणं, 'करणाधिकरणयोश्च युट्' शरणाय

हित: शरण्य: 'यद्गवादित:', अर्तिमथनसमर्थ: = 'शृ' धातु शरण वा भयनिवारण में आती है, नष्ट होता है भय जिससे वह शरण कहलाते हैं और शरणागत के रक्षक होने से शरण्य कहलाते हैं अर्थात् शरणागत के दु:खों का मथन करने में समर्थ हो।

पुण्यवाक् = पुण्यं वक्तीति पुण्यवाक्, सद्वेद्य शुभायुर्नामगोत्राणिपुण्य-मिति वचनात् = जिनदेव अपने वचनों से पुण्य का स्वरूप कहते हैं, साता वेदनीय, शुभ आयु, नाम, गोत्र, ये सब पुण्य से प्राप्त होते हैं और प्रभु के ये सारे होते हैं। पुण्य का कथन करने वाले वचनों के धारक होने से भी आप पुण्यवाक् हैं।

पूत: = पूयते स्म पूत: पवित्र इत्यर्थ: - 'पूयतेस्म' जिनेन्द्र घातिकर्म के नाश से पवित्र हुए हैं, अत: उनका पूत नाम योग्य है।

वरेण्य: = वृञ् वरणे वृणोति मुक्तिं स वरेण्य: 'वृञ् एण्य' श्रेष्ठ इत्यर्थ: = जिनदेव ने मुक्ति को वर लिया है अत: वे वरेण्य हैं, श्रेष्ठ हैं।

पुण्यनायक: = पुण्यस्य नायक: - जिनदेव पुण्य के नायक हैं।

अगण्य: = गणसंख्याने, गणयतीति गण: गणाय हितो गण्य: न गण्य: अगण्य: गणयितुमशक्य इत्यर्थ: - गण् धातु संख्या अर्थ में है, गिना जाता है, वह गण कहलाता है वा गण के लिए हितकारी हो उसे गण्य कहते हैं, जिसकी गणना करना शक्य नहीं है उसको अगण्य कहते हैं। अर्थात् आप अपरिमित गुणों के धारी हैं अत: अगण्य हैं।

पुण्यधी: = पुण्येनोपलक्षिता धी: बुद्धिर्यस्य स पुण्यधी: 'पुण्येन' पुण्य से युक्त है बुद्धि जिनकी ऐसे जिनेश्वर पुण्यधी हैं।

गण्य: - गणाय हितो गण्य: बारह प्रकार के गण के लिए जिनेश्वर हितकारक हैं अत: वे गण्य कहलाते हैं।[१] गुणों से सहित हैं इसलिए गुण्य कहलाते हैं।

पुण्यकृत् = पुण्यं कृतवान् पुण्यकृत् 'कृञ: सुपुण्यपापकर्म मंत्रपदेषु क्विप्'

१. महापुराण ६१४ पृ., २५ वाँ पर्व।

= तीर्थंकर नामकर्म रूप विशाल पुण्यकर्म का बन्ध किया था अतः वे पुण्यकृत् हैं। 'कृत्' नाश करना भी है अतः पुण्य कर्म का भी नाश करने वाले होने से पुण्यकृत् कहलाते हैं।

पुण्यशासनः = पुण्यं निःपापं शासनं मतं यस्य स पुण्यशासनः - पुण्य-पवित्र शासन जिसका होता है वह पुण्यशासन कहलाता है। प्रभु आपका शासन-मत पवित्र है, निर्दोष है। प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों के द्वारा अबाधित है अतः आप पुण्यशासन कहलाते हैं।

धर्म्मारामः = धृञ् धारणे, नरके पततः प्राणिनो धरतीति धर्म्मः धर्मस्य पुण्यस्य आरामः देवोद्यानं धर्म्मारामः = नरक में गिरने वाले प्राणियों को धारण करने वाला जो धर्म अर्थात् पुण्य के लिए प्रभु आराम देवोद्यान समान हैं। वा आत्म स्वभाव रूप धर्म का आप उपवन हैं, आराम हैं अतः धर्म्माराम हैं।

गुणग्रामः = गुणानां मूलोत्तरगुणानां ग्रामः समूहो यस्य स गुणग्रामः = मूलगुण २८, उत्तरगुण ८४ लाख, इनका समूह धारण करने वाले प्रभु गुणग्राम नाम धारक कहे जाते हैं अर्थात् सम्पूर्ण गुण आपमें पाये जाते हैं अतः आप गुणग्राम हैं।

पुण्यापुण्यनिरोधक : = पुण्यं च शुभकर्म, 'सद्वेद्य-शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्' ।। अतोन्यत्पापमिति वचनात्। पुण्यापुण्ययोः निरोधकः पुण्यपापनिरोधकः। संवरावसरे भगवतो न पुण्यमास्रवति न च पापमास्रवति द्वयोरपि निषेधकः इत्यर्थः - शुभायु, शुभनामकर्म तथा उच्चगोत्र इसको पुण्य कहते हैं। तथा इनसे अतिरिक्त कर्मसमूह पापरूप हैं। भगवन्त को संवर के समय न पुण्यास्रव होता है और न पापास्रव होते हैं। इसलिए भगवज्जिनेन्द्र दोनों के ही निषेधक हैं अर्थात् शुद्धोपयोग में लीन होकर आपनें पुण्य और पापरूप सारी प्रकृतियों का निरोध कर दिया है अतः आप पुण्यापुण्य-निरोधक कहलाते हैं।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वंद्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ।।६।।

अर्थ : पापापेत, विपापात्मा, विपाप्मा, वीतकल्मष, निर्द्वंद्व, निर्मद, शान्त, निर्मोह, निरुपद्रव ये नौ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - पापात् = अपेतो रहित: स पापापेत: निष्पाप इत्यर्थ: = जिनेश्वर पाप से अपेत, रहित हैं इसलिए वे पापापेत कहे जाते हैं अर्थात् जिनेश्वर निष्पाप हैं।

विपापात्मा = विपाप: पापरहित: आत्मा यस्य स विपापात्मा = विपाप-पाप-रहित आत्मा जिनका है ऐसे जिनदेव विपापात्मा हैं।

विपाप्मा = विगतं विनष्टं पाप्मा पापं यस्येति विपाप्मा निष्पाप: इत्यर्थ: - विगत - विनष्ट हो गया है, पाप्मा पाप जिनका अर्थात् पापरहित जो हो गये हैं ऐसे जिनेश्वर विपाप्मा हैं। पापों का क्षय करने वाले होने से आप विपाप्मा हैं।

वीतकल्मष: = वीतं क्षपितं कल्मषं पापकर्म येन स वीतकल्मष: - वीतं-क्षय कर दिया है कल्मष का, पाप का जिन्होंने वे जिनप्रभु वीतकल्मष हैं। पातक रहित हैं। कर्म कलंक रहित होने से वीतकल्मष हैं।

निर्द्वन्द्व: = निर्गतं द्वंद्वं कलहो यस्य स निर्द्वंद्व: = कलह को द्वन्द्व कहते हैं। उससे रहित जिनराज निर्द्वन्द्व हैं। मानसिक विकल्प जाल के परिग्रह से रहित होने से भी आप निर्द्वन्द्व हैं।

निर्मद: = निर्गतो मदोऽहंकारोऽष्टप्रकारो-यस्मादिति निर्मद:- निकल गया है आठ प्रकार का मद-अहंकार गर्व जिनसे ऐसे जिनेश निर्मद हैं। ज्ञानगर्व, पूजा-आदर-सत्कार का गर्व, कुलगर्व - अपने पिता के वंश का गर्व, जातिगर्व - अपनी माता के वंश का गर्व, बलगर्व, ऋद्धिगर्व - सम्पत्ति का गर्व, तप का गर्व तथा शरीर सौन्दर्य का गर्व ऐसे आठ प्रकार के गर्व जिननाथ में नहीं रहते हैं अत: वे निर्मद हैं।

शान्त: = 'शमुदमु उपशमे' शाम्यति स्म उपशमं गच्छति स्म शान्त:- शम्, दम् धातु शान्त अर्थ में आती है और प्रभु ने रागादिक दोष को शान्त कर दिया, उपशम कर लिया, इसलिए उनका नाम शान्त यह सार्थक है।

निर्मोह: = निर्गतो मोहो अज्ञानं यस्मादिति निर्मोह: - नष्ट हो गये हैं मोह, अज्ञान जिनके ऐसे प्रभु निर्मोह हैं।

निरुपद्रव: = निर्गतो निर्नष्टो मूलादुन्मूलित: समूलकाषं कषित: उपद्रव: उत्पात उपसर्गो यस्य स निरुपद्रव: (निर्भयो) तपोविघ्नरहित इत्यर्थ: - मूल से उन्मूलित, नष्ट कर दिये हैं उत्पात, उपद्रव, उपसर्ग जिन्होंने ऐसे जिनवर **निरुपद्रव** कहे जाते हैं **अर्थात्** निर्भय और तपोविघ्न रहित हैं।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लव:।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतागो निरास्रव: ॥७॥

अर्थ : निर्निमेष, निराहार, निष्क्रिय, निरुपप्लव, निष्कलङ्क, निरस्तैना, निर्धूताग, निरास्रव ये आठ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - निर्निमेष: = निर्गतो निमेष: चक्षुषोर्मेषोन्मेषो यस्य स निर्निमेष: दिव्यचक्षु इत्यर्थ:, लोचनस्पंदरहित: इति यावत् - निर्निमेष, जिनदेव की दो आँखों का हलन-चलन नहीं होता है। उनकी पलकें नीचे ऊपर नहीं होती हैं, क्योंकि उनके मोहादि चार घातिकर्मों का नाश होने से इच्छा, प्रयत्न उनमें नहीं होता है। अत: आँखों का खुलना-बन्द होना आदि क्रियायें नहीं होती हैं। अत: वे निर्निमेष नाम के धारक हैं।

निराहार: = निर्गत: निर्नष्ट: आहारो यस्य यस्माद्वा स निराहार: - आहार-अन्नपान लेना-भोजन करना। अन्न, पान, खाद्य तथा लेह्य ये चार प्रकार के आहार उनके नहीं होते हैं। कवलाहार से रहित होने से निराहार हैं।

निष्क्रिय: = निर्गता क्रिया प्रतिक्रमणादिका यस्य स निष्क्रिय: । भगवान् खलु प्रमादरहितस्तेन प्रतिक्रमणादि क्रिया रहितत्वान्निष्क्रिय: = आलोचना प्रतिक्रमणादिक क्रियायें वे नहीं करते हैं, क्योंकि वे प्रमादरहित होते हैं, नित्य सावधान होते हैं। अत: वे निष्क्रिय हैं। सांसारिक क्रियाओं से रहित होने से भी आप निष्क्रिय हैं।

निरुपप्लव: = निर्गतो उपप्लवो विघ्नो यस्य स निरुपप्लव: = नष्ट हुआ है विघ्न जिनका ऐसे प्रभु निर्विघ्न होते हैं। अन्तराय घातिकर्म का नाश होने से वे जिनराज अनन्त प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करने वाला अभयदानादि देते हैं, अपने धर्मोपदेश से भव्यों को संसार-समुद्र से तारते हैं। अत: उनका निरुपप्लव नाम यथार्थ है। अथवा आप बाधा रहित होने से निरुपप्लव हैं।

निष्कलंक: = निर्गत: कलंकोऽपवादो यस्य स निष्कलंक: = जिनसे कलङ्क, अपवाद नष्ट हो गया है ऐसे वे प्रभु निष्कलङ्क हैं।

निरस्तैना = निरस्तं स्फेटितं एन: पापं येन स निरस्तैना - नष्ट किया है पाप अपने आत्मा से जिन्होंने ऐसे जिनराज निरस्तैना नाम से प्रसिद्ध हैं।

निर्धूतागः = निरस्तं आगोऽपराधो येन स निर्धूताग: - उक्तमनेकार्थे- आग: स्यादेनोवदधे गतौ = आग = अपराध जिन्होंने अपने आत्मा से दूर किया है ऐसे जिनप्रभु निर्धूताग - निरपराध हुए हैं। अनेकार्थ कोश में अगस् का अर्थ पाप, अपराध किया है।

निरास्रव: = निर्गत: आस्रव: अभिनवकर्मादानहेतुर्यस्य स निरास्रव: = प्रति समय नये-नये ज्ञानावरणादि कर्मों का ग्रहण करना आस्रव है, वह मोह कर्म के नाश से बन्द हुआ है। अत: जिनपति निरास्रव नाम के धारक हैं। कर्मों के आस्रव से रहित होने से आप निरास्रव हैं।

विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभव:।
सुसंवृत: सुगुप्तात्मा सुबुध् सुनयतत्त्ववित् ॥८॥

अर्थ : विशाल, विपुलज्योति, अतुल, अचिन्त्यवैभव, सुसंवृत, सुगुप्तात्मा, सुबुध्, सुनय, तत्त्ववित् ये आठ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - विशाल: = विशिष्टां शां शांततां लातीति विशाल: = विशिष्ट शांति को भगवान स्वयं ग्रहण करते हैं तथा भक्तों को देते हैं वे विशाल नाम से युक्त हैं। अत्यन्त विशाल होने से भी विशाल हैं।

विपुलज्योति: = विपुलं विस्तीर्णं लोकालोकव्यापकं ज्योति: केवलज्ञानं यस्य स विपुलज्योति: - विस्तीर्ण = विस्तरित लोकालोक व्यापक केवलज्ञानप्रकाश जिनको प्राप्त हुआ है वे जिन विपुलज्योति हैं।

अतुल: = तुल् उन्माने 'तुल चुरादेश्च इन्'। 'नामि: गुण:' तोलनं तुलातोलेरुच्च अट् प्र. ओकारस्य उकार: कारितस्या: कारितलोप:, स्वमते तुला या सम्मितेऽपि च इति ज्ञापकादेव तुला इति निपात:। न तुला तोलनं यस्य सोऽतुल: तोलयितुमशक्य इत्यर्थ: - 'तुल्' धातु तौलने मापने अर्थ में है- आपको कोई

माप नहीं सकता-तौल नहीं सकता। आपके ज्ञान में सारे जगत् प्रतिबिम्बित होने से, आप सर्व जगद् व्यापी हैं अत: आपको मापना अशक्य है, किसी की तुलना आपसे नहीं कर सकते अतः आप अतुल हैं।

अचिन्त्यवैभव: = अचिन्त्यं मनस: अगम्यं वैभवं विभुत्वं यस्येति स अचिन्त्यवैभव: - मन के द्वारा अगम्य है वैभव जिसका ऐसे प्रभु का 'अचिन्त्यवैभव' नाम है।

सुसंवृत: = सुष्ठु अतिशयेन संवृणोत्ति स्म सुसंवृत: अतिशयवद्विशिष्टि संवर युक्त इत्यर्थ: - प्रभु अतिशय वाले संवर से युक्त हैं। अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय इनसे कर्मागमन होता था परन्तु इनका प्रभु ने नाश किया है। अत: उनकी आत्मा में कर्मों का आना ही बंद हो गया जिससे उनको परमसंवर की प्राप्ति हुई है। अर्थात् आप नवीन कर्मों के आस्रव को रोककर पूर्ण संवरमय हो गये अत: सुसंवृत हैं।

सुगुप्तात्मा = सुष्ठु अतिशयेन गुप्त: आस्रवविशेषाणामगम्य: आत्मा टंकोत्कीर्ण: ज्ञायकैकस्वभाव आत्मा जीवो यस्य स सुगुप्तात्मा, तिसृभिर्गुप्तिभि: संवृतत्त्वात् - जिनदेव का आत्मा अतिशय गुप्तियुक्त है। उनकी मनोगुप्ति, कायगुप्ति तथा वचनगुप्ति वृद्धिंगत हुई है जिससे आस्रव विशेषों का वहाँ प्रवेश असम्भव है। तथा तीन गुप्तियों से संवृत होने से जिनदेव का आत्मा टांकी से उत्कीर्ण पाषाण के समान पूर्ण ज्ञायक स्वभाववान् हुआ है। अत: सुगुप्तात्मा इस नाम को वे सार्थक कर रहे हैं। अथवा आपकी आत्मा अतिशय सुरक्षित है, तीन गुप्तियों से युक्त है अत: सुगुप्तात्मा हैं।

सुबुध्[१] = सुष्ठु बोधयतीति सुबुध् ज्ञातेत्यर्थ: भली प्रकार से प्रशस्त बोध कराते हैं इसलिए आप सुबुध् हैं।

सुनयतत्त्ववित् : = सुष्ठु नयानां नैगम संग्रह व्यवहारर्ज्जुसूत्रशब्द-समभिरूढैवं-भूतानां नयानां तत्त्वं रहस्यं मर्म वेत्तीति सुनयतत्त्ववित् - जिनदेव नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूतादि नयों का तत्त्व-

---

१. महापुराण में सुबुध् के स्थान पर 'सुभुत्' नाम भी है। आप सर्व पदार्थों को अच्छीतरह जानते हैं अत: सुभुत् हैं।

रहस्य-मर्म सुष्ठु अतिशय निर्दोषपूर्ण जानते हैं। अत: वे सुनयतत्त्ववेदी हैं। सातों नयों के यथार्थ रहस्य को जानते हैं अत: सुनयतत्त्ववेदी हैं।

एकविद्यो महाविद्यो मुनि: परिवृढ: पति:।
धीशो विद्यानिधि: साक्षी विनेता विहतान्तक:॥९॥

पिता पितामह: पाता पवित्र: पावनो गति:।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरद: परम: पुमान्॥१०॥

अर्थ : एकविद्य, महाविद्य, मुनि, परिवृढ, पति, धीश, विद्यानिधि, साक्षी, विनेता, विहतान्तक, पिता, पितामह, पाता, पवित्र, पावन, गति, त्राता, भिषग्वर, वर्य, वरद, परम, पुमान् ये नाम जिनदेव के हैं।

टीका - एकविद्य: = एका अद्वितीया केवलज्ञान-लक्षणोपलक्षिता मतिश्रुतावधिमन:पर्यय-रहिता विद्या यस्येति एकविद्य:।

उक्तं च पूज्यपादेन भगवता -

क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम्।
सकलसुखधाम सततं वंदेऽहं केवलज्ञानम्।

एक-अद्वितीय-केवलज्ञान रूप विद्या जिनको प्राप्त हुई है, वे प्रभु एकविद्य हैं। जब सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्म का क्षय होता है तब केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। उस समय मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय ये चार क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं होते हैं, क्योंकि, जिनदेव की आत्मा सर्वशुद्धि को प्राप्त हुई है। वहाँ प्रादेशिक अशुद्धि को स्थान ही नहीं है। जिनदेव के द्रव्येन्द्रिय सब हैं, परन्तु भावेन्द्रिय एक भी नहीं है अत: भावेन्द्रिय के सद्भाव में होने वाले मतिज्ञानादिक उनके नहीं होते हैं। भगवान पूज्यपाद केवलज्ञान की इस प्रकार स्तुति करते हैं। केवलज्ञान क्षायिक और एक है, तथा वह अनन्त अविनश्वर है। त्रैकालिक सर्वपदार्थों को युगपत् जानता है। वह अनन्तसुख का नित्य भण्डार है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ।

महाविद्य: = महती केवलज्ञानलक्षणा विद्या यस्येति स महाविद्य: = केवलज्ञान रूपी बड़ी विद्या जिनको प्राप्त हुई है ऐसे जिनदेव महाविद्य कहे जाते हैं।

मुनिः = मन्यते जानाति प्रत्यक्षप्रमाणेन चराचरं जगदिति मुनिः, 'मन्यते किरत उच्च' = प्रत्यक्ष प्रमाणस्वरूप केवलज्ञान से चराचर जगत् को प्रभु जानते हैं, अतः वे मुनि हैं। अथवा - आत्मविद्या को जानते हैं, मानते हैं अतः मुनि हैं।

परिवृढः = परिसमंतात् वृंहति स्म वर्हति स्म सपरिवृढः 'परिवृढदृढौ प्रभु बलवतोरिति क्ते' निपातनात् न लोप इडभावश्च निपातस्य फलम्।

परि - चारों ओर से जो बढ़ गये अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हुए ऐसे जिननाथ परिवृढ़ स्वामी हैं। अथवा सर्व जगत् के स्वामी होने से परिवृढ़ हैं।

पतिः = पाति रक्षति संसारदुःखादिति पतिः, पाति प्राणिवर्गं विषयकषायेभ्यः आत्मानमिति वा पतिः, पातेर्डतिः औणादिकः प्रत्ययोऽयं = जो संसार-दुखों से प्राणियों का रक्षण करते हैं ऐसे जिनराज पति शब्द से वाच्य हैं। अथवा जो प्राणिवर्ग को विषयकषायों से बचाते हैं स्वयं भी बचते हैं, ऐसे जिनदेव पति हैं। 'पाति' धातु रक्षा अर्थ में है औणादि प्रकरण में 'पा' के आकार का अकार हो जाता है।

धीशः = धियां बुद्धीनां ईशः स्वामी स धीशः = धी, बुद्धि, अनन्त केवलज्ञान रूप बुद्धियों के जो स्वामी हैं, धीश हैं।

विद्यानिधिः = विद्यायाः स्वसमय परसमय सम्बन्धिन्याः निधिर्निधानं विद्यानिधिः - जैनमत संबंधी विद्यायें तथा अन्यमत विद्यायें इनके प्रभु जिनदेव निधि हैं। अतः वे विद्यानिधि कहे गये हैं। विद्याओं के भण्डार होने से विद्यानिधि हैं।

साक्षी = साक्षात्त्रैलोक्यं प्रत्यक्षमस्यास्तीति साक्षी इन् अव्ययानामन्तस्वरादिलोपो लक्षितः - प्रभु को साक्षात् त्रैलोक्य प्रत्यक्ष होता है, जगत् के सारे पदार्थों को साक्षात् जानते हैं अतः साक्षी हैं।

विनेता = विनयति स्वधर्ममित्येवंशीलो विनेता = अपने आत्मधर्म को भव्यों को पढ़ाने वाले प्रभु विनेता हैं। वा मार्ग के प्रकाशक होने से विनेता हैं।

विहतान्तक: = विहतो विध्वस्तो अंतको यमो येन स विहतान्तक: = प्रभु ने यम का विध्वंस किया है, अत: वे विहतान्तक हुए। जन्म, जरा, मरण से मुक्त हुए हैं।

पिता = पाति रक्षति दुर्गतौ पतितुं न ददाति स पिता, स्वस्रादय: स्वसृनप्तृ नेष्टृत्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ पितृ मातृ दुहितृ- जामातृभ्रातर: एते तृन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते = जो रक्षा करता है, दुर्गतियों में पड़ने नहीं देता है वह पिता कहलाता है। स्वसृ नृप्तृ नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षर्त्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ, मातृ-दुहितृ, जामातृ मातृ इनके त्र का लोप होता है। जीवों की नरक आदि कुगतियों से रक्षा करते हैं अत: आप पिता कहलाते हैं।

पितामह: = पितामह: पितु: पिता पितामह: पित्रोर्डामहद् - वे पिता के भी पिता हैं। सर्व जगत् के गुरु हैं अत: पितामह कहलाते हैं।

पाता = पाति रक्षति दु:खादिति पाता रक्षक इत्यर्थ:- दुखों से भगवान जीवों का रक्षण करते हैं अत: वे पाता हैं।

पवित्र: = पुनातीति पवित्र:, 'ऋषिदेवतयो: कर्तृरि इश्रन्': - भक्तों को पवित्र करने वाले जिनदेव पवित्र हैं। अथवा स्वयं परम शुद्ध हैं अत: पवित्र हैं।

पावन: = पवयति जगत्पवित्रं करोतीति पावन: - जगत् को पवित्र करते हैं, अत: आप पावन हैं।

गति: = गमनं ज्ञानमात्रं गति: सर्वेषामर्त्तिमथनसमर्थो वा गति: - आविष्टलिंगं गति: शरणं - जिनदेव गति हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। अथवा दुखविनाश करने में समर्थ हैं। या सारे भव्य जीव तपस्या करके आपके अनुरूप होना चाहते हैं अत: आप सबकी गति हैं। अथवा इसकी संधि अगति भी है, आप-सिद्धावस्थासे पुन: संसार में आगमन नहीं है अत: अगति हैं।

त्राता = त्रायते रक्षतीति त्राता - भक्तों का रक्षण करते हैं अत: आप त्राता हैं।

भिषग्वर: = भिषजां वैद्यानां मध्ये वर: प्रधानं श्रेष्ठ: स भिषग्वर:।

श्रुतश्च विद्यते भगवांस्तु सर्वेषां जन्मप्रभृत्यपि व्याधितानां प्राणिनां नाममात्रेणापि व्याधि-विनाशं करोति, कुष्ठिनामपि शरीरं सुवर्णशलाका सदृशं विदधाति, जन्मजरामरणं च मूलादुन्मूलयति तेन भगवान् भिषग्वरः = जिनदेव सर्ववैद्यों में वर-प्रधान श्रेष्ठ वैद्य हैं क्योंकि जन्म से भी जो रोगों से पीड़ित हैं ऐसे प्राणियों के आपके नाम-स्मरण से रोग विनष्ट होते हैं। जो कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं उनके शरीर को प्रभु स्वर्णशलाका के समान चमकीला कर देते हैं, इतना ही नहीं भगवान मूल से ही उनके जन्म जरा मरण को उखाड़ कर फेंक देते हैं इसलिए आपही सर्वश्रेष्ठ वैद्य हैं।

वर्यः = व्रियते वर्यः स्वराद्यः सेवाया-तैंद्रादिभिर्वेष्ट्य इत्यर्थः । वर्यो वरणीयो मुक्ति लक्ष्म्याभिलाषणीय इत्यर्थः, मुख्यो वा वर्यः = सेवा के लिए आये हुए इन्द्रादिकों से प्रभु वन्द्य हैं या प्रभु को मैं वरूंगी ऐसी अभिलाषा मुक्ति रानी मन में रखती है इसलिए प्रभु वर्य हैं। या सब देवों में मुख्य हैं, श्रेष्ठ हैं इसलिए भी वर्य हैं।

वरदः = वरमभीष्टं स्वर्गमोक्षं ददातीति वरदः = वर अभीष्ट ऐसे स्वर्ग-मोक्ष को भगवान् भक्तों को देते हैं अतः वे वरद हैं। प्रभु के नाम से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है अतः वे वरद हैं।

परमः = पृ पालनपूरणयोः पृणाति पूरयति मनोभीष्टैर्वसुभिः सपरमः, 'पृप्रथिचरिकर्दिभ्यो मः' = पूर्ण करते हैं, पालन करते हैं मनोवांछित धनादिक लक्ष्मी से भक्तों को जो ऐसे वे प्रभु परम हैं। अथवा आपकी ज्ञानादि लक्ष्मी अतिशय श्रेष्ठ है अतः आप परम हैं।

पुमान् = पुनाति पुनीते वा पवित्रयति आत्मानं निजानुगं त्रिभुवनस्थित-भव्यजनसमूहं स पुमान्। पूञोह्स्वश्च सिर्मन्तश्च पुमन्स पातीति पुमानिति केचित् = प्रभु अपने को रत्नत्रय से पवित्र करते हैं तथा अपना अनुसरण करने वाले त्रैलोक्य में स्थित भव्यजनसमूह को भी पवित्र करते हैं अतः प्रभु पुमान् हैं। पातीति पुमान् इति केचित् जो रक्षण करता है उसे पुमान् कहना चाहिए ऐसी निरुक्ति अन्य जन कहते हैं। वा स्व पर को पवित्र करने वाले होने से पवित्र हैं।

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयानृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठाप्रभवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥११॥

अर्थ : कवि, पुराणपुरुष, वर्षीयान्, ऋषभ, पुरु, प्रतिष्ठाप्रभव, हेतु, भुवनैकपितामह ये आठ नाम जिनराज के हैं।

कविः = टु क्षु रु कु शब्दे कौति धर्म्माधर्मौ निरूपयतीति कविः। रु सर्वधातुभ्यः - धर्माधर्म का स्वरूप कहने वाले प्रभु कवि कहे जाते हैं।

टु, क्षु, रु, कु शब्द बोलने अर्थ में हैं। कोति - कथयति, धर्म-अधर्म निरूपण करता है, अतः कवि है। वा द्वादशांग का कथन करने वाले होने से भी कवि हैं।

पुराणपुरुषः = पुराणश्चिरन्तनः पुरुषः आत्मा यस्येति स पुराणपुरुषः = अत्यन्त प्राचीन चिरन्तन है पुरुष आत्मा जिनका ऐसे प्रभु को पुराणपुरुष कहते हैं। अथवा अनादिकालीन होने से भी पुराणपुरुष हैं।

वर्षीयान् = अतिशयेन वृद्धः वर्षीयान् 'प्रियस्थिरस्फिरोरुगुरुबहुल तृप्र दीर्घ ह्रस्व वृद्ध वृंदारकाणां प्रस्थ स्फुवरगरवंत्र-पद्राघहस्व स वर्षवृंदाः तद्वदिष्टेमेयस्सु बहुलं = अतिशय वृद्ध अत्यन्त प्राचीन क्योंकि भगवान आदिनाथ तीसरे काल के अन्त में ही मुक्त हो गये थे, उनके मुक्त होने के साढ़े तीन वर्षों के अनंतर चतुर्थ काल का प्रारम्भ हुआ। वह एक कोड़ाकोड़ि सागर वर्षों का है, वह भी बीत गया और पंचमकाल का प्रारम्भ होकर भी आज २५०० वर्ष हुए हैं। अतः आप वर्षीयान् हैं। अथवा आप ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा अतिशय वृद्ध हैं अतः वर्षीयान् हैं।

ऋषभः = ऋषि रषी गतौ ऋषति जगज्जानाति इति ऋषभः 'ऋषिवृषिभ्यां यण्वत्' = ऋष् धातु का अर्थ जानना होता है। अर्थात् भगवान् जगत् को जानते हैं। सबमें श्रेष्ठ हैं अतः ऋषभ हैं।

पुरुः = पृ पालनपूरणयोः पृणाति पालयतीति पुरुः महानित्यर्थः 'इषिवृषि भिदिगृधिभृदिपृभ्यः कुः' = जो जगत् का पालन करते हैं वे पुरु हैं। जगत् को हितकर धर्म का उपदेश देकर उसका पालन किया है, अतएव वे पुरुष हैं

महान् हैं। 'पृ' धातु पालन और पूरण अर्थ में है। पालन-पोषण करने वाले होने से वा तीर्थंकरों में आदि होने से भी पुरुष हैं।

प्रतिष्ठाप्रभवः = प्रतिष्ठायाः स्थैर्यस्य प्रभवः उत्पत्तिर्यस्मात् स प्रतिष्ठा-प्रभवः = भगवान ने जगत् में स्थैर्य की प्रभव उत्पत्ति की। असि-मष्यादि जीवन-निर्वाह के साधनों का उपदेश दिया, उससे प्रजा के जीवन को स्थिरता प्राप्त हुई और धर्म का उपदेश देकर स्वर्ग तथा मोक्ष में जीवों के स्थिरता की उत्पत्ति की। प्रतिष्ठा का अर्थ स्थैर्य है- आप प्रतिष्ठा, सम्मान वा स्थिति का कारण होने से प्रतिष्ठाप्रभव हैं।[१]

हेतुः = हि गतौ हिनोति जानातीति हेतुः 'कमिमनिजनिवसिहिभ्यश्च तुन्' = भगवान केवलज्ञान से चराचर जगत् को जानते हैं। अतः हेतु हैं। 'हि' धातु गमन, जानने आदि अनेक अर्थ में है, स्व में गमन करते, स्व-पर को जानते हैं अतः हेतु हैं। उत्तम कार्यों के उत्पादक होने से भी आप हेतु हैं।

भुवनैकपितामहः = भुवनानां अधः ऊर्ध्वः मध्यलोक-स्थितभव्यलोकानामेकोऽद्वितीय पितामहः पितुः पिता भुवनैक पितामहः = भगवान अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक में स्थित भव्य लोगों के लिए अद्वितीय पितामह थे इसलिए वे भुवनैकपितामह माने गये। अर्थात् तीन लोक में आप अद्वितीय गुरु वा रक्षक हैं अतः पितामह हैं।

इस प्रकार श्रीमद् अमरकीर्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका का चौथा अधिकार पूर्ण हुआ।

卐 पञ्चमोऽध्यायः 卐

(श्रीवृक्षादिशतम्)

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः॥१॥

---

१. प्रतिष्ठाप्रसवः भी पाठ है।

सिद्धिद: सिद्धसंकल्प: सिद्धात्मा सिद्धसाधन:।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिक: ॥२॥

अर्थ : श्रीवृक्षलक्षण, श्लक्ष्ण, लक्षण्य, शुभलक्षण, निरक्ष, पुण्डरीकाक्ष, पुष्कल, पुष्करेक्षण ये आठ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - श्रीवृक्षलक्षण: = श्रीवृक्षोऽशोकवृक्षो लक्षणं यस्य स श्रीवृक्षलक्षण:, गंधकुटी उपरि श्रीमंडपो योजनैक प्रमाणो अशोकवृक्षो मणिमयो दिव्यहंसादि पक्षिमंडित: महामंडपशिखरोपरि-स्थितस्कंध:, ततो भगवान् दूरादपि लक्ष्यते तेन श्रीवृक्षलक्षण: - अशोक वृक्ष को श्रीवृक्ष कहते हैं, वह जिनका लक्षण है, ऐसे जिनदेव श्रीवृक्षलक्षण नाम से कहे जाते हैं। गंधकुटी के ऊपर एक योजन प्रमाण का मंडप रचा जाता है, उसके ऊपर एक योजन प्रमाण का मणिमय दिव्य हंसादिपक्षियों से मण्डित महामंडप के शिखर पर इस अशोक वृक्ष का स्कंध है। उससे भगवान दूर से ही भव्यों को दिखते हैं अत: भगवान श्रीवृक्षलक्षण से युक्त हैं।

श्लक्ष्ण: = 'श्लिष् आलिंगने' श्लिष्यति अनंतलक्ष्म्या सहेति श्लक्ष्ण:, श्लेषे रितोच्च स्तक् - अनन्त ज्ञानादि लक्ष्मी से भगवान् नित्य आलिङ्गित हैं, अनन्त लक्ष्मी सहित हैं अत: श्लक्ष्ण हैं।

लक्षण्य: = लक्षणे अष्ट महाव्याकरणे साधु: कुशल: लक्षण्य: 'यदुगवादित:' - आठ महाव्याकरणों में निपुण कुशल होने से लक्षण्य हैं, उत्तम-उत्तम चिह्नों एक हजार आठ लक्षणों से युक्त होने से भी लक्षण्य हैं।

शुभलक्षण: = शुभानि लक्षणानि यस्य स शुभलक्षण:, कानि तानि शुभलक्षणानि इति चेत् उच्यन्ते पाणिपादेषु श्रीवृक्ष:, शंख:, अब्ज:, स्वस्तिक:, अंकुश:, तोरणं, चामरं, छत्रं श्वेतं, सिंहासनं, ध्वज:, मत्स्यौ, कुम्भौ, कच्छप:, चक्रं; समुद्र:, सरोवरं, विमानं, भवनं, नाग:, नारी, नर:, सिंह:, बाण:, धेनु:, मेरु:, इंद्र:, गंगा, नगरं, गोपुरं, चन्द्र:, सूर्य:, जात्यश्व:, वीणा, व्यजनं, वेणु:, मृदंग:, माले, हट्ट:, पट्ट, कूल:, भूषा, पक्वशालि क्षेत्रं, वनं सफलं, रत्नद्वीप:, वज्र:, भूमि:, महालक्ष्मी:, सरस्वती, सुरभि, वृषभ:, चूड़ारत्नं, महानिधि:, कल्पवल्ली, धनं, जम्बूवृक्ष:, गरुड़:, नक्षत्राणि, तारका: राज-सदनं, ग्रहा:,

सिद्धार्थतरु:, प्रातिहार्याणि, अष्टमंगलानि, ऊर्ध्वरेखादीनि अन्यानि च शुभलक्षणानि अष्टाशतं, प्रभु के दो हाथों और दो चरणों में श्रीवृक्षादि शुभलक्षण होने से जिनेश्वर का यह शुभलक्षण नाम यथार्थ है। वे ये हैं - शंख, कमल, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चामर, श्वेतच्छत्र, सिंहासन, ध्वज, दो मछली, दो कलश, कछुवा, चक्र, समुद्र, सरोवर, विमान, भवन, नाग, नारी, नर, सिंह, बाण, धनुष, मेरु, इन्द्र, गंगा, नगर, गोपुर, चन्द्र, सूर्य, जातिवंत घोड़ा, वीणा, व्यजन, वेणु, मृदंग, दो फूलमाला, बाजार, कपड़ा, भूषा, पक्वशालिक्षेत्र, सफलवन, रत्नद्वीप, वज्र, भूमि, महालक्ष्मी, सरस्वती, सुरभि-कामधेनु, वृषभ, चूड़ारत्न, महानिधि, कल्पवल्ली, धन, जम्बूवृक्ष, गरुड़, नक्षत्र, तारका, राजसदन, ग्रह, सिद्धार्थतरु और आठ प्रातिहार्य, आठ मंगल द्रव्य, ऊर्ध्वरेखा, आदि अन्य लक्षण भी १०८ प्रभु के होते हैं अत: वे प्रभु शुभलक्षण हैं। १०८ शुभ लक्षण के धारक होने से वे शुभलक्षण हैं।

निरक्ष: = निर्गतानि निर्नष्टानि अक्षाणि इंद्रियाणि यस्य यस्माद् वा स: निरक्ष:, अनेकार्थे चोक्तम् - अक्षं सौवर्चले तुच्छे हृषीके स्यात् - जिनकी पाँचों ही इन्द्रियाँ नष्ट हो गयी हैं ऐसे जिनेश्वर को निरक्ष कहते हैं। ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से संसारी जीवों के प्रदेशों में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण तथा शब्द जानने की जो शक्ति उत्पन्न होती है और उस शक्ति से जो स्पर्शादि पदार्थगुण जाने जाते हैं, उस शक्ति को तथा उसके साधन को भावेन्द्रिय कहते हैं परन्तु उस ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय कर्म का जब पूर्ण क्षय होता है तो कर्म निरवशेष नष्ट होते हैं तब केवलज्ञान प्रकट होता है। वह केवलज्ञान आत्मप्रदेशों में सर्वव्यापी है। उस केवलज्ञान से अनन्तानन्त पदार्थ और उनके अनन्त पर्याय युगपत् केवली जानते हैं। यह सामर्थ्य इन्द्रियों में नहीं होती है। अत: दृश्य द्रव्येन्द्रिय दीखने पर भी केवली के भावेन्द्रियों का अभाव होने से वे निरक्ष कहे जाते हैं। इसलिए जिनेश्वर को निरक्ष कहना और मानना उचित है। जब वेदनीय, नाम, गोत्र तथा आयु इन चार अघाति कर्मों का नाश होता है, तब शरीर के संयोग से आत्मा के प्रदेशों की आकृति बनी हुई थी वह कुछ कम हो जाती है। परन्तु उन प्रदेशों में केवलज्ञान हमेशा के लिए होता है अत: प्रभु निरक्ष कहे जाते हैं।

(किसी प्रति में 'निरीक्ष' भी पाठ है जिसका अर्थ है चक्षु रहित। भगवान बिना चक्षु सर्व पदार्थों को जानते हैं अत: निरीक्ष हैं।)

पुंडरीकाक्ष: = पुंडरीकवत् कमलवत् अक्षिणी लोचने यस्य स पुंडरीकाक्ष: - कमल का नाम पुण्डरीक है। अर्थात् भगवान की दो आँखें कमल कलिकाकार अति मनोहर दीखती हैं इसलिए उनका नाम पुण्डरीकाक्ष रखा गया है।

पुष्कल: = पुष्यति पुष्णाति वा पुष्कल: 'पुषेकलक्, पूर्ण: श्रेष्ठ इत्यर्थ: - भगवान केवलज्ञान से पुष्ट अर्थात् पूर्ण हुए अत: वे पुष्कल हैं। वा-पुष्कल श्रेष्ठ वा परिपूर्ण ज्ञान युक्त होने से पुष्कल कहे जाते हैं।

पुष्करेक्षण: = पुष्करवत् अम्बुजवत् ईक्षणे लोचने यस्य स पुष्करेक्षण: कमललोचन: इत्यर्थ:। **उक्तमनेकार्थे** -

.......द्वीपतीर्थाहि खगरागौषधान्तरे।
तूर्यास्येऽसिफले कांडे शुंडाग्रे खे जलेऽम्बुदे॥

कमल को पुष्कर भी कहते हैं। अर्थात् पुष्कर-कमल के समान आँखें जिनकी हैं, उनको पुष्करेक्षण कहते हैं।

अनेकार्थ कोश में द्वीप, तीर्थ, अहि (सर्प), पक्षी, राग, औषध, तूर्य (वादित्र) मुख, तलवार, फलक, समूह, शुंड, अग्र, आकाश, जल, बादल आदि अनेक अर्थ में पुष्करेक्षण शब्द का प्रयोग होता है। अत: आप तीर्थ हैं संसार-रोगनाशक औषध हैं। संसार-मल-नाशक जल हैं, आदि अनेक अर्थ भी हैं।

सिद्धिद: = सिद्धिं स्वात्मोपलब्धिं मुक्तिं कार्यनिष्पत्तिं ददाति इति सिद्धिद:। उक्तं चानेकार्थे - 'सिद्धिस्तु मोक्षे निष्पत्तियोगयो:' सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने से जो आत्मा को स्वस्वरूप की प्राप्ति होती है उसे सिद्धि कहते हैं ऐसी सिद्धि भगवान भव्यों को देते हैं। वा भगवान् की भक्ति से भव्यों के मनोवांच्छित कार्यों की निष्पत्ति होती है अत: सिद्धिद कहलाते हैं। सिद्धि-स्वात्मोपलब्धि कार्यनिष्पत्ति मोक्ष, योगों की पूर्णता आदि अनेक अर्थ हैं।

सिद्धसंकल्प: = सिद्धवत् निष्पन्नवत् संकल्प: चिंताभिप्रायो यस्य स

सिद्धिसंकल्पः सिद्धोऽहमित्यर्थः । उक्तं च-सिद्धो व्याप्यादिके (व्यासा) देवयोनौ निष्पन्नमुक्तयोः नित्ये प्रसिद्धे = सिद्ध की तरह प्रभु का मोक्षप्राप्ति का संकल्प, चिंता, चिन्तन, अभिप्राय पूर्ण हुआ उसे सिद्धसंकल्प कहते हैं और भी कहा है- विस्तार, देवयोनि, निष्पन्न, मुक्ति, नित्य, प्रसिद्ध आदि अनेक अर्थ हैं अतः प्रसिद्ध वा सिद्ध पूर्ण हो गये हैं सारे संकल्प जिनके वे सिद्धसंकल्प कहलाते हैं।

सिद्धात्मा = सिद्धो हस्तप्राप्तिरात्मा जीवो यस्य स सिद्धात्मा, अथवा सिद्धस्त्रिभुवनविख्यात पृथिव्यादिभूत जनित्वादि-मिथ्यादृष्टि तत्त्वरहितं आत्मा जीव स्वरूपं यस्य स सिद्धात्मा - सिद्ध हो गयी, या प्राप्त हो गयी है आत्मा या शुद्ध स्वरूप जिनको वे सिद्धात्मा हुए हैं। अथवा त्रिभुवन में प्रभु का आत्मा सिद्ध प्रख्यात हुआ है वे सिद्धात्मा हैं। पृथ्वी, वायु, अग्नि और पानी इन चार पदार्थों से आत्मा की उत्पत्ति होती है ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि मानते हैं पर उनका कहना गलत है क्योंकि ज्ञान, दर्शन गुण को चेतना कहते हैं और यह गुण पृथिव्यादिकों में नहीं है, आत्मा में ही है अतः सिद्ध ही चेतनागुण पूर्ण हैं। या सिद्ध याने मुक्ति को प्राप्त हुई है आत्मा जिनकी ऐसे जिन सिद्धात्मा हैं। वा आपकी आत्मा सिद्ध पद को प्राप्त हो गई है अतः आप सिद्धात्मा हैं।

सिद्धसाधनः = सिद्धं नित्यं साधनं सैन्यं यस्य स सिद्धसाधनः।

उक्तमनेकार्थे - **साधनं सिद्धसैनयोः।**

उपायेऽनुगमेमैंद्रे निवृत्तौ कारके वधे।
दापने मृतसंस्कारे प्रमाणे गमने धने।।

जिनके अनन्तज्ञानादि गुणरूपी सैन्य सिद्ध हुआ है अतः सिद्धसाधन हैं। अनेकार्थ कोश में उपाय, अनुगम, इन्द्र, निवृत्ति, कारक, वध, दापन, मृतसंस्कार, प्रमाण, गमन और धन आदि अनेक अर्थ में साधन शब्द का प्रयोग होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये मोक्ष के साधन हैं, उपाय हैं, अनुगम हैं, वा स्वात्मोपलब्धि मुक्ति ही आत्मा का साधन है, धन (ज्ञानधन), सिद्ध हो गये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्ष के साधन जिसके वह सिद्धसाधन कहलाता है।

बुद्धबोध्य: = बोद्धुं योग्यो बोध्य:, बुद्धो बुद्धितो ज्ञानो बोध्य: आत्मा येनासौ बुद्धबोध्य: = अपनी बुद्धि से प्रभु ने आत्म-ज्ञान किया है अत: वे बुद्धबोध्य हैं। समस्त ज्ञेय पदार्थ के आप ज्ञाता हैं अत: बुद्धबोध्य हैं।

महाबोधि: = महती बोधि: वैराग्यं रत्नत्रयप्राप्तिर्वा यस्येति महाबोधि:। उक्तं च -

रत्नत्रय परिप्राप्तिर्बोधि: सातीवदुर्लभा।
लज्जा कथं कथञ्चिच्चेत्कार्यो यत्नो महानिह ॥

प्रभु की बोधि-वैराग्य अथवा रत्नत्रयप्राप्ति बहुत बढ़ चुकी है, अत: प्रभु महाबोधि हैं- रत्नत्रय की परिप्राप्ति पूर्णतया होना अतिशय दुर्लभ है, किसी तरह उसे प्राप्त करके सतत स्थिर करने के लिए महान् यत्न करना चाहिए। आपकी बोधि (रत्नत्रयरूप विभूति) अत्यंत प्रशंसनीय होने से आप महाबोधि हैं।

वर्द्धमान: = अव समंतात् ऋद्ध: परमातिशयं परिप्राप्तो मानो ज्ञानं पूजा वा यस्य स वर्द्धमान:, 'अवाप्योरलोप:' अव-संपूर्णतया ऋद्ध-परमातिशय को प्राप्त हुआ है, मान, ज्ञान अथवा पूजा जिनकी ऐसे प्रभु वर्द्धमान हैं। आपके ज्ञानादि गुण अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुए हैं अत: आप वर्द्धमान हैं।

महर्द्धिक: = महती ऋद्धिर्यस्य स महर्द्धिक:। 'संज्ञायां क:' उक्तं च-

बुद्धि तवो वि य लद्धी विउवणलद्धी तहेव ओसहिया।
रसबलक्खीणा वि य लद्धीणं सामिणं वंदे ॥

बढ़ गयी है ऋद्धि जिनकी, ऐसे प्रभु महर्द्धिक हैं। बुद्धिऋद्धि, तपऋद्धि, विपुलर्द्धि, विक्रिया ऋद्धि, औषधर्द्धि, रसऋद्धि, बलऋद्धि और अक्षीणर्द्धि ऐसी आठ ऋद्धियों के धारक प्रभु को वन्दन करता हूँ। अर्थात् आप महान् ऋद्धियों के स्वामी होने से 'महर्धिक' हैं।

वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवर:।
वेदवेद्य: स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवर: ॥३॥

अर्थ : वेदाङ्ग, वेदवित्, वेद्य, जातरूप, विदांवर, वेदवेद्य, स्वसंवेद्य, विवेद, वदतांवर ये नौ नाम जिनेश्वर के हैं।

वेदाङ्गः = शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, छंदो, ज्योतिर्निरुक्तं चेति वेदस्यांगानि, वेदांगानि यस्य स वेदांगः, अथवा वेदस्य केवलस्य ज्ञानस्य प्राप्तौ भव्यप्राणिनां अंगं उपायो यस्मादसौ वेदांगः - वेद के छह अंग हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष तथा निरुक्त ऐसे भेद अन्य लोग मानते हैं। परन्तु जैन मत में वेदांग शब्द का अर्थ ऐसा है- वेद जीवादि पदार्थों को नय तथा प्रमाण के द्वारा जान लेना वेद है। या सम्यग्ज्ञान ही जिनेश्वर का आत्मा है, स्वरूप है, अतः वह वेदांग है। या केवलज्ञान की प्राप्ति होने के लिए भव्य प्राणियों के लिए जिनदेव अंग-उपाय हैं। अथवा केवलज्ञान की प्राप्ति होने का अंग उपाय जिनप्रभु से भव्यों को मिलता है अतः वे वेदांग हैं।

वेदविद् = वेदान् स्त्रीपुंनपुंसकवेदान् वेत्तीति वेदवित्, अथवा येन शरीराद्भिन्न आत्मा ज्ञायते स वेदो भेदज्ञानं, तं वेत्तीति वेदवित्। उक्तं च निरुक्ति-

विवेकं वेदयेदुच्चैर्यः शरीरशरीरिणोः।
संप्रीत्यैर्विदुषां वेदो नाखिलक्षयकारणं॥

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद, इन तीनों वेदों को जानने वाले भगवान वेदवित् हैं, मोहकर्म के भेदरूप जो स्त्रीवेदादि नोकषाय हैं, उनकी उदीरणा होने से उत्कट रूप में प्रकट होती है, इत्यादि इनके स्वरूप का सूक्ष्म ज्ञान जिनदेव को होता है अतः वे वेदवित् हैं। अथवा शरीर से आत्मा भिन्न है ऐसा ज्ञान जिससे होता है उस भेदज्ञान को वेद कहते हैं। उसको जानने वाले जिनराज को वेदवित् कहते हैं। इस विषय में और भी कहा है- जो शरीर को तथा शरीर को धारण करने वाले संसारी आत्मा के विवेक को, भेदज्ञान को जानता है, उसे वेद कहते हैं अर्थात् जैनागम को वेद कहते हैं ऐसा ही वेद विद्वज्जनों को आनंद प्रदान करता है परन्तु जो यज्ञ में प्राणियों की आहुति देने के लिए कहता है उसे वेद कहना योग्य नहीं है।

अथवा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप चारों वेदों को जानने वाले, कथन करने वाले होने से 'वेद' कहलाते हैं।

वेद्यः = विद् ज्ञाने नियुक्तो वेद्यः, अथवा वेदितुं योग्यो वेद्यः = जो योगियों के ज्ञान में आवश्यकता से नियुक्त हैं वे प्रभु वेद्य हैं। अर्थात् योगियों को भेदज्ञान की प्राप्ति होने के लिए जिनेश्वर के स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है, अथवा भगवान् हमारे द्वारा जानने योग्य हैं इसलिए वे वेद्य हैं।

जातरूपः = जातस्य जन्मनः रूपं यस्य स जातरूपः नग्नरूपः इत्यर्थः - भगवान का रूप जात-जन्म के समय का है अतः वे जातरूप हैं, नग्नरूप हैं, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित रूप को धारण करते हैं।

विदाम्वरः = विदां विद्वज्जनानां वरः श्रेष्ठो स विदांवरः क्वचिन्नुलप्यंते विभयोभिधानात् - विद्वज्जनों में प्रभु ही सर्वश्रेष्ठ हैं अतः विदाम्वर हैं।

वेदवेद्यः = वेदेन ज्ञानेन वेद्यः वेदितुं योग्यः वेदवेद्यः - ज्ञान से भगवान हमारे द्वारा जानने योग्य हैं। वेद का अर्थ-श्रुतज्ञान है और श्रुतज्ञान के द्वारा भगवान जानने योग्य हैं अतः वेदवेद्य हैं।

स्वसंवेद्यः = स्वेन आत्मना सम्यग् वेद्यो ज्ञेयः स स्वसंवेद्यः = अपनी आत्मा द्वारा भली प्रकार जानने योग्य ज्ञेय है वह स्वसंवेद्य है, अथवा भगवान का ज्ञान हम स्वसंवेदन से ही कर सकते हैं, अनुभव से ही जान सकते हैं।

विवेदः = विद् ज्ञाने विद् विदन्त्येनेनेति वेदः विशिष्टो वेदो ज्ञानं स विवेदः विशिष्टज्ञानीत्यर्थः = वि विशिष्ट वेद (ज्ञान) जिनको है ऐसे भगवान विवेद हैं, विशिष्ट ज्ञान याने केवलज्ञान। भगवान केवलज्ञान युक्त होने से विवेद हैं।

वदताम्वरः = वदतां तार्किकाणां मध्ये वरः श्रेष्ठः स वदताम्वरः = जिनदेव वदतां अर्थात् तार्किकजनों में वरः श्रेष्ठ हैं। अतः वदताम्वर हैं।

अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः।
युगादिकृधुगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥

अर्थ : अनादिनिधन, व्यक्त, व्यक्तवाक्, व्यक्तशासन, युगादिकृत्, युगाधार, युगादि, जगदादिज ये आठ नाम जिनप्रभु के हैं।

टीका - अनादिनिधनः = न विद्येते आदिनिधने उत्पत्तिमरणे यस्य स अनादिनिधनः, अथवा अन्यस्य जीवितस्य आदिर्जन्म तत्पर्यंतं न्यतिशयेन धनं

लक्ष्मीर्यस्य स अनादिनिधनः, आजन्मपर्यंत लक्ष्मीवान् इत्यर्थः। भगवान्-समवसरणस्थितोऽपि लक्ष्म्या नवनिधि लक्षणया न त्यक्तो यतः अनादिनिधनः=

जिनदेव की आदि, उत्पत्ति तथा निधन, मरण नहीं है। अतः वे अनादि-निधन हैं। अथवा 'अन' शब्द का अर्थ जीवित होता है उसका आदि-जन्म उसे प्राप्त कर जन्म से प्रारम्भ करके जिनको अतिशय धन की लक्ष्मी की प्राप्ति हुई ऐसे जिनराज को अनादिनिधन कहते हैं। भगवान आजन्म लक्ष्मीवान् थे। उन्हें समवसरण में रहते हुए भी उनको लक्ष्मी ने नहीं छोड़ा। तथा नवनिधियों से प्रभु सेवित थे। अतः वे अनादिनिधन हैं।

व्यक्तः = व्यजते स्म व्यक्तः प्रकट इत्यर्थः, अथवा व्यनक्त्यर्थं स व्यक्तः = भगवान का स्वरूप प्रकट है, अतः उनको व्यक्त कहते हैं। अथवा भगवान् अपनी दिव्य वाणी से जीवादि पदार्थों का स्पष्ट विवेचन करते हैं। अतः वे व्यक्त हैं।

व्यक्तवाक् = व्यक्ता सर्वेषां प्राणिनां गम्या वाक् भाषा यस्य स व्यक्तवाक् स्पष्टार्थवादीत्यर्थः = सारे प्राणियों को भगवान जिनेश्वर की वाणी का, भाषा का अभिप्राय ज्ञात होता है, अतः वे व्यक्तवाक् हैं, स्पष्टार्थवादी हैं।

व्यक्तशासनः = व्यक्तं निर्मलं विरोधरहितं शासनं मतं यस्य स व्यक्तशासनः = जिनका शासन मत निर्मल है, विरोध रहित है वह व्यक्तशासन यह नाम सार्थक है।

युगादिकृत् = युगादिकृतवान् युगादिकृत्। **उक्तमार्षे**-

आषाढमासबहुलप्रतिपद्दिवसे कृतीम्।
कृत्वा कृतयुगारंभं प्राजापत्यमुपेयिवान्॥

आदि जिनेश्वर ने युग का प्रारम्भ किया अतः वे युगादिकृत् हैं।

महापुराण में ऐसा उल्लेख आया है, भगवान वृषभदेव आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा के दिन युग का प्रारम्भ करके प्रजापति हो गये थे। भगवान ने प्रजा को असि, मसि, कृष्यादिक, पापरहित वृत्ति का उपदेश दिया। लोग पापरहित वृत्ति से सुख से रहने लगे। इस प्रकार लोगों को जीवनवृत्ति बताने वाले प्रभु ने कृतयुग का आरम्भ किया। अतः उनको युगादिकृत् कहते हैं।

युगाधारः = युगानां कृतयुगानामाधारः अधिकरणं स युगाधारः - भगवान कृतयुग के आधार अधिकरण होने से युगाधार हैं।

युगादिः = युगानां कृतयुगानामादिः प्रथमः स युगादिः - भगवान ने कृतयुग किया अतः वे उसके प्रथम आदि कारण हैं।

जगदादिजः = प्रथमपुरुष इत्यर्थः = जगत् के प्राणियों के आदिकाल में वे उत्पन्न हुए अतः वे प्रथम पुरुष जगदादिज हैं।

अतींद्रोऽतींद्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतींद्रियार्थदृक्।

अनिंद्रियोऽहमिन्द्राच्यों महेन्द्रमहितो महान्॥५॥

अर्थ : अतीन्द्र, अतीन्द्रिय, धीन्द्र, महेन्द्र, अतीन्द्रियार्थदृक्, अनिन्द्रिय, अहमिन्द्राच्र्य, महेन्द्रमहित, महान्, ये नौ नाम जिनदेव के हैं।

अतीन्द्रः = अति अतिशयेन इंद्रः स्वामी स अतीन्द्रः - अतिशय रूप आप हे प्रभु इन्द्रों के भी स्वामी हैं अतः अतीन्द्र हैं।

अतीन्द्रियः = अतिक्रांतानि इन्द्रियाणि येनेति अतीन्द्रियः, इन्द्रियज्ञान-रहित इत्यर्थः - जिनदेव ने इन्द्रियों का अतिक्रमण किया है। अर्थात् इन्द्रियज्ञान से वे रहित हैं, केवलज्ञानी हैं, अतः अतीन्द्रिय हैं।

धीन्द्रः = स्मृत्यै चिंतायां ध्यै, संध्या ध्या ध्यानं धीः सम्पदादित्वात् भावे क्यप् ध्याय्योः संप्रसारणं ध्या स्थाने धीः ध्यायोः अनेनैव संप्रसारणं अनेनैव दीर्घत्वं प्र सि रेफ सो। धिया ध्यानेन केवलज्ञानेन इन्द्रः परमात्मा स धीन्द्रः = ध्यै धातु के स्मृति, चिंता, संध्या, स्थान, बुद्धि आदि अनेक अर्थ होते हैं, ध्यै धातु के 'य्' का संप्रसारण 'इ' आदेश होकर धि बनता है, धी बुद्धि, उस धी के द्वारा इन्द्र हो, परमात्मा हो - वह केवलज्ञानी 'धीन्द्र' कहलाते हैं।

महेन्द्रः = महांश्चासाविन्द्रः महेन्द्रः = प्रभु सबसे बड़े इन्द्र हैं अतः वे महेन्द्र हैं।

अतींद्रियार्थदृक् = अतीन्द्रियार्थेन केवलज्ञानेन पश्यतीति अतींद्रियार्थदृक् = अतीन्द्रिय याने अमूर्तिक पदार्थ भी जिनके केवलज्ञान के द्वारा देखे गये या जाने गये हैं अतः वे अतीन्द्रियार्थदृक् हैं। या सूक्ष्म अन्तरित, दूरवर्ती पदार्थ भी जिनके द्वारा देखे जाते हैं।

अनिंद्रिय: = न इंद्रियाणि स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु: श्रोत्राणि यस्य स अनिंद्रिय: = प्रभु स्पर्शन आदिक इन्द्रियों से रहित हैं। इसलिए अनिंद्रिय हैं।

अहमिन्द्रार्च्य: = अहमिन्द्राणामर्च्य: पूज्य: स अहमिन्द्रार्च्य: = अहमिन्द्रों के द्वारा पूजित होने से अहमिन्द्रार्च्य हैं।

महेन्द्रमहित: = महेन्द्रैर्द्वात्रिंशदिन्द्रैर्महित: पूजित: स महेन्द्रमहित: = महेन्द्र आदि ३२ इन्द्रों से पूजे गये। भवनवासियों के दस, व्यंतरों के आठ, ज्योतिष्क देवों के चन्द्र, सूर्य ये दो और कल्पवासी देवों के बारह इन सबके द्वारा पूजे गये इसलिए महेन्द्रमहित कहलाये।

महान् = अर्हमहपूजायां महतीति महान् पूज्य इत्यर्थ: - जो पूजा में, अर्चना में सबसे बड़े हैं, महान् हैं।

उद्भव: कारणं कर्त्ता पारगो भवतारक:।
अगाह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्य: परमेश्वर: ॥६॥

अर्थ : उद्भव, कारण, कर्त्ता, पारग, भवतारक, अग्राह्य, गहन, गुह्य, परार्घ्य, परमेश्वर ये जिनराज के यथार्थ नाम हैं।

उद्भव: = उत्प्रधानो भवो जन्मास्य स उद्भव:, अथवा उद्गतो भव: संसारो यस्य यस्माद् वा स उद्भव: = उत्-प्रधान-श्रेष्ठ भव, जन्म जिनका है वे उद्भव हैं या जिनसे भव-संसार उद्गत हुआ है, निकला है ऐसे प्रभु उद्भव हैं। अर्थात् उत्कृष्ट जन्म के धारक तथा संसार के नाशक होने से उद्भव कहलाते हैं।

कारणं = कार्यतेऽनेन कारणं सृष्टे: कारणं बीजमित्यर्थ: = जिससे कार्य किया जाता है या कार्य हो जाता है उसे कारण कहते हैं और प्रभु आदिजिन धर्मसृष्टि के कारण हैं या मोक्ष के कारण होने से कारण हैं।

कर्त्ता = करोतीति सृष्टिं कर्त्ता - शुद्ध भावों को करते हैं या धर्मसृष्टि के कर्त्ता होने से कर्त्ता हैं।

पारग: = पारं संसारस्य प्रान्तं गच्छतीति पारग: - संसार के अन्त को

यहाँ पार कहते हैं और जो संसार रूपी समुद्र से पार हो गये वे पारग हो गये। अत: 'पारग' कहलाते हैं।

भवतारक: = भवस्य पंचधा संसारस्य तारक: पारं प्रापक: स भवतारक: = द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भाव और भव संसार ऐसे पाँच प्रकार के संसार से जीवों को तारने वाले अर्थात् संसार से पार करने वाले जिनेश्वर भवतारक हैं।

अगाह्य: = गाह् विलोडने गाह्यते विलोड्यते इति गाह्य: न गाह्य: अगाह्य: भगवत: पारं गन्तुं न शक्यते इत्यर्थ: - भगवान के गुणों का एवं स्वरूप का अवगाहन हम लोगों से अशक्य होने से वे अगाह्य हैं। 'गाह्' धातु विलोड़न अर्थ में आता है आप किसी के भी द्वारा अवगाहन करने योग्य नहीं हैं अर्थात् आपके गुणों को कोई जान नहीं सकता, अत: आप अगाह्य हैं।

गहनं = गाह्यते योगिभि: गहनं अलक्ष्य: अलक्ष्यस्वरूप: इत्यर्थ: = योगियों ने जिनके स्वरूप के रहस्य को जाना है अत: उन्हें गहन कहते हैं। आपका स्वरूप अतिशय गंभीर है, कठिन है अत: आप गहन हैं।

गुह्यं = गुह् संवरणे गुह्यते इति गुह्यं योगिनां रहस्यमित्यर्थ : - योगियों के लिए जिनका स्वरूप रहस्यपूर्ण है, ऐसे जिनेश्वर को गुह्य कहते हैं। 'गुह्' धातु संवरण अर्थ में आता है, आप इन्द्रियों के अगोचर हैं गुप्त हैं अत: आप 'गुह्य' हैं।

परार्घ्य: = परमं उत्कृष्टं ऋद्धं समृद्धं परार्द्धं परार्द्धेभव: परार्घ्य: प्रधान: इत्यर्थ: = परम, उत्कृष्ट, ऋद्ध, समृद्ध, अतिशय तथा ऐश्वर्यशाली पद को धारण करने वाले जिनेश्वर होते हैं इसलिए उनका परार्घ्य नाम अन्वर्थक है। वा आप सर्वोत्कृष्ट हैं अत: परार्घ्य हैं।

परमेश्वर: = परमश्चासावीश्वर: परमेश्वर: अथवा परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मी:, परमा मोक्षलक्षणोपलक्षिता लक्ष्मी: परमा, परमाया: परमलक्ष्म्या: ईश्वर: स्वामी परमेश्वर: = जिनदेव सबसे श्रेष्ठ होने से परमेश्वर हैं। अथवा परा उत्कृष्ट जो मा-मोक्षलक्ष्मी उसके जिनदेव ईश्वर हैं, इसलिए वे परमेश्वर हैं। वा अति अधिक सामर्थ्य युक्त होने से भी आप परमेश्वर हैं।

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥

अनंतर्द्धिः = अनंता ऋद्धिर्यस्य स अनंतर्द्धिः = जिनराज की ऋद्धि लक्ष्मी अनन्त होने से वे अनन्तर्द्धि हैं।

अमेयर्द्धिः = अमेया अमर्यादीभूता ऋद्धिर्यस्य स अमेयर्द्धिः = अमर्याद ऋद्धि के धारक होने से अमेयर्द्धि हैं।

अचिन्त्यर्द्धिः = अचिन्त्या चिन्तयितुमशक्या ऋद्धिर्यस्य स अचिन्त्यर्द्धिः - जिनकी ऋद्धि का चिन्तन करना अशक्य है, ऐसे प्रभु को अचिन्त्यर्द्धि कहना योग्य ही है।

समग्रधीः = समग्रा परिपूर्णा ज्ञेयप्रमाणा धीः बुद्धिः केवलज्ञानं यस्येति समग्रधीः = जिनेश्वर की धीः केवलज्ञान बुद्धि समग्र परिपूर्ण ज्ञेय-जीवादि पदार्थों को जानती है। अतः वे समग्रधी हैं उनकी बुद्धि से बाहर नहीं जाने गये पदार्थ हैं ही नहीं।

प्राग्र्यः = प्राग्रे भवः प्राग्र्यः 'अग्राद्यत्' = सबसे प्रथम श्रेष्ठपना पाने योग्य है भव जिनका ऐसे जिनराज प्राग्र्य हैं। वा सब के मुख्य होने से आप प्राग्र्य हैं।

प्राग्रहरः = प्रकृष्टमग्रं हरतीति प्राग्रहरः = उत्कृष्ट प्रधान पद धारण करने वाले।[1] अथवा प्रत्येक मांगलिक कार्य में सर्व-प्रथम आपका स्मरण किया जाता है, इसलिए प्रागहर कहे जाते हैं।

अभ्यग्रः = अभिमुखमग्रमस्य स अभ्यग्रः = लोक का अग्र भाग प्राप्त करने के सम्मुख हैं इसलिए अभ्यग्र हैं।

प्रत्यग्रः = प्रेत्यान्तं गृहीतमग्रं येन स प्रत्यग्रः = आप समस्त लोगों से विलक्षण हैं, नूतन हैं, अग्र ग्रहणीय हैं इसलिए प्रत्यग्र हैं।

अग्र्यः = अग्रे भवो अग्र्यः 'अग्राद्यत्' = प्रधान पद को धारण करने वाले होने से अग्र्य हैं।

---

१. महापुराण, पृ. ६१७

अग्रिमः = अग्रस्य भावोऽग्रिमः, 'पृथ्वादिभ्यः इमन्वा' = सबसे, सारी जनता से अग्रसर होने से आप अग्रिम हो।

अग्रजः = अग्रे जातः अग्रजः। तथा चोक्तम्-

प्रघात संघातयोर्भिक्षा, प्रकारे प्रथमेऽधिके।
पलस्य परमाणो वा लंबनो परिवाच्ययोः॥
पुरः श्रेष्ठो दशस्वेव विद्भिरग्रं च कथ्यते।
प्रागाद्यग्रज पर्यंत शब्दाः श्रेष्ठार्थवाचकाः ज्ञेयाः॥

सबसे प्रथम उत्पन्न हुए अथवा सबसे ज्येष्ठ होने के कारण अग्रज हैं।

प्रघात, संघात, भिक्षा, प्रकार, प्रथम, अधिक, पल और परमाणु का आलंबन, पुर और श्रेष्ठ इन दश शब्दों के अर्थ में अग्र शब्द का प्रयोग होता है। इस स्तोत्र में प्राग् शब्द को आदि लेकर अग्रज पर्यन्त शब्द श्रेष्ठार्थ के वाचक हैं।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः॥८॥

अर्थ : महातपा, महातेजा, महोदर्क, महोदय, महायशा, महाधामा, महासत्त्व, महाधृति ये आठ नाम जिनप्रभु के हैं।

टीका - महातपा = महत्तपो द्वादशविधं तपो यस्य स महातपाः = अनशन, अवमौदर्य आदि छह प्रकार के बाह्यतप तथा प्रायश्चित्त, विनय आदिक छह प्रकार के अंतरंग तप ऐसे बारह तप जिनदेव ने किये इसलिए वे महातपा हैं।

महातेजा = महत्तेजः पुण्यं यस्य स महातेजा,

उक्तं च -

पुण्यं तेजोमयं प्राहुः प्राहुः पापं तमोमयं।
तत्पापं पुंसि किं तिष्टेद्दयादीधितिमालिनि॥

महान् तेज - पुण्य जिसके है वे प्रभु महातेजा हैं, तेज और पुण्य

एकार्थवाचक हैं- **उक्तं च**, गुणीजन पुण्य को तेज स्वरूप और पाप को अंधकार स्वरूप मानते हैं। वह पाप दयारूपी कांति को धारण करने वाले पुरुष में कैसे रह सकता है!

महोदर्कः = महान् सर्वकर्मनिर्मोक्षलक्षणो, अनंत-केवलज्ञानादि लक्षणश्च उदर्कः उत्तरं फलं यस्य स महोदर्कः = सर्व कर्मों को नष्ट करके अनन्त केवलज्ञानादि लक्षणयुक्त फल जिनको प्राप्त हुआ है, ऐसे जिनेश्वर महोदर्क हैं।

महोदयः = महान् तीर्थंकरनामकर्मण उदयो विपाको यस्येति स महोदयः, अथवा महान् उत्कृष्टोऽयः शुभावहो, विधिर्यस्येति स महोदयः अथवा महान् कदाचिदप्यस्तं न यास्यति उदयकर्म्मक्षयोत्पन्ने केवलज्ञानस्योद्गमो यस्येति स महोदयः, अथवा महस्तेजो दया सर्व्वप्राणिकरुणा यस्येति स महोदयः। उक्तं च-

यस्य ज्ञानदयासिन्धोरगाधस्यानघा गुणाः।
सेव्यतामक्षयो धीरः स श्रिये चामृताय च॥
ज्ञानेन दयया मोक्षो मोक्षः भवतीति सूचितमत्र।

महान् तीर्थंकर नामकर्म का उदय जिनमें हुआ है ऐसे भगवान महोदय हैं। अथवा हान् उत्-उत्कृष्ट अयः जगत् का कल्याण करने वाला भाग्य जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे प्रभु महोदय हैं, अथवा महान् कभी अस्त को प्राप्त नहीं होगा ऐसा कर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ है केवलज्ञान का उदय जिनके ऐसे प्रभु महोदय हैं अथवा महस्तेज और दया, सर्व प्राणियों के प्रति दयाभाव जिनके हैं ऐसे प्रभु महोदय हैं। कहा भी है- जो जिनदेव अगाध-जिसके तलभाग का स्पर्श करने में हम अल्पज्ञ असमर्थ हैं तथा जिसके निर्दोष गुण हमारी बुद्धि को प्रेरणा देने वाले हैं, ऐसे ज्ञान तथा दया के समुद्र रूप तथा अक्षय जो जिनेश्वर हैं उनका हे भव्यजन! आप अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सेवन करो, आराधना करो। इस श्लोक से ज्ञान और दया के आचरण से मोक्ष प्राप्त होगा ऐसा सूचित किया गया है।

महायशा: = महद्यश: पुण्यं गुणकीर्तनं यस्येति स महायशा: = महापुण्य गुणों की कीर्त्ति जिनकी फैली है वे जिन महायशा हैं।

महाधामा: = महद्धाम तेजो यस्येति महाधामा:, जिनका धाम-तेज अत्यन्त विस्तृत है वे जिन महाधाम नाम से अलंकृत हैं।

महासत्त्व: = महत्सत्त्वं चित्तं बलं प्राणा यस्येति स महासत्त्व: । उक्तं चानेकार्थे =

सत्त्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयो: ।
पिशाचादावात्मभावे, बले प्राणेषु जंतुषु ।।

महान् सत्त्व चित्त (मन) बल (शक्ति) प्राण जिसके है वह महासत्त्व कहलाता है। अनेकार्थ कोश में-द्रव्य, गुण, चित्त, व्यवसाय, स्वभाव, पिशाचादि, आत्मभाव, बल, प्राण और जन्तु आदि अनेक अर्थों में सत्त्व शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ पर सत्त्व शब्द का अर्थ-बल (शक्ति) चित्त, गुण लिया गया है जिसमें महान् बल, महागुण, महान् विस्तृत स्वभाव पाया जाता है वह महासत्त्व कहलाता है।

महाधृति: = महती धृति: संतोषो यस्येति महाधृति:, धृतियोगविशेषे स्याद्धारणाधैर्ययो: सुखे। संतोषाध्वरयोश्चापि = जिनके महती धृति, महान् संतोष गुण प्राप्त हुआ है, वह महाधृति है।

महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबल: ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युति: ।।९ ।।

अर्थ : महाधैर्य, महावीर्य, महासम्पत्, महाबल, महाशक्ति, महाज्योति, महाभूति, महाद्युति ये आठ नाम जिनदेव के हैं।

टीका - महाधैर्य: = महद्धैर्यं भयेऽप्यनाकुलता यस्येति महाधैर्य:- भय प्राप्त होने पर भी प्रभु के मन में जरा भी आकुलता नहीं होती, वे महाधैर्यवान हैं।

महावीर्य: = महद्वीर्यं तेजो यस्येति महावीर्य: तथानेकार्थे - वीर्यं तेज:

प्रभावयो: । युक्ते शक्तौ च = प्रभु का वीर्य तेज महान् होने से महावीर्य हैं- वीर्य शब्द के वीर्य, तेज, प्रभाव, युक्त, शक्ति आदि अनेक अर्थ हैं अत: महा तेज, बल, वीर्य, शक्ति के धारक होने से महावीर्य कहलाते हैं। अनन्त वीर्य के स्वामी होने से महावीर्य हैं।

महासंपत् = महती संपत् संपदा समवसरणादिका यस्येति स महासंपत् = जिनकी समवसरणादि सम्पत्ति महत् याने महान् विशाल है, वह महासंपत्-वान है।

महाबल: = महद्बलं समस्त वस्तु परिच्छेदक लक्षणं केवलज्ञानं यस्येति स महाबल:, अथवा महद्बलं शरीरसामर्थ्यं निर्भयत्वं च यस्येति महाबल: = महद्बल, संपूर्ण वस्तुओं को जानने वाला केवलज्ञान रूप बल जिनका है, अथवा जिनका शरीर सामर्थ्य तथा निर्भयत्व महान् है, ऐसे प्रभु महाबल हैं।

महाशक्ति: = महती शक्तिरुत्साहो यस्येति स महाशक्ति: । तथानेकार्थे - "शक्तिरायुधभेदे स्यादुत्साहादि आदि शब्दात् प्रभुत्वं मंत्रश्च दौर्बले श्रियां" = जिनमें महान् शक्ति है, उत्साह है वे महाशक्ति सम्पन्न कहलाते हैं। अनेकार्थ कोश में शक्ति शब्द के शक्ति, आयुध, उत्साह, प्रभुत्व, मंत्र, दौर्बल्य और लक्ष्मी आदि अर्थ हैं अत: महाशक्ति, उत्साह, प्रभुत्व, लक्ष्मी आदि से युक्त होने से महाशक्ति कहे जाते हैं।

महाज्योति: = महत् ज्योति: केवललोचनं यस्येति स महाज्योति: = केवलज्ञान रूपी महानेत्र को धारण करने वाले प्रभु महाज्योति नाम से शोभित होते हैं।

महाभूति: = महती भूति: सम्पद्यस्येति स महाभूति: । तथानेकार्थे - "भूतिस्तु भस्मनि। मांसपाकविशेषे च सम्पदुत्पादयोरपि" - जिसकी सम्पत्ति अतिशय विशाल है, वह महाभूति है- भूमि के सम्पदा, भस्म, उत्पाद आदि अनेक अर्थ हैं।

महाद्युति: = महती द्युति: शोभा यस्येति महाद्युति: । अनेकार्थे - "द्युतिस्तु शोभादीधित्यो" - अतिशय विशाल शोभा कान्ति है जिसकी ऐसे

प्रभु का महाद्युति यह नाम सार्थक ही हैं। अनेकार्थ कोश में द्युति के शोभा, दीधिति आदि अनेक अर्थ हैं।

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः।

महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

अर्थ : महामति, महानीति, महाक्षान्ति, महादय, महाप्राज्ञ, महाभाग, महानन्द, महाकवि ये जिनेश्वर के नाम हैं।

टीका - महामतिः = महती मतिर्बुद्धिर्यस्येति स महामतिः मतिर्बुद्धीच्छयोरित्यनेकार्थे = जिनकी बुद्धि केवलज्ञान रूप होने से महान् एवं विशाल थी इसलिए महामति कहे जाते हैं। मति शब्द के मति, बुद्धि, इच्छा आदि अनेक अर्थ हैं।

महानीतिः = महती नीतिर्न्यायो यस्येति स महानीतिः । उक्तमनेकार्थे - नीतिर्नये प्रापणे च = जिनकी नीति अर्थात् न्याय विशाल निर्दोष था वे महानीति हैं। नीति, नय, प्रापण आदि एक-अर्थवाची हैं। महान् नय प्ररूपणा जिनकी वे महानीति हैं।

महाक्षान्तिः = महती क्षान्तिः क्षमा यस्येति स महाक्षान्तिः = आपकी क्षान्ति, क्षमा विशाल होने से आप महाक्षान्तिवान हैं।

महादयः = महती दया प्राणिरक्षा यस्येति महादयः = प्रभु महान् दयावान हैं। क्योंकि सब प्राणियों के रक्षक हैं। इसलिए महादय कहा है।

महाप्राज्ञः = महती प्रज्ञा बुद्धिविशेषो यस्येति महाप्राज्ञः = प्रभु की बुद्धि विशेष विशाल होने से उन्हें महाप्राज्ञ कहते हैं।

महाभागः = महान् भागो राजदेयं यस्य स महाभागः, अथवा महेन पूजाया आ समन्ताद् भज्यते सेव्यते स महाभागः, अथवा महान्भागः कर्मात्मश्लेषो यस्येति महाभागः = जिनको अन्य राजागण महा करभाग (टैक्स) अर्पण करते हैं ऐसे प्रभु महाभाग हैं। अथवा पूजन करने के लिए सर्व देश से आकर भक्तगण जिनकी पूजा करते हैं ऐसे वे प्रभु महाभाग कहे जाते हैं या कर्म से आत्मा का विश्लेष होने, अलग होने योग्य जिनका विशाल भाग्य है वे महाभाग हैं।

महानन्दः = महान् आनंदः सौख्यं यस्येति स महानन्दः, अथवा महेन तच्चरणपूजाया आनन्दो भव्यानां यस्मादिति महानन्दः = महान् आनन्द सुख जिनको है, वे जिनराज महान् आनन्द के धारक हैं अथवा प्रभु की पूजा करने में भव्यों को आनन्द की प्राप्ति होती है अतः प्रभु महानन्द हैं।

महाकविः = महांश्चासौ कविः महाकविः। तथाचोक्तमार्षे =

सुश्लिष्टपदविन्यासं, प्रबंधं रचयन्ति ये।
श्रव्यबंधप्रसन्नार्थं ते महाकवयो मताः ॥

प्रभु महान् कवि हैं, क्योंकि कवि किसे कहते हैं- श्लेषयुक्त पदों की रचना जिसमें है तथा जिसका प्रबंध श्रवण करने योग्य है तथा जिसमें प्रसाद पूर्ण अर्थ रचना है ऐसा प्रबन्ध जो रचते हैं वे महाकवि माने जाते हैं। ऐसा महाकवि का लक्षण है।

महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

अर्थ : महामहा, महाकीर्ति, महाकान्ति, महावपु, महादान, महाज्ञान, महायोग, महागुण ये प्रभु के सार्थक आठ नाम हैं।

टीका - महामहाः = महत् महः तेजः यस्य स महामहाः, तथा चोक्तमनेकार्थे - महस्तेजस्युत्सवे च = महान् विशाल मह याने तेज जिनका ऐसे प्रभु महामहा कहे जाते हैं।

महाकीर्तिः = महती कीर्त्तिः यशो यस्येति स महाकीर्त्तिः तथा चोक्तं - कीर्त्तिर्यशसि विस्तारे प्रासादे कर्दमेऽपि च = जिनकी महती महान् कीर्त्ति यश है फैला हुआ चारों ओर, उसे महाकीर्त्ति कहते हैं। कीर्त्ति के यशविस्तार, प्रासाद, कीचड़ आदि अनेक अर्थ हैं।

महाकांतिः = महती कान्तिः शोभा यस्येति स महाकांतिः। तथा चोक्तं - ''कांतिः शोभाकमनयोः'' महान् है कांति शोभा जिसकी वह महाकांति है।

महावपुः = महद्वपुः शास्ता कृतिर्यस्येति स महावपुः। उक्तं च - वपुः शास्ता कृतौ देहे = अतिशय सुन्दर शरीर को महावपु कहते हैं।

महादान: = महद्दानं रक्षणं विश्राणनं यस्येति महादान:। उक्तं च, दानं मतं गजमदे रक्षणच्छेदशुद्धिषु विश्राणनेऽपि = सर्व प्राणियों को प्रभु से अनन्त अभयदान प्राप्त होता है अत: वे महादान हैं।

महाज्ञान: = महत् ज्ञानं केवलज्ञानं यस्येति महाज्ञान: = प्रभु का ज्ञान महान् है अर्थात् प्रभु केवलज्ञान सम्पन्न हैं।

महायोग: = महान् योगश्चेतो निरोधो यस्य स महायोग: = प्रभु का चित्तनिरोध महान् होता है। अत: वे महायोग हैं।

महागुण: = महान् गुण: संधिविग्रहयानासनद्वैधीभावसंश्रयाख्यो यस्येति महागुण: = संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संश्रय, ये महागुण राज्यावस्था में प्रभु ने अपने पुत्र को बतलाये थे इस अपेक्षा से प्रभु महागुण थे और दीक्षा लेने पर प्रभु ने मुनि के मूलगुण तथा उत्तरगुणों का निरतिचार पालन किया था अत: वे महागुण थे।

महामहपति: प्राप्तमहाकल्याणपंचक:।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वर: ॥१२॥

अर्थ : महामहपति, प्राप्तमहाकल्याणपंचक, महाप्रभु, महाप्रातिहार्याधीश, महेश्वर ये नाम प्रभु के कहे गये हैं।

टीका = महामहपति: = महामहस्य मेरुस्नानस्य पति: स्वामी महामहपति:, मेरु पर जिनेश्वर का १००८ कलशजल से महाभिषेक कर इन्द्र ने प्रभु की महापूजा की थी, उस पूजा के स्वामी महामहपति हैं।

प्राप्तमहाकल्याणपंचक: = महाकल्याणानां गर्भावतार-जन्माभिषेक - निष्क्रमण-ज्ञान-निर्वाणानां पंचकं महाकल्याणपंचकं प्राप्तं महाकल्याणपंचकं येनासौ प्राप्तकल्याणपंचक: = गर्भावतार, जन्माभिषेक, दीक्षा, केवलज्ञान तथा निर्वाण इन पाँच महाकल्याणकों को प्राप्त होने से प्रभु प्राप्त महाकल्याण पंचक इस अन्वर्थ नाम को धारण करते हैं।

महाप्रभु : = महांश्चासौ प्रभु: स्वामी स महाप्रभु: - चक्रवर्ती, गणधरादि, प्रभुओं की अपेक्षा से भी भगवन्त का प्रभुत्व बड़ा है, अत: प्रभु महाप्रभु हैं।

महाप्रातिहार्याधीशः = महच्च प्रातिहार्यं महाप्रातिहार्यं, ऐश्वर्यलक्षण-मंडनद्रव्यं तस्याधीशः स्वामी स महाप्रातिहार्याधीशः । तथा चोक्तं -

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामण्डलं दुंदुभिरातपत्रं, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणां।

महान् प्रातिहार्य-महाऐश्वर्य जो अशोकवृक्ष, देवों द्वारा पुष्पवृष्टि करना, दिव्यध्वनि, चौंसठचँमर, सुवर्णरत्नजड़ित सिंहासन के ऊपर प्रभु का विराजमान होना, भामण्डल, दुन्दुभि-नगारों की ध्वनि तथा आतपत्र-छत्र ऐसे महाप्रातिहार्यों के अधिपति भगवान् हैं।

महेश्वरः = महतामिन्द्राणामीश्वरः स्वामी स महेश्वरः अथवा महस्य पूजाया ईश्वरः स्वामी महेश्वरः = प्रभु महान् इन्द्रादिकों के स्वामी हैं। अतः महेश्वर हैं। अथवा मह के पूजन के प्रभु-ईश्वर हैं, स्वामी हैं, इसलिए वे महेश्वर हैं।

इस प्रकार सूरिश्रीमद्अमरकीर्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका का पंचम अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 षष्ठोऽध्यायः 卐

(महामुन्यादिशतम्)

महामुनिर्महाध्यानी महामौनी महादमः।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ।।१ ।।

अर्थ : = महामुनि, महाध्यानी, महामौनी, महादम, महाक्षम, महाशील, महायज्ञ, महामख ये आठ नाम जिनेन्द्र के हैं।

महामुनिः = महांश्चासौ मुनिः प्रत्यक्षज्ञानी महामुनिः = अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानी, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान ये दो ज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। जिनदेव पूर्ण केवलज्ञानी हैं इसलिए वे महामुनि हैं।

महाध्यानी = ध्यानं धर्म्मशुक्ल-ध्यानद्वयं विद्यते यस्य स ध्यानी महांश्चासौ ध्यानी महाध्यानी = धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यानद्वय जिनके हैं वे जिनराज महाध्यानी कहे गये हैं। आर्त्तध्यान से तिर्यगति, रौद्रध्यान से नरकगति, धर्म्यध्यान से स्वर्गगति तथा शुक्ल ध्यान से चरमशरीरधारियों को मुक्ति प्राप्त होती है। जितने तीर्थंकर पद धारक होते हैं वे शुक्लध्यान से मोक्ष को प्राप्त होते हैं और वही महाध्यान है, वह ध्यान आपके होता है इसलिए आप महाध्यानी हैं।

महामौनी = मुनिषु ज्ञानिषु भवं मौनं विद्यते यस्येति मौनी। महांश्चासौ मौनी महामौनी वर्षसहस्रपर्यंतं खल्वादिनाथो न धर्ममुपदिदेश। ईदृशः स्वामी महामौनी भण्यते = मुनियों का, ज्ञानियों का जो वचन न बोलकर आत्मचिंतन में लीन होना, उसे मौन कहते हैं, ऐसा मौन जिन्होंने धारण किया उन्हें मौनी कहते हैं। भगवान आदिप्रभु ने हजार वर्षोंतक मौन धारण किया था। उन्होंने इतने वर्षों तक उपदेश नहीं दिया, इसलिए वे महामौनी हैं।

महादमः = महान् दमः तपः क्लेशसहिष्णुता यस्य स महादमः, अथवा महान् सर्व-प्राणिगण रक्षालक्षणो दो दानं यस्य स महादमः, महादे महादाने मा लक्ष्मीर्यस्य स महादमः। तथा चोक्तं, विश्वशंभुमुनिप्रणीतायामेकाक्षरनाम-मालायाम्-

दो दाने पूजने क्षीणे दानशौंडे च पालके ॥
देवे दीप्तौ दुराधर्षे दो भुजे दीर्घदेशके।
दयायां दमने दीने दंशकेऽपि दमः स्मृतः॥

वधे च बंधने बोधे बाले बीजे बलोदिते।
विदोषेपि पुमानेष चालने चीवरे वरे॥

महान् दमः-तपः = क्लेश सहन करने का जो महा-सामर्थ्य उसे महादम कहते हैं। अथवा सर्व प्राणियों का रक्षण करने रूप जो दान-वह अभयदान वह है महादम। अथवा लक्ष्मी महालक्ष्मी केवलज्ञान जिसके होने से महादम है।

विश्वशंभु मुनि प्रणीत एकाक्षर नाममाला में 'दो' धातु दान, पूजा, क्षीण, दान, शौण्ड, पालक, देव, दीप्ति दुराधर्ष, दो (भुजा), दीर्घदेशक, दया, दमन, दीन, दंशक, दम, वध-बंधन, बोध, बाल, बीज, बलोदित, विदोष, पुमान्, चालन, चीवर, श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में लिखा है। अत: महादया, महापूजा जिसके हों वह महादम कहलाता है।

महाक्षम: = महती अनन्याऽसाधारणा क्षमा प्रशमो यस्य स महाक्षम:, अद्वितीय असाधारण क्षमा प्रशम भाव जिसके होता है वह **महाक्षम** है।

महाशील: = महान्ति अष्टादशसहस्रगणनानि शीलानि वृत्तरक्षणोपाया यस्य स: महाशील:, चारित्र की रक्षा के उपाय स्वरूप जिसके अठारह हजार शील के भेद परिपूर्ण होते हैं, वह महाशील है।

महायज्ञ: = महान् घातिकर्मसंमिद्धोमलक्षणो यज्ञो यस्य स महायज्ञ:। अथवा महान् इन्द्र-धरणेन्द्र-नरेन्द्र-महामण्डलेश्वरादिभि: कृतत्वात् त्रिभुवन भव्यजन-मेलापक संजातत्वात् क्षीरसागरजलधारा - स्वर्ग संजात चंदन काश्मीर रज-कृष्णागरुगंधद्रव मुक्ताफल-अक्षतामृतपिण्डहवि: पाक नैवेद्य दिव्यरत्नप्रदीप-कालागरुसिताभ्र धूप - कल्पतरूत्पन्नाम्र - नालिकेर - कदलीपनसादिफल- महार्घ कुसुम प्रकर दर्भदूर्वा सिद्धार्थ - नंद्यावर्त्त - स्वस्तिक - छत्र - चामर-दर्पणादि-गीतनृत्यवादित्रादि संभूतो यज्ञो यस्येति महायज्ञ: अथवा महान् केवलज्ञान - यज्ञलक्षणो यज्ञो यस्य भवति स महायज्ञ: अथवा महान् पंचविधो यज्ञो यस्य स महायज्ञ:। तथा चोक्तं-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ: पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥७॥

महान् घातिकर्मरूपी समिधा का जिसने होम किया, जिसका ऐसा यज्ञ वह महायज्ञ है। अथवा महान् इन्द्र - धरणेन्द्र - नरेन्द्र - महामण्डलेश्वर आदि के द्वारा तीनों लोकों के भव्यजन का मिलाप होने से क्षीरसागर की जलधारा, स्वर्गोत्पन्न मलयज - चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य से, गीत - नृत्य - वादित्र आदि से उत्पन्न जिसकी पूजा रूप महायज्ञ किया

गया वह महायज्ञ है। अथवा महान् केवलज्ञान रूप यज्ञ है लक्षण जिसका ऐसा वह महायज्ञ है अथवा पाँच प्रकार के यज्ञ जिसके हैं- वह महायज्ञ है। कहा है-

अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होम दैव यज्ञ है, बलि (अर्पण-चढ़ावा) भूतयज्ञ है और अतिथि-पूजन नृयज्ञ है।

महामख: = महान् पूज्यो मखो यज्ञो यस्य स महामख:। महान् पूज्य है यज्ञ जिसका ऐसे वे महामख हैं।

महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिप:।
महामैत्रीमयोऽमेयो, महोपायो महोमय: ॥२॥

अर्थ : महाव्रतपति, मह्य, महाकान्तिधर, अधिप, महामैत्रीमय, अमेय, महोपाय और महोमय – ये भगवान के आठ नाम हैं॥२॥

महाव्रतपति: = व्रतानि प्राणातिपातपरिहाराऽनृतवचनपरित्यागाचौर्य-ब्रह्मचर्याकिंचन रजनीभोजनपरिहारं लक्षणानि महन्ति व्रतानि महाव्रतानि तेषां पति: रक्षक: स्वामी महाव्रतपति: = अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और रात्रिभोजनपरिहार लक्षण वाले महान् व्रतों के पति, रक्षक, स्वामी होनेसे महाव्रतपति हैं।

मह्य: = महे यज्ञे नियुक्तो मह्य: पूज्य: इत्यर्थ:। यज्ञ में नियुक्त होने से जो पूज्य हैं अत: मह्य हैं।

महाकान्तिधर: = अनन्याऽसाधारणां शोभां धरतीति महाकान्तिधर: धृञ् धारणे। धृ धातु धारण करने के अर्थ में है। असाधारण दिव्य शोभा को धारण करने वाले होने से आप महाकान्तिधर हैं।

अधिप: = अधिप, रक्षक, सर्व जीवों के रक्षक होने से प्रभु अधिप हैं। अथवा जो 'अधिकं पिबति' लोक तथा अलोक को केवलज्ञान से व्याप्त करता है उसे अधिप कहना चाहिए। सबके अधिपति होने से भी अधिप हैं।

महामैत्रीमय: = महती चासौ मैत्री महामैत्री सर्वजीवजीवनबुद्धि:, तथा निर्वृत्त: महामैत्रीमय: = सर्व प्राणियों में मैत्री या जीवन देने की बुद्धि ने मानों

जिनेन्द्र को उत्पन्न किया है ऐसे प्रभु हैं। समस्त जीवों के साथ उच्च मित्रता का भाव धारण करने से आप महामैत्रीमय हैं।

अमेय: = मा माने मीयते मेय: 'आत्खनोरिच्च', न मेय: अमेय: न केनापि मातुं शक्यते इत्यर्थ: = जिसके द्वारा न माने मीयते अर्थात् जिसको नापा नहीं जाता अर्थात् प्रभु अनन्त गुणधारक हैं अत: अमेय हैं।

महोपाय: = महान् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोलक्षण उपायो मोक्षस्य स महोपाय: = महान् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तथा तपरूप लक्षण मोक्ष का उपाय है ऐसे वे प्रभु मोक्ष के उपायरूप हैं।

महोमय: = मह उत्सवस्तस्य बन्धु: सोमो वा महोमय: अथवा महसा ज्ञानेन निर्वृत्तो महोमय: उत्कृष्टबोध इत्यर्थ: = मह- उत्सव उसका जो बंधु उसे महोमय कहते हैं। अथवा महसा-ज्ञान से जो निर्वृत्त बना हुआ है, जो ज्ञान के द्वारा मय-मानों निवृत्त हुए हैं ऐसे प्रभु महोमय हैं।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायति:।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपति:॥३॥

अर्थ = महाकारुणिक, मन्ता, महामन्त्र, महायति, महानाद, महाघोष, महेज्य, महसांपति ये आठ नाम जिनदेव के हैं।

टीका – महाकारुणिक: = करुणायां सर्वजीवदयायां नियुक्त:, कारुणिक: महांश्चासौ कारुणिक: महाकारुणिक: सर्वजीवमरणनिषेधक: इत्यर्थ: = प्रभु सर्व जीवों पर करुणा भाव रखते हैं, अत: वे महाकारुणिक हैं। अर्थात् संपूर्ण जीवों का रक्षण करो 'मा हिंस्यात्-सर्वभूतानि' किसी भी प्राणी का घात मत करो, ऐसा उपदेश देकर प्राणिमारण का निषेध करते हैं इसलिए वे महादयालु हैं।

मन्ता: = मनु बोधने मनुते जानातीति मन्ता ज्ञातेत्यर्थ: = संपूर्ण जीवादि पदार्थों को भगवान् 'मनुते जानातीति मन्ता' जानते हैं, अत: वे मन्ता हैं।

महामंत्र: = महान् मंत्रो गुप्तवादो यस्येति स महामंत्र: । उक्तमनेकार्थे - 'मंत्रो देवादिसाधने वेदांशे गुप्तवादे च'= देवादि साधन में, वेदांश में और

गुप्त मंत्रणा में मंत्र शब्द का प्रयोग होता है, महान् गुप्त वाद है जिसका वह महामंत्र कहलाता है।

महायति: = यतते यत्नं करोति रत्नत्रये इति यति:, 'सर्वधातुभ्य: इ:'। महांश्चासौ यति: महायति: = रत्नत्रय के पालन में प्रभु ने महान् प्रयत्न किया है, अत: वे महायति हैं। महान् यति: महायति: अथवा कर्मारि के नाश करने के लिए जिन्होंने महान् प्रयत्न किया है अत: महायति हैं।

महानाद: = महान् नादो ध्वनिर्यस्य स महानाद:, अथवा महान् ना संवित् दो दानमस्य स महानाद: = प्रभु की दिव्य ध्वनि जो सब जीवों का कल्याण करती है वही महानाद है। अथवा महान् ना संवित् = रत्नत्रय को पूर्ण प्राप्त करने की प्रतिज्ञा, तथा द: दान सर्व जीवों को अभय देना, ये दो कार्य जिन्होंने किये हैं ऐसे प्रभु ही महानाद हैं।

महाघोष: = महान् घोषो योजनप्रमितो ध्वनिर्यस्य स महाघोष: = महान् है घोष जिसका, घोष याने गर्जना-शब्द-आवाज और प्रभु की दिव्यध्वनि एक योजन व्यापी है अत: वे ही महाघोष हैं।

महेज्य: = महती इज्या पूजा यस्येति महेज्य: = इन्द्रादिकों ने जिनका महापूजन किया ऐसे प्रभु महेज्य हैं।

महसांपति: = महसां तेजसां पति: स्वामी महसांपति: = प्रभु महान् तेज को धारण करते हैं इसलिए महसांपति हैं।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक्।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदय: ॥४॥

अर्थ : महाध्वरधर, धुर्य, महौदार्य, महिष्ठवाक्, महात्मा, महसांधाम, महर्षि और महितोदय, ये आठ नाम प्रभु के हैं जो इस प्रकार सूचना देते हैं।

टीका - महाध्वरधर: = महांश्चासौ अध्वरो यज्ञ: महाध्वर: महाध्वरं महायज्ञं धरतीति महाध्वरधर:, महायज्ञधारी, इत्यर्थ: = प्रभु महायज्ञों को अर्थात् महातपरूपी यज्ञ को धारण करने वाले हैं। अत: महाध्वरधर कहलाते हैं।

धुर्यः = धुरं वहतीति धुर्यः, उक्तं च - धुरं वहति यो धुर्यो धौरेयः स च कथ्यते, धर्म्मधुरंधर इत्यर्थः = धर्म रूपी धुरा को धारण करने वाले होने से आप धुर्य हैं।

महौदार्यः = महत् औदार्यं दानशक्तिर्यस्येति स महौदार्यः, भगवान् निर्ग्रंथोऽपि सन् वाञ्छितफलप्रदायकः इत्यर्थः। **उक्तं च**-निष्किंचनोऽपि जगते न कानि, जिनदिशसि निकामं कामितानि। नैवात्र चित्रमथवा समस्ति वृष्टिः किमु खादिह नो चकास्ति। अथवा वैराग्यकाले सर्वत्यागीति भावः = प्रभु महान् औदार्य को धारण करने वाले हैं, उनकी दानशक्ति उदात्त है। भगवान निर्ग्रन्थ, परिग्रह रहित होने पर भी वांछित फल देते हैं। **उक्तं च**- हे जिन ! आपके पास कुछ भी नहीं है, परन्तु आप जगत् को कौन सी इच्छित वस्तु नहीं देते अर्थात् सब लोगों को आप इच्छित वस्तुओं को प्रदान करते हैं इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है क्योंकि आकाश के पास कुछ भी नहीं तो भी क्या आकाश से वर्षा होती नहीं देखी जाती। अथवा वैराग्यकाल में भगवान महादान देते हैं, सर्वत्याग करते हैं। अतः वे महौदार्य हैं।

महिष्ठवाक् = महिष्ठा पूज्या वाक् यस्य स महिष्ठवाक् = प्रभु की वाणी महिष्ठा सर्व इन्द्र गणधरादिकों से पूजनीय है। अतः वे महिष्ठवाक् हैं। श्रेष्ठ मधुर वचनों के स्वामी होने से महिष्ठवाक् हैं।

महात्मा = महान् केवलज्ञानेन लोकालोकव्यापकः आत्मा यस्य स महात्मा - केवलज्ञान के द्वारा जिनका आत्मा लोकालोक में व्यापक हुआ है अर्थात् लोकालोक को जानता है, ऐसे प्रभु महात्मा हैं। अत्यन्त पवित्र आत्मा होने से आप महात्मा हैं।

महसांधाम: = महसां तेजसां धाम आश्रयः स महसांधाम = प्रभु महस् को, तेज को धारण करते हैं, तेजों के निवासस्थान हैं, आश्रय हैं।

महर्षिः = महांश्चासौ ऋषिः संपन्नः महर्षिः, अथवा रिषि ऋषि गतौ ऋषति गच्छति बुद्धिऋद्धिं, औषधर्द्धिं, विक्रियर्द्धिं, अक्षीणमहानसालयर्द्धिं, वियद्गमनर्द्धिं, केवलज्ञानर्द्धिं, प्राप्नोतीति ऋषिः। 'गृहनाम्युपधात्किः,' अथवा 'ऋषी ची ब्र आदानसंवरणोः'

रेषणात्क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः ।
मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ॥

महांश्चासौ ऋषिः महर्षिः = प्रभु सम्पन्न ऋषि हैं। अथवा अनेक ऋद्धियों को भगवान प्राप्त हुए हैं, अतः वे महर्षि हैं। औषधिर्द्धि, विक्रियर्द्धि, अक्षीणमहानसऋद्धि, अक्षीणमहालयर्द्धि आदिक ऋद्धियाँ भगवान को प्राप्त हुई हैं- **उक्तं च** - क्लेशसमूह को रोकने से साधुजन विद्वानों के द्वारा ऋषि कहे जाते हैं और आत्मविद्या के लिए मान्य होने से महान् लोग यतियों को मुनि कहते हैं।

महितोदयः महितः पूजितः उदयः तीर्थंकरनामकर्मणो विपाको यस्य स महितोदयः - पूजित हुआ है तीर्थंकर नामकर्म का विपाक उदय जिनका ऐसे प्रभु महितोदय नाम से कहे जाते हैं। अर्थात् जगत् में पूज्य जन्म धारण करने से महितोदय कहलाते हैं।

महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥

अर्थ = महाक्लेशाङ्कुशः, शूर, महाभूतपति, गुरु, महापराक्रम, अनंत, महाक्रोधरिपु, वशी ये आठ प्रभु के सार्थक नाम हैं जो इस प्रकार हैं-

टीका - महाक्लेशाङ्कुशः = महान् तपः संयम परीषह सहनादिलक्षणो योऽसौ क्लेशः कृच्छ्रं स एवांकुशः सृणिर्मत्तमनोगजेन्द्रोन्मार्गनिषेधकारकत्वात् महाक्लेशाङ्कुशः = महान् तप, संयम, क्षुधादि परीषह सहन-विजय करना आदिक क्लेशरूपी अंकुश से प्रभु युक्त हैं, अर्थात् मत्तमनरूप गजेन्द्र को उन्मार्ग से परावर्त करने के लिए भगवान ने संयम, तप आदिक अंकुश धारण कर मनरूप गज को वश किया है। वा महान् कष्टों को दूर करने के लिए अंकुश के समान होने से 'महाक्लेशांकुश' हैं।

शूरः = 'शूर वीर विक्रान्तौ', शूरयते इति शूरः कर्मक्षयसमर्थ इत्यर्थः = प्रभु वीर हैं, विक्रान्त हैं, शूर हैं क्योंकि वे कर्मक्षय करने में समर्थ हैं। क्रोधादि शत्रुओं को दूर करने से, नाश करने से शूर हैं।

महाभूतपति: = महांतश्च ते भूता गणधरचक्रधरादय: महाभूता: तेषां गणधर-चक्रधरादीनां पति: ईश: स महाभूतपति: - गणधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों को महाभूत कहते हैं, उनके प्रभु पति ईश स्वामी हैं।

गुरु: = 'गृ निगरणे' गिरति धर्ममुपदिशति इति गुरु: 'कृग्रोर्रुतउच्च' = प्रभु धर्ममार्ग का उपदेश करते हैं। अत: वे गुरु हैं। 'गृ' धातु निगलने और कहने अर्थ में होती है। 'गु' अन्धकार है 'रु' हन्ता (नाशक) है। शिष्यों के अज्ञान अंधकार का नाश करते हैं।

महापराक्रम: = महान् पराक्रमो विक्रमो यस्येति स महापराक्रम: केवलज्ञानेन सर्ववस्तु-वेदकशक्तिरित्यर्थ: = प्रभु ने महापराक्रम, विक्रम को धारण किया है अर्थात् केवलज्ञान से सर्व वस्तु वेदक, जानने की शक्ति को प्रभु ने धारण किया है।

अनंत: = नास्त्यंतो विनाशो यस्येति अनंत: = प्रभु अन्त नाश से रहित होने से अनन्त हैं।

महाक्रोधरिपु: = महांश्चासौ क्रोध: कोप: महाक्रोध:, महाक्रोधस्य रिपु: शत्रु: महाक्रोधरिपु: = प्रभु महाक्रोध के लिए शत्रु हैं।

वशी: = वशकान्तौ वष्टि कामयते इति वश: वश: प्रभुत्वमस्यास्तीति वशी उक्तमनेकार्थे - वशो जनस्य स्पृहायतेष्वयत्तत्वप्रत्ययो: =

वश् धातु कान्ति अर्थ में, वश अर्थ में और स्पृहा अर्थ में है। अत: जो देदीप्यमान है, जिन्होंने पंचेन्द्रियों को वश में किया है अथवा सारा जगत् जिनके वश में है, सारे संसारी प्राणी जिनको प्राप्त करने की इच्छा करते हैं अत: भगवान् वशी हैं।

महाभवाब्धिसंतारी महामोहाद्रिसूदन:।
महागुणाकर: क्षान्तो महायोगीश्वर: शमी ।।६।।

अर्थ : महाभवाब्धिसंतारी, महामोहाद्रिसूदन, महागुणाकर, क्षान्त, महायोगीश्वर, शमी ये छह नाम प्रभु के हैं।

टीका - महाभवाब्धिसंतारी = भव एवाब्धि: भवाब्धि: संसार-समुद्र:,

महांश्चासौ भवाब्धि:, महाभवाब्धि: महाभवाब्धिं संतारयतीत्येवंशीलो महाभवाब्धिसंतारी = महान् अतिशय बड़ा ऐसा जो संसार रूप समुद्र उससे भव्यों को तारने वाले प्रभु महाभवाब्धिसंतारी हैं।

महामोहाद्रिसूदन: = महांश्चासौ मोह: महामोह:, महामोह एवाद्रि: महामोहाद्रि: महामोहाद्रिं सूदितवान् महामोहाद्रिसूदन:। महामोहलक्षणमुक्तमार्षे **गुणभद्राचार्यै:** =

अहं किल सुखी सौख्यमेतत्किल पुन: सुखम्।
पुण्यात्किल महामोह:, काललब्ध्या विनाऽभवत्॥

महामोह रूपी पर्वत को प्रभु ने नष्ट किया। अत: प्रभु महामोहरूप पर्वत के विनाशक हैं। महामोह का लक्षण गुणभद्राचार्य ने ऐसा कहा है- मैं सुखी हूँ तथा यह सुख मुझे पुण्य से प्राप्त हुआ है, ऐसा महामोह काललब्धि के बिना हुआ है।

महागुणाकर: = महागुणानां सम्यक्त्वज्ञान दर्शन वीर्य सूक्ष्मावगाहना गुरुलघुत्वाव्याबाधानां आकर: उत्पत्तिस्थानं स महागुणाकर: = सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, शक्ति, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाधा और अगुरुलघुत्व, प्रभु इन आठ गुणों के आकर याने उत्पत्ति स्थान हैं इसलिए महागुणाकर कहे जाते हैं।

क्षान्त: = क्षमते स्म क्षान्त: सर्वपरीषहादीन् सोढवानित्यर्थ: = प्रभु ने रोषादिकों को जीता है। अत: वे क्षान्त हैं।

महायोगीश्वर: = महायोगिनां गणधरदेवादीनामीश्वर: स्वामी महायोगीश्वर: = महान् योगी याने गणधरादि और उनके ईश्वर स्वामी प्रभु हैं अत: महायोगीश्वर कहे जाते हैं।

शमी: = शम: सर्वकर्मक्षयो विद्यते यस्य स शमी। समी इति पाठे सम: समता परिणामो विद्यते यस्य स समी अथवा शाम्यतीति शमी 'शमाष्टानां घिनिण्'॥ = सर्व कर्मक्षय को शम कहते हैं। उसे धारण करने वाले प्रभु शमी हैं। समता परिणाम को धारण करने वाले प्रभु शमी हैं।

महाध्यानपतिर्ध्यातमहाधर्मो महाव्रतः।
महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

अर्थ : महाध्यानपति, ध्यातमहाधर्म, महाव्रत, महाकर्मारिहा, आत्मज्ञ, महादेव, महेशिता ये सात नाम जिनेन्द्र प्रभु के हैं।

टीका - महाध्यानपतिः = महाध्यानस्य परम शुक्लध्यानस्य पतिः महाध्यानपतिः = प्रभु जिनदेव महाध्यान याने पृथक्त्व वितर्क, एकत्ववितर्क आदिक परम शुक्ल ध्यान के स्वामी हैं।

ध्यातमहाधर्मः = ध्यातश्चिंतितः संभालितः पूर्व भवायत्तो महाधर्मः श्रावक कुलोत्पन्न लक्षणो येनासौ ध्यातमहाधर्मः = जिनदेव ने पूर्वभव में श्रावक कुलोत्पन्न महाधर्म का ध्यान, चिन्तन किया था अतः वे ध्यातमहाधर्म कहे जाते हैं।

महाव्रतः = हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं महच्च तद्व्रतं च महाव्रतं, महाव्रतं यस्येति महाव्रतः = हिंसा, असत्य, चोरी करना, मैथुनसेवन, और सम्पूर्ण बाह्याभ्यंतर परिग्रहों पर ममत्व ऐसे पंच महापापों का यावज्जीवन पूर्ण त्याग करना महाव्रत है। इनके धारक प्रभु ही हैं।

महाकर्मारिहा = महच्च कर्म महाकर्म महाकर्मैवारिः शत्रुर्महाकर्मारिः महाकर्म्मारिं हतवान् महाकर्मारिहा, 'क्विप् ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु' = ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय ये चार घातिकर्म महाशत्रु हैं। इनको प्रभु जिनेश्वर ने समूल नष्ट किया। अतः उन्हें महाकर्मारिहा कहते हैं।

आत्मज्ञः = ज्ञा अवबोधने आत्मानं पुमांसं जानातीति आत्मज्ञः 'प्रेदाज्ञः' = ज्ञात याने जानलिया अपने आत्मस्वरूप को पूर्णतया जिन्होंने ऐसे प्रभु आत्मज्ञ हैं।

महादेवः = महान् इन्द्रादीनामाराध्यो देवो महादेवः, इन्द्रादिक भी महान् जिनेश्वर की आराधना करते हैं उनके द्वारा आराध्य हैं इसलिए महादेव हैं।

महेशिता = ईष्टे ई ऐश्वर्यवान् भवतीत्येवंशीलो ईशिता, महान् ईशिता महेशिता = जो अनन्तज्ञानादि व समवसरणादि लक्ष्मी के महास्वामी हैं; इसलिए जिनेश्वर महेशित हैं।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरोहरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः॥८॥

अर्थ : सर्वक्लेशापह, साधु, सर्वदोषहर, हर, असंख्येय, अप्रमेयात्मा, शमात्मा, प्रशमाकर, ये आठ नाम जिनेश्वर के हैं।

टीका - सर्वक्लेशापहः = सर्वान् शारीरमानसागंतून्, क्लेशान् दुःखानि अपहंति स क्लेशापहः अथवा सर्वेषां भक्तानां क्लेशान् नरकादिदुःखानि अपहन्ति सर्वक्लेशापहः - अपात्क्लेश तमसोरितिडप्रत्ययः = सर्व शारीरिक, मानसिक तथा आकस्मिक क्लेशों को नष्ट करने वाले प्रभु सर्वक्लेशापह हैं। या सर्व भक्तों के क्लेश-नरकादि दुखोंका नाश प्रभु करते हैं। इसलिए वे सर्वक्लेशापह हैं।

साधुः = साधयति रत्नत्रयमिति साधुः 'कृ वा पा जि मिस्वदि साध्य सु दृषपि निज निचरिचटिभ्यः उण्'। तथा **चोक्तं** - ये व्याख्यंति न शास्त्रं ददति न दीक्षादिकं च शिष्याणां। कर्मोन्मूलनशक्ता ध्यातास्ते चात्र साधवो ज्ञेयाः॥ = जो रत्नत्रय को साधते हैं उन्हें साधु कहते हैं, जिनदेव ने रत्नत्रय को सिद्ध किया, प्राप्त किया अतः वे साधु हैं। साधु का लक्षण ऐसा है-

जो शास्त्रों का रहस्य, उपदेश आदिक नहीं देते, शिष्यों को दीक्षा, शिक्षादिक नहीं देते, जो ध्यान में स्थिर रहकर, कर्म नाश करने में सदा तत्पर होते हैं उनको साधु कहते हैं।

सर्वदोषहरः = सर्वे च ते दोषाः सर्वदोषाः, क्षुत्पिपासादयः तान् हरति स्फेटयति निराकरोतीति सर्वदोषहरः = भूख, प्यास, वृद्धावस्था आदिक सर्व दोषों को भगवान ने नष्ट किया है। अतः वे सर्वदोषहर हैं।

हरः = अनंतभवोपार्जितानि पापानि जीवानां हरति निराकरोति इति हरः, अथवा हं हर्षं अनंतसुखं राति ददाति आदत्ते वा हरः, अथवा राज्यावस्थायां हं सहस्रसरं तरलमध्यगं हारं मुक्ताफलदाम राति ददाति आदत्ते वा हरः, अथवा हस्य हिंसाया रो अग्निदाहकः हरः। अश्वमेधादियागाऽधर्म्मनिषेधक इत्यर्थः = अनन्तभवों में जो पापराशि जीवों ने संचित की है उसका निराकरण किया है

अत: वे जिनराज हर हैं। अथवा, भगवान भक्तों को ह-हर्ष-अनन्त सुख देते हैं अथवा, हर्ष को उत्पन्न करते हैं अत: वे हर हैं। अथवा, भगवान राज्यावस्था में हं सहस्रसरवाले, मध्यभाग में पदक को (लॉकेट) धारण करने वाले मुक्ताफलादिकों का हार देते हैं इसलिए वे हर है। अथवा उपर्युक्त हार को धारण करते हैं इसलिए हर हैं। अथवा, हिंसा को नष्ट करने में र: अग्नि के समान हैं, अश्वमेधादिक यज्ञों का भगवान निषेध करते हैं अत: वे हर हैं।

असंख्येय: = संख्यानं संख्या, संख्यामतीत: असंख्येय: अगणित इत्यर्थ: = संख्या का जिन्होंने उल्लंघन किया है ऐसे प्रभु जिनराज असंख्येय हैं उनमें असंख्यगुण हैं।

अप्रमेयात्मा = न प्रमेय: अप्रमेय: अगणित: आत्मा यस्येति सोऽप्रमेयात्मा एकसिद्धशरीरेऽनंता: सिद्धास्तिष्ठंतीत्यर्थ:= जिसमें अगणित आत्माओं का सिद्धों का निवास है, एक सिद्ध में अनंत सिद्ध रहते हैं।

शमात्मा = शम: सर्वकर्मक्षय: उपशम: आत्मा यस्येति शमात्मा = सर्व कर्मों के क्षय को उपशम - शम कहते हैं। वह आत्म - स्वरूप जिनका है ऐसे जिनराज शमात्मा हैं।

प्रशमाकर:= प्रकृष्ट: शम: प्रशम: उत्तमक्षमा, तस्याकर: खानि: प्रशमाकर:, 'आकरो निकरे खानौ' इत्यभिधानात् उत्कृष्ट शम को प्रशम कहते हैं अर्थात् उत्तम क्षमा को प्रशम कहते हैं और श्री जिनेन्द्र प्रभु क्षमा की खानि, आकर, निकर हैं। इसलिए प्रशमाकर कहे जाते हैं।

सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्य: श्रुतात्मा विष्टरश्रवा:।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वग:॥९॥

अर्थ : सर्वयोगीश्वर, अचिन्त्य, श्रुतात्मा, विष्टरश्रवा, दान्तात्मा, दमतीर्थेश, योगात्मा, ज्ञानसर्वग ये आठ नाम प्रभु के हैं।

टीका - सर्वयोगीश्वर: = सर्वयोगिनां गणधरदेवादीनामीश्वर: स्वामी सर्व योगीश्वर:= संपूर्ण गणधरादि योगिजनों के प्रभु स्वामी हैं इसलिए सर्वयोगीश्वर हैं।

अचिन्त्यः = न चिन्त्यः अचिन्त्यः मनसः अगम्यः इत्यर्थः। चिति स्मृत्यां धातुः= जिनराज का स्वरूप मन से अगम्य है, मन से भी चिन्तनीय नहीं है। चिति धातु स्मृति अर्थ में आती है।

श्रुतात्मा = श्रुतं द्वादशांगं आत्मा यस्येति श्रुतात्मा, ज्ञानमय इत्यर्थः= आचारांग, सूत्रकृतांग आदि बारह प्रकार के श्रुत ये ही जिनदेव के स्वरूप हैं अर्थात् उनकी आत्मा श्रुतरूप है इसलिए उन्हें श्रुतात्मा कहते हैं।

विष्टरश्रवाः= विष्टर इव श्रवसी कर्णो यस्य स विष्टरश्रवाः सर्वधातुभ्योऽसुन्, अथवा विष्टरात्, सिंहासनात् स्रवतिधर्मामृतमिति विष्टरश्रवाः= आसन के समान प्रभु के कर्ण-कान विस्तृत थे। अतएव वे विष्टरश्रवा हैं। अथवा गन्धकुटी के मध्य में सिंहासन पर बैठकर धर्मामृत का श्रवण कराने से प्रभु विष्टरश्रवा हैं।

दान्तात्मा = दांतः तप : क्लेशसहः आत्मा यस्येति दान्तात्मा, अथवा दो दानं अभयं अंतःस्वभावो यस्य स दान्तः दान्तो दानस्वभाव : आत्मा यस्येति दान्तात्मा = प्रभु का आत्मा तपःक्लेश को सहने वाला होने से वे दान्तात्मा हैं। अथवा 'दो' अभयदान देना ही है स्वभाव जिसका ऐसा प्रभु का आत्मा होने से वे दान्तात्मा हैं।

दमतीर्थेशः= दमतीर्थस्य इन्द्रियनिग्रहशास्त्रस्य ईशः स्वामी दमतीर्थेशः उक्तमनेकार्थे -

दमः स्यात्कर्दमे दंडे, दमने दमथेऽपि च।
तीर्थं शास्त्रे गुरौ यज्ञे. पुण्यक्षेत्रावतारयोः॥
ऋषिजुष्टे जले सत्रिण्युपाये स्त्रीरजस्यपि।
योनौ पात्रे दर्शनेषु च॥

इन्द्रिय-निग्रह करने वाले शास्त्र को दमतीर्थ कहते हैं, प्रभु उस शास्त्र के ईश हैं, स्वामी हैं। अतः दमतीर्थेश हैं। अथवा 'दम्' धातु अनेक अर्थ में है। जैसे-

कीचड़, दण्ड, दमन, दमथ, तीर्थ, शास्त्र, गुरु, यज्ञ, पुण्य, क्षेत्र, अवतार, ऋषि, जुष्ट, जल, सत्रिणि, स्त्रीरज की योनि, पात्र, दर्शन आदि अनेक अर्थों में आता है। अत: 'दम' गुरु संसार से पार करने वाले होने से गुरु तीर्थ है और उनके स्वामी होने से भी आप दमतीर्थेश हैं। आदि और भी शब्द लगाना चाहिए।

योगात्मा = योगोऽलब्धलाभ: आत्मा यस्येति योगात्मा तथा चोक्तं अनेकार्थे - योगो विश्रब्धघातिनि।

अलब्धलाभे, संगत्यां कार्मण ध्यानयुक्तिषु॥ वपु: स्थैर्यप्रयोगे च संनाहे भेषजे घने। विष्कंभादावुपाये च॥ अलब्ध का, शुद्ध आत्म-स्वरूप का, जो पूर्वभव में नहीं प्राप्त हुआ था उसकी प्राप्ति होना उसे योग कहते हैं। वही जिनका स्वरूप है ऐसे जिनदेव योगात्मा हैं।

अथवा योग के अनेक अर्थ हैं- अलब्ध का लाभ, संगति, कार्माण (कर्मों का समूह), ध्यान, युक्ति, शरीर, स्थिरता का प्रयोग, युद्ध, औषध, बादल, विष्कंभ, उपाय आदि। अत: आप ध्यानात्मक, संसार-रोग के नाशक होने से औषधात्मक, स्थिरप्रयोगात्मक, संगत्यात्मक आदि अनेक अर्थ हैं।

ज्ञानसर्वग:= ज्ञानेन केवलज्ञानेन सर्वलोकालोकं जानातीति ज्ञानसर्वग:= अपने केवलज्ञान से प्रभु सर्व लोक-अलोक को जानते हैं अत: वे ज्ञान-सर्वग हैं।

प्रधानं = डुधाञ् धारणपोषणयोरिति तावद्धातुर्वर्तते प्रधीयते एकाग्रतया आत्मनि आत्मा धार्यते इति प्रधानं। परमशुक्लध्यानं तद्योगे भगवानपि प्रधानमित्या-विष्टलिंगतयोच्यते = प्रधान - "**डुधाञ्**" धातु धारण, पोषण अर्थ में है अत: एकाग्रता से अपनी आत्मा में धारण किया जाता है वा आत्मा जिससे धारण करता है वह शुक्ल ध्यान प्रधान कहलाता है और शुक्ल ध्यान आत्मा को छोड़कर बाहर नहीं होता है, आत्मा की ही चारित्र गुण की पर्याय है अत: संयोग से आत्मा ही कहलाती है। शुक्ल ध्यान स्वरूप आत्मा प्रधान कहलाती है। अत: आप प्रधानात्मा हैं।

आत्मा = अत् सातत्यगमने अतति सततं गच्छति लोकालोकस्वरूपं जानातीति आत्मा, सर्वधातुभ्यो मन् घोषवत्योश्च कृति इट् निषेध:, वा अतति व्याप्नोति वा आदत्ते जगत्संहारकाले, अत्ति वा विषयान् जीव-रूपेणेत्यात्मा-यदाप्नोति यदादत्ते यच्चत्ति विषयानिह।

यस्यास्ति संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्तित:॥ तथा चोक्तं -

भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा पुमान्।
आत्मा च परमात्मा च त्वमेक: पंचधा स्थित:॥

अत् धातु से आत्मा शब्द बना है। अत् धातु का अर्थ है सतत गमन करना। जो सतत गमन करता है अर्थात् सतत लोक तथा अलोक का स्वरूप जानता है उसे आत्मा कहते हैं, भगवान केवलज्ञान से सतत जानते हैं अत: वे आत्मा हैं। अथवा अत् धातु का अर्थ गमन करना है, व्याप्त करना है, जगत् के संहार काल में ग्रहण करना है, खाना है अर्थात् विषयों को भोगना है। इसलिए जो निरंतर गमन करता है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य को प्राप्त है, ज्ञान के द्वारा सारे जगत् में व्याप्त है, अन्य मतों की अपेक्षा जगत्के संहार काल में जगत् को धारण करता है, पंचेन्द्रिय विषयों को भोगता है। निश्चय नय से अपने स्वरूप को भोगता है अत: आत्मा कहलाता है। कहा भी है-

भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, पुमान् और परमात्मा पाँच प्रकार से आत्मा का वर्णन किया है। इसमें भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, बहिरात्मा हैं, प्रधानात्मा एवं पुमान् अन्तरात्मा हैं और परमात्मा, इन तीनों आत्माओं का वर्णन है। तथा इसमें जीवके नौ अधिकार भी गर्भित हैं।

प्रकृति: = प्रकृष्टा त्रैलोक्यलोकहितकारिणी कृतिस्तीर्थप्रवर्त्तनं यस्य स प्रकृति:, अथवा आविष्टलिंगमिदं नाम चेत् तदा प्रकृतिस्वभावात् भगवानपि प्रकृति:, अथवा तीर्थंकरनामप्रकृति युक्तत्वात् प्रकृति: अथवा प्रकृति: स्वभावो धर्मोपदेशादि स्वभाव युक्तत्वात् प्रकृति:॥ जिनेन्द्र की कृति याने क्रिया त्रिलोक तथा अलोक की प्रकृष्ट उत्कृष्ट हितकारिणी है, हितरूप तीर्थ की प्रवर्त्तना करती है अत: उन्हें प्रकृति कहते हैं। अथवा प्रकृति स्वभाव को कहते हैं और स्वभाव के सम्बन्ध से भगवान को भी प्रकृति कहा है। या तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति

के उदय से भगवान भी प्रकृति कहे जाते हैं। अथवा धर्मोपदेश स्वभाव युक्त होने से जिनेश्वर को भी प्रकृति कहते हैं।

परमः = परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मीः यस्य स परमः। परा याने उत्कृष्ट मा लक्ष्मी जिनकी है वे परम हैं।

परमोदयः = परमः सर्वोत्कृष्टः उदयोऽभ्युदयो यस्येति परमोदयः= उत्कृष्ट अभ्युदय से भगवान युक्त हैं अतः परमोदय हैं।

प्रक्षीणबन्धः = प्रकर्षेण क्षीणः क्षयं गतो बन्धो यस्येति स प्रक्षीणबन्धः= भगवान के कर्मों का बन्ध अत्यंत क्षीण हुआ है। इसलिए वे प्रक्षीणबन्ध कहे जाते हैं।

कामारिः = संकल्परमणीयस्य प्रीतिसंभोग शोभिन। रुचिरस्याभिलाषस्य नाम काम इति स्मृतिवचनात्। कामस्य यथेष्टमाभिन्नकालतृप्तिकरसर्वेन्द्रियहेतुः तस्यारिः शत्रुः कामारिः= ये पंचेन्द्रियों के विषय संकल्प से रमणीय तथा प्रीति संभोग शोभन लगते हैं। प्रिय रुचिकर ज्ञात होते हैं। अतः स्मृतिवचन से स्त्रीपुरुष सम्बन्धी भोगों को काम कहते हैं। अथवा इच्छानुसार पाँचों इन्द्रियों को एक साथ तृप्त करने वाला होने से यह काम कहलाता है। इस काम के आप शत्रु हैं, घातक हैं अतः कामारि कहलाते हैं।

क्षेमकृत् = क्षेमं मंगलं च लब्धरक्षणं कृतवान् क्षेमकृत्। तथानेकार्थे - 'क्षेमस्तु मंगले लब्धरक्षणे मोक्षे च' = भगवान सब जीवों का कल्याण करते हैं तथा मंगल करते हैं। या जो अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय भगवान को प्राप्त हुआ है उसका भगवान रक्षण करते हैं। अतः वे क्षेमकृत् हैं, मोक्ष को भी क्षेम कहते हैं। उसे भी भगवान ने पा लिया है। इसलिए क्षेमकृत् हैं।

क्षेमशासनः= क्षेमं निरुपद्रवं शासनं शिक्षणमुपदेशो यस्य स क्षेमशासनः= भगवान का शासन, शिक्षण निरुपद्रव अर्थात् उपद्रव से रहित है, कल्याण करने वाला है इसलिए प्रभु क्षेम-शासन कहे जाते हैं।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

अर्थ : प्रणव, प्रणय, प्राण, प्राणद, प्रणतेश्वर, प्रमाण, प्रणिधि, दक्ष, दक्षिण, अध्वर्यु, अध्वर, ये ग्यारह नाम प्रभु के सार्थक हैं।

टीका - प्रणवः = प्रणूयते प्रस्तूयतेऽनेन प्रणवः, अथवा णुस्तुतौ नवनं नवः स्तुतिः प्रकृष्टो नवः स्तुतिर्यस्य स प्रणवः ॐकार इत्यर्थः। 'ॐकारः प्रणवः प्रोक्तः' इति हलायुध नाममालायां। 'णु' धातु स्तुति और नमस्कार अर्थ में आती है, 'प्र' उपसर्ग है उत्कृष्ट अर्थ में अतः उत्कृष्ट स्तुति और नमस्कार के योग्य होने से प्रभु प्रणव कहलाते हैं। अथवा उत्कृष्ट नमस्कार और स्तुति जिसकी है वह प्रणव कहलाता है।

प्रणव 'ओंकार' को भी कहते हैं, ओंकार स्वरूप वाणी के वक्ता होनेसे प्रभु 'प्रणव' कहलाते हैं।

प्रणयः = प्रणयतीति प्रणयः, तथानेकार्थे - 'प्रणयः प्रेमयाञ्चयोः विस्रंभे प्रसरे चापि'; स्नेहल इत्यर्थः = 'प्रणय' धातु स्नेह अर्थ में आता है वा अनेक अर्थ में भी जाता है- जैसे प्रणय, प्रमेय, अञ्च् (पूजा), विस्रंभ (आश्चर्य), प्रसार, स्नेहल आदि अर्थ में प्रणय धातु है। प्रभु सर्व पर स्नेह करते हैं, दया करते हैं, दुःखों से निकालते हैं अतः प्रणय कहलाते हैं।

प्राणः = प्राणिति प्रसरतीति प्राणः= जिनदेव भक्तों को प्राण रूप हैं, भक्तों के गुणों का प्रसार होने में कारण हैं। अथवा 'प्र' उत्कृष्ट 'आण' शब्द-दिव्यध्वनि जिनके है, वे प्राण कहलाते हैं।

प्राणदः = प्राणान् बलानि ददाति इति प्राणदः। तथानेकार्थे - प्राणोऽनिले बले हृद्वायौ पूरिते गंधरसे = प्रभु भक्तों को प्राण बल देते हैं अतः वे अनन्त शक्ति के हेतुरूप हैं। अथवा - प्राण का अर्थ है वायु बल पूरित, गंध रस आदि। अतः प्राण, योग, वायु, बल, परिपूर्णता आदि के दाता होने से 'प्राणद' कहे जाते हैं। अर्थात् भगवान का स्मरण करने से मानसिक - वाचनिक, कायिक शक्ति प्राप्त होती है।

प्रणतेश्वरः = प्रकर्षेणानतानां नम्रीभूतानामीश्वरः स्वामी प्रणतेश्वरः= उत्कृष्ट रूप से झुके रहते हैं जो चरणों में जिसके उन स्वामी को प्रणतेश्वर

कहते हैं। अथवा, प्रकृष्ट भक्तों के स्वामी होने से भगवान् प्रणतेश्वर कहलाते हैं।

प्रमाणं = प्रमीयतेऽनेन प्रमाणं = प्र. उत्कृष्ट, संशय, विपर्यय और विभ्रम रहित ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। अथवा 'प्र' उत्कृष्ट, 'मा' अंतरंग (अनन्त चतुष्टय), बहिरंग (समवसरण की विभूति) 'आण' दिव्यध्वनि जिनकी है वे प्रमाण कहलाते हैं; यह विभूति हरि, हर आदि में नहीं है, आपमें ही है अत: आप प्रमाण हैं।

प्रणिधि:= प्रकर्षेण गुप्तोनिधीयते योगिभिरिति प्रणिधि: चार इत्यर्थ:, 'अपसर्पचरश्चार:' प्रणिधिर्गूढपूरुष: यथार्थवर्णोमंत्रज्ञ: 'स्पर्शो हैरिक उच्यते' हलायुधनाममालायाम् = भगवान योगियों के लिए गुप्तचर रूप हैं। हलायुध नाममालामें 'प्रणिधि' का अर्थ गूढ़ पुरुष, यथार्थ वर्ण मंत्र का ज्ञाता, स्पर्श और हैरिक किया है। अत: सारे संसारियों की भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकालीन भुक्त, विचारित, गूढ़ सारी बातें जानते हैं अत: प्रणिधि हैं।

दक्ष: = दक्षवृद्धौ शीघ्रार्थे च दक्षते कौशलं गच्छतीति दक्ष:= जिनदेव कौशलरूप हैं, शीघ्ररूप, शीघ्रमुक्त होने वाले हैं।

दक्षिण: = दक्षिवृद्धौ-शीघ्रार्थे च दक्षते इति दक्षिण: 'साहृहृत्रविद्रुदक्षिभ्य: इन् ?' तथानेकार्थे 'दक्षिणस्तु परच्छंदानुवर्तिनि दक्षे पसव्ये सरले प्राचीनेऽपि' = दक्षि धातु वृद्धि अर्थ में और शीघ्र अर्थ में है, व्याकरण में 'दक्ष्' आदि धातु में 'इन्' प्रत्यय होता है अत: दक्षिण शब्द निष्पन्न हुआ है। 'दक्षिण' परच्छंदों का अनुवर्तन करने वाला है, चातुर्य में है, सरल, प्राचीन आदि में निहित है अत: भगवान चतुर, सरल, प्राचीन तथा शीघ्र पदार्थों को ग्रहण करने वाले होने से दक्षिण हैं।

अध्वयु: अध्वर्यु: = अध्वरं यातीति अध्वर्यु:। उक्तं च - यशस्तिलकमहाकाव्ये -

शोडशानामुदारात्मा य: प्रभुर्भावनर्त्विजाम्।
सोध्वर्युरिह बोद्धव्य: शिवशर्माध्वरोद्धुर:॥

भगवान जिनेश्वर सोलहकारण भावनारूपी यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों के स्वामी हैं, मोक्षसुखरूप यज्ञ के उद्धारक हैं अतः उनको अध्वर्यु कहना योग्य है।

अध्वरः = अध्वानं सत्पथं राति ददातीति अध्वरः, अथवा न ध्वरति न कुटिलः भवतीति अध्वरः।

'र' देने अर्थ में है, 'अध्व' मार्ग को कहते हैं, प्रभु अध्वान (सत्पथ) को देते हैं, बताते हैं इसलिए अध्वर हैं। अथवा 'ध्वर' का अर्थ कुटिल होता है अतः जो कुटिल नहीं है, जिसके मन, वचन और काय सरल हैं वह अध्वर कहलाता है।

आनन्दोनन्दनो नंदी वन्द्योऽनिंद्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥१२॥

अर्थ : आनंद, नन्दन, नंद, वन्द्य, अनिन्द्य, अभिनन्दन, कामहा, कामद, काम्य, कामधेनु, अरिंजय ये ग्यारह नाम प्रभु के हैं।

टीका-आनंदः =आ समन्तात् नंदतीति आनन्दः= जो चारों तरफ से आनन्द देते हैं वा आनन्द में मगन हैं अतः सार्थक आनन्द नाम के धारक हैं।

नन्दनः = 'टु नदि समृद्धौ' नद् अत नंदति कश्चिन्मव्य प्रधातोश्च हेतो इन्, न नंदयतीति नंदनः। 'नंदि वासि मदि दूषि साधि शोभि वृद्धिभ्यः इनंतेभ्यो संज्ञायां यु प्रत्ययः,' यु वु डा यु स्थाने अन् कारितस्यानामि कारितलोपः=

'टु नदि' धातु वृद्धि अर्थ में है, इस धातु के टु और 'इ' का लोप होता है तथा 'इ' का लोप जिसमें होता है उसमें 'न्' का आगमन होता है। अतः 'नन्दयति' बढ़ता है, फलता है, निरंतर स्वकीय सुखमें मग्न है अतः नन्दन कहलाते हैं। तथा नंदि, वासि, मदि, दूषि, साधि, शोभि, वृद्धि, इन धातुओं में 'इ' का लोप होने से 'न' आता है और कारित अर्थ में 'यु' प्रत्यय होकर नन्दयति मन्दयति आदि शब्दों की उत्पत्ति होती है अतः आनन्द देते हैं अतः नन्दन हैं।

नंदः = नं ज्ञानं ददातीति वा नंदः वर्धमानः इत्यर्थः= नं आत्मस्वरूप का ज्ञान प्रभु देते हैं अतः वे नंद हैं। अथवा वे ज्ञानादिगुणों से समृद्ध हुए हैं।

वन्द्यः = वदि अभिवादनस्तुत्योः वंदितो देवेन्द्रादिभिर्वंद्यः= जिनराज देवेन्द्रादिकों के द्वारा अभिनन्दन योग्य, स्तुति योग्य तथा वन्द्य हैं इसलिए वन्द्य कहे जाते हैं।

अनिन्द्यः = णिदि कुत्सायां निंदतीति निन्द्यः अष्टादशदोषरहितत्वादित्यर्थः क्षुधा, तृषादिक अठारह दोषों से रहित होने से जिनराज निन्दनीय नहीं हैं अर्थात् स्तुति योग्य हैं। अनिन्द्य हैं।

अभिनंदनः = अभि समन्तात् नंदयति निजरूपाद्यतिशयेन प्रजा-नामानंदमुत्पादयतीति अभिनंदनः, अथवा न विद्यते भयं तत्र तानि अभीनी, भयरहितानि [illegible] अभीनि निर्भयानि शांतप्रदेशानि अशोक सप्तपर्ण चंपक चूतानां वनानि समवसरणे यस्य स अभिनंदनः = जिनेश्वर अपने निर्विकार स्वरूप आदिक छियालीस गुणों से प्रजा को सर्व प्रकार से आनन्द उत्पन्न करते हैं अतः अभिनन्दन हैं। अथवा जिनेश्वर के समवसरण में निर्भय तथा शान्त प्रदेशों से युक्त सुन्दर सप्तपर्ण, अशोक, चम्पक तथा आम्र आदिक चार वन हैं। इसलिए वे अभिनन्दन हैं। अथवा भगवान का स्वर-वाणी निर्भयता को देने वाली है।

कामहा = कामं कंदर्पं हंतीति कामहा = जिनदेव ने काम - मदन का नाश किया है अतः वे कामहा हैं।

कामदः = कामं ददाति इति कामदः= इच्छित पदार्थ भक्तों को देते हैं। इसलिए प्रभु कामद हैं।

काम्यः = काम्ये मनोभीष्टवस्तुनि साधुः कुशलो दक्षः काम्यः = मन जिसको चाहता है ऐसे पदार्थ देने में जो तत्पर हैं, साधु हैं, कुशल हैं, दक्ष हैं अतः काम्य कहलाते हैं।

कामधेनुः = कामस्य वाञ्छितस्य धेनुरिव धेनुर्नवप्रसूता गौः कामधेनुः। भाक्तिकानां नित्यमेव मनोरथपूरका इत्यर्थः। कामो वांछा तत्र वांछितप्रदा फलदा वा धेनुः कामधेनुः= इच्छित वस्तु को देने वाली नवप्रसूता गाय को काम-धेनु कहते हैं। प्रभु भक्तों के निरंतर मनोरथ पूर्ण करते हैं **अतः** कामधेनु हैं। 'काम'

का अर्थ वाञ्छा है और वाञ्छित वस्तु को देने वाली धेनु कामधेनु कहलाती है।

अरिंजय: = अष्टाविंशतिभेदभिन्नमोहमहाशत्रून् जयति निर्मूलकाषं कषतीति अरिंजय:। नाम्नि तृ भृ वृजि धारिता-पादमि सहा संज्ञायां =

इति श्रीमदमरकीर्त्तिविरचितायां जिनसहस्रनामटीकायां षष्ठोऽध्याय: ॥६॥

दर्शनमोह कर्म मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व, आदि तीन प्रकार का है तथा चारित्रमोह अनन्तानुबन्धि अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद आदि भेदों से पच्चीस प्रकार का है। ऐसे अट्ठाईस भेदों से युक्त मोहकर्म रूप अरि-शत्रु को प्रभु ने जीता है, समूल नष्ट किया है। इसलिए वे अरिञ्जय हैं।

इस प्रकार श्रीमदमरकीर्त्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका में छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥६॥

卐 सप्तमोऽध्याय: 卐

(असंस्कृत्सुसंस्कारादिशतम्)

असंस्कृतसुसंस्कारोऽप्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगु: कान्तश्चिंतामणिरभीष्टद: ॥१॥

अर्थ : असंस्कृत सुसंस्कार, अप्राकृत, वैकृतांतकृत्, अंतकृत्, कान्तगु, कान्त, चिन्तामणि, अभीष्टद ये आठ नाम जिनदेव के हैं।

टीका : असंस्कृतसुसंस्कार:= असंस्कृत: अकृत्रिम: सुसंस्कार: प्रतियत्न: रक्षणे यस्येति स असंस्कृतसुसंस्कार:। तथानेकार्थे- 'संस्कार: प्रतियत्नेऽनुभवे मानसकर्मणि गुणभेदे'। अथवा असंस्कृतसुसंस्कार : सातिशयलाभो यस्य स असंस्कृतसुसंस्कार: अकृत्रिम सुसंस्कार से प्रभु अर्हन् युक्त हैं अर्थात् प्रभु के जो शान्त्यादिक गुण हैं, वे किसी ने उत्पन्न नहीं किये हैं। प्रभु स्वाभाविक

गुण सहित ही उत्पन्न हुए हैं। अथवा सातिशय लाभ से जिनदेव युक्त हैं। ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति प्रभु को इतरजनों की अपेक्षा से विशिष्ट है। वे जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक हैं। जन्म से ही उनका रक्त श्वेतवर्ण - दूध के समान शुभ्र होता है। शरीर स्वभाव से ही [illegible] होता है। शारीरिक, वाचनिक, तथा मानसिक गुण यत्न के बिना असामान्य उत्कृष्ट होते हैं अत: वे असंस्कृत-सुसंस्कार हैं।

अप्राकृत: = असंस्कृतत्वात् प्रकृतेर्भाव: प्राकृत: न प्राकृत: अप्राकृत: किलाष्टमे वर्षे मूलगुणान् गृह्णाति भगवानित्यर्थ:, तथा हलायुध-नाममालायां, इतर प्राकृत पामर पृथक् जना बर्बराश्च तुल्यार्था: = जिस पर संस्कार नहीं हुए ऐसा पदार्थ प्राकृत कहा जाता है और भगवान के ऊपर जन्म से आठवें वर्ष में स्वयं मूलगुण के संस्कार होते हैं, अर्थात् मद्य, मांस, मधु त्यागपूर्वक मूलगुणों को, पंचाणुव्रतों को बिना गुरु के धारण करते हैं। इसलिए वे अप्राकृत हैं। अथवा वे पृथग्जन दुष्ट, पामर, बर्बर, अनार्य, सरीखे नहीं हैं। वे महान् पुरुष हैं। अत: वे अप्राकृत हैं।

वैकृतांतकृत् = विकृतो भावो वैकृत: वैकृतस्य विकारस्य रोगस्य अन्तं विनाशं करोतीति वैकृतांतकृत् विकारनाशकारीत्यर्थ:। तथानेकार्थे - विकृतो रोग: असंस्कृत: बीभत्सश्च = विकृति - रोगादिक उनका जो सद्भाव वह वैकृत कहा जाता है। भगवान में ऐसा वैकृत भाव नहीं है। रोगादिक दोष नहीं हैं। वैकृतभाव का उन्होंने अन्त कर दिया है। इसलिए वे वैकृतान्तकृत् हैं।

अंतकृत् = अन्तं संसारस्यावसानं कृतवान् अंतकृत्, अंतं विनाशं मरणं कृंततीति अन्तकृत्, अथवा अन्तं मोक्षस्य सामीप्यं करोतीति अंतकृत्, अथवा व्यवहारं परित्यज्य अंतं निश्चयं करोतीति अंतकृत् अथवा अन्तं मुक्ते: सन्निधीभूतमात्मानं करोतीति मुक्तिस्थानस्यैकपार्श्वे तिष्ठतीति अन्तकृत्, उक्तं च -

निश्चयेऽवयवे प्रान्ते विनाशे निकटे तथा।
स्वरूपे षट्सु चार्थेषु अन्तशब्दोऽत्र भण्यते ॥

भगवान ने संसार का अन्त नाश किया है। भगवान ने अन्त की मरण की (कृन्तति =) सन्तति तोड़ दी है अत: वे **अन्तकृत** हैं। अथवा अन्त = मोक्ष के सामीप्य को, निकटपने को भगवान ने कृत याने प्रकट किया है। या व्यवहार को छोड़कर अन्त को, निश्चय को धारण किया है। अथवा भगवान ने अपने को मुक्ति के स्थानरूप बनाया है। या मुक्ति के एक पार्श्व में, एक भाग में भगवान रहते हैं। अत: वे अन्तकृत् हैं।

कान्तगु: = कान्ता मनोज्ञा गोर्वाणी यस्य स कान्तगु: ''गोरप्रधानस्यांतस्यास्त्रियामादादीनां चेति ह्रस्व: संध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे'' कान्ता, मनोज्ञ, मन को हरने वाली, भानेवाली, मन:प्रिय वाणी है जिनकी या ऐसी वाणी बोलते हैं जो, अत: वे कान्तगु हैं।

'गौ' शब्द 'गोरप्रधानादि' सूत्र से ह्रस्व हो जाता है। अत: कान्तगु: बनता है।

कान्त: = कमनं कान्त: शोभावानित्यर्थ:= कमनीय, कान्त, सुन्दर शोभावान हैं जो वे कान्त हैं।

चिंतामणि: = चिन्तायां स्मृत्यां, चिंताया: स्मरणस्य व: फलप्रदो मणिरिव मणिश्चिंतामणिश्चिंतितपदार्थप्रद: इत्यर्थ: । अथवा चिंता स्मृतिर्ध्यानं वा तत्र फलप्रदो मणि: चिंतामणि:। चिन्ता करने पर अथवा जिनका स्मरण करने मात्र से फल मिलते हैं, ऐसे मणि के समान प्रभु हैं। या चिन्ता-स्मरण करने पर वा ध्यान करनेपर प्रभु इच्छित फल देते हैं। इसलिए भगवान भक्तों के लिए चिन्तामणि हैं।

अभीष्टद: = अभीष्टं मनोभिलषितं ददातीति अभीष्टद:= भक्तों के मन में जिस पदार्थ की इच्छा है उसको देने वाले प्रभु हैं अत: वे अभीष्टद हैं।

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासन:।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तक: ॥२॥

अर्थ : अजित, जितकामारि, अमित, अमितशासन, जितक्रोध, जितामित्र, जितक्लेश, जितान्तक ये आठ नाम जिनेन्द्र के हैं।

टीका - अजित: = न केनापि कामक्रोधादिना शत्रुणा जित: अजित: = जो काम-क्रोधादि शत्रुओं के द्वारा नहीं जीते गये हैं अत: वे अजित कहे जाते हैं।

जितकामारि: = जित: परिपातित: कामारि: कंदर्पशत्रु: येनासौ जितकामारि:- **अर्थ -** जीत लिया है, नष्ट कर दिया है काम रूपी शत्रु को जिन्होंने वे 'जितकामारि' कहलाते हैं। भगवान् ने काम मन्मथ को पराजित कर दिया है अत: वे भगवान् कामारि हैं।

अमित: = मा, माने माङ् माने शब्दे च मेङ् प्रतिदाने मे संध्य.। मा मीयते स्म मित: कृ प्र यतिस्यति मां स्थां त्य गुणो, न मित: अमित: अमित:, अगणित: इत्यर्थ:- 'मा या माङ्' मान (माप) शब्द प्रतिदान आदि अनेक अर्थों में है। जो वचनों के द्वारा, तुला आदि के द्वारा मापा जाता है वह मित कहलाता है। जो किसी के द्वारा मापे नहीं जाते हैं, छद्मस्थों के द्वारा जाने नहीं जाते हैं, गिने नहीं जाते हैं अत: अमित, अगणित कहलाते हैं। प्रभु के गुण भी वचनों के द्वारा कहे नहीं जाते, गिने नहीं जाते अत: भगवान अगणित, अमित कहलाते हैं।

अमितशासन: = अमितं अगणितं शासनं मतं यस्येति अमितशासन:= प्रभु के मत का विवेचन करने में गणधरों की वाणी भी थकती है अत: वे अमितशासन कहे जाते हैं।

जितक्रोध: = जित: पराजित: क्रोध: कोपो येनेति जितक्रोध:= क्रोध को पराजित करके क्रोधजित हैं जो।

जितामित्र: = जितं अमित्रं शत्रुर्येनेति जितामित्र: सर्वप्रिय: इत्यर्थ:= जीत लिया है शत्रु को जिन्होंने, वे सर्वप्रिय बन गये और जितामित्र कहलाये।

जितक्लेश: = जित: क्लेश: उत्तापो येनेति जितक्लेश:, जिसने क्लेश को जीत लिया है वह जितक्लेश है।

जितान्तक: = जित: अन्तको यमो येनेति जितान्तक:= अन्तक याने यम और यम को जीतने से प्रभु जितान्तक हैं।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

अर्थ : जिनेन्द्र, परमानन्द, मुनीन्द्र, दुन्दुभिस्वन, महेन्द्रवन्द्य, योगीन्द्र, यतीन्द्र और नाभिनन्दन ये आठ नाम प्रभु के हैं।

जिनेन्द्रः = कर्मारातीन् जितवन्तः जिनास्तेषामिन्द्रः स जिनेन्द्रः= जिन्होंने कर्मशत्रुओं को जीता है, पराजित किया है ऐसे गणधरादिकों के प्रभु स्वामी जिनेन्द्र हैं।

परमानन्दः = परम उत्कृष्ट आनंदः सौख्यं यस्येति परमानन्दः = उत्कृष्ट, आनन्द सौख्य स्वरूप को धारण करने से वे परमानन्द हैं।

मुनीन्द्रः = मुनीनां प्रत्यक्षज्ञानिनामिन्द्रः स मुनीन्द्रः = मुनियों के, अवधि, मन:पर्यय तथा केवलज्ञान धारण करने वाले गणधरादिकों के, प्रत्यक्ष ज्ञानधारियों के भगवान इन्द्र हैं, स्वामी हैं। अतः वे मुनीन्द्र हैं।

दुन्दुभिस्वनः = दुन्दुभिर्जयपटहस्तद्वत्स्वनः शब्दो यस्य स दुन्दुभिस्वनः= जय नगारे को दुन्दुभि कहते हैं। उसके समान गंभीरध्वनि प्रभु के मुख से निकली। अतः वे दुन्दुभिस्वन हैं।

महेन्द्रवन्द्यः = महेन्द्रैर्देवेन्द्रैर्वंद्यः स्तुतः महेन्द्रवंद्यः= महेन्द्रों से देवेन्द्रों से प्रभु स्तुत हुए हैं। अतः वे महेन्द्रवन्द्य हैं।

योगीन्द्रः = योगिनां ध्यानिनामिन्द्रः स्वामी स योगीन्द्र := वे योगियों के, ध्यान करने वाले मुनियों के इन्द्र हैं, नाथ हैं अतः योगीन्द्र हैं।

यतीन्द्रः = यतीनां निष्कषायाणामिन्द्रः प्रधानः यतीन्द्रः= कषाय रहित मुनियों के स्वामी होने से यतीन्द्र हैं।

नाभिनन्दनः = नाभेर्नंदनः सूनुर्नाभिनन्दनः= नाभिराज के सूनु याने पुत्र हैं। अतः वे नाभिनन्दन हैं।

नाभेयो नाभिजो जातसुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोधि गुरुः सुगीः ॥४॥

अर्थ : नाभेय, नाभिज, जातसुव्रत, मनु, उत्तम, अभेद्य, अनत्यय, अनाश्वान्, अधिक, अधिगुरु, सुगी। ये प्रभु के ग्यारह नाम सार्थक हैं -

टीका : नाभेय: = नाभेरपत्यं पुमान् नाभेय: 'ईयस्तु हिते' = चौदहवें मनु नाभिराज के आप पुत्र हैं अत: नाभि के पुत्र नाभेय कहे जाते हैं। इसमें पुत्रअर्थ 'ईयण्' प्रत्यय होकर नाभेय शब्द से निष्पन्न हुआ है।

नाभिज: = नाभेर्नाभिकुलकरात् जात: नाभिज:, सप्तमीपंचमीतो जनेर्ड:, अन्यत्रापि च = नाभिराजा जो १४ वें कुलकर थे, उनसे उत्पन्न होने से भगवान नाभिज कहलाते हैं। 'जनी' धातु उत्पत्ति अर्थ में है उसमें पंचमी और सप्तमी दो विभक्ति होती है अत: नाभि राजा से उत्पन्न हुए नाभि नामक कुलकर से उत्पन्न होने से नाभिज कहलाते हैं।

जातसुव्रत: = शोभनानि व्रतानि अहिंसासत्याचौर्यब्रह्माकिंचनादीनि रात्रिभोजनपरिहारषष्ठाणुव्रतानि जातानि सुव्रतानि यस्येति जातसुव्रत: = शोभित हैं जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, तथा आकिञ्चन रूप पाँच व्रतों से एवं रात्रिभोजनत्याग रूप षष्ठ अणुव्रत ये छह व्रत जिनके जात याने उत्पन्न हुए हैं ऐसे प्रभु जातसुव्रत हैं।

मनु: = मन्यते जानाति तत्त्वमिति मनु: परि असिवसिहनिमनिश्रादि इंदिकंदिवंधि वह्याणिष्यश्च उत्प्रत्यय:= जो तत्त्वों को जानता है, मानता है वह मनु कहलाता है। परि, असि, वसि, हनि, मनि, श्री आदि धातुओं के 'इ' वर्ण का लोप हो जाता है तथा शब्द का प्रयोग करने पर 'उ' प्रत्यय लगाने से 'मनु' बनता है अत: जो वस्तुस्वरूप को जानता है वह मनु कहलाता है।

उत्तम: = उत् उत्कृष्ट: उत्तम:। 'उद: प्रकृष्टे तमप् - प्रभु सबसे उत्कृष्ट श्रेष्ठ हैं, 'उत्' धातु उत्कृष्ट अर्थ में है उसमें 'तम' प्रत्यय लगाने से उत्तम शब्द निष्पन्न होता है। अत: सर्व में उत्तम होने से उत्तम हैं।

अभेद्य: = न भेत्तुं शक्य: अभेद्य:= जिन्हें उपसर्गादि के द्वारा भी कोई डिगा नहीं सकता, डिगाने में समर्थ नहीं है, ऐसे प्रभु अभेद्य कहे जाते हैं।

अनत्यय: = अत्ययनं अत्ययो न अत्ययो विनाशो यस्येति अनत्यय:

नाशरहित इत्यर्थ:। तथानेकार्थे - अत्ययातिक्रमे दोषे विनाशे दंडकृच्छ्रयो:=

'अत्यय' धातु विनाश, अतिक्रम, दोष, दण्ड, कृष्ट आदि अनेक अर्थों में आता है। अत: जिसका विनाश नहीं है, अपनी मुक्त पर्याय को छोड़कर दूसरी पर्याय में गमन नहीं है, जिसमें हिंसादि दोष नहीं हैं, कोई कष्ट नहीं है दण्ड नहीं है अत: प्रभु अनत्यय कहलाते हैं।

अनाश्वान् = अश् भोजने अश् नञ् पूर्व: आश: आशीन् अशनाद् वा इणो नञ् पूर्वाच्चाश्नाते:। अतीतमात्रे क्वसु चणपरो: असि द्वि. अभ्या. अस्योद: सर्वत्र अभ्यास आकारस्य दीर्घत्वं, दीर्घात्परस्य लोपो, न आश्वान् न भुक्तिं कृतवान् अनाश्वान् स्वरेक्षरविपर्यय: सि पूर्ववत् उक्तं च निरुक्तिशास्त्रे-

योऽक्षस्तेनेष्व विश्वस्त: शाश्वते पथि निष्ठित:
समस्तसत्त्वविश्वास्य: सोऽनाश्वानिह गीयते॥३१॥

अर्थ : अश् धातु भोजन अर्थ में है। अश् 'नञ्' प्रत्यय करके पूर्व में भोजन किया है उस अतीतकाल में 'क्व' और 'चण्' प्रत्यय करके असि, धातु का अभ्यास अकार को दीर्घ कर के भोजन करना .आश्वान् और न करना 'अनश्वान्' है सो ही कहा है- जो अक्ष (आत्मा) उसने विश्वस्त, शाश्वत पथ में निष्ठा रखी है, सारे प्राणियों के विश्वास करने योग्य है, जिसने भुक्ति का त्याग किया है वह इस ग्रन्थ में अनाश्वान् कहलाता है।

अधिक: = अधि: अधिक: क: आत्मा यस्य स: अधिक: उत्कृष्टात्मेत्यर्थ:= प्रभु सब आत्माओं में अधिक यानी श्रेष्ठ आत्मा हैं।

अधिगुरु: = अधिरधिको गुरु: स अधिगुरु, सब गणधरादि गुरुओं में भगवान ही सबके गुरु हैं अत: अधिगुरु कहे जाते हैं।

सुगी: = सुष्ठु: शोभना गीर्यस्य स सुगी:- सुष्ठु अतिशय शोभायुक्त निर्दोष वाणी के धारक होने से प्रभु सुगी कहलाते हैं।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुक:।
विशिष्ट: शिष्टभुक् शिष्ट: प्रत्यय: कामनोऽनघ:॥५॥

अर्थ : सुमेधा, विक्रमी, स्वामी, दुराधर्ष, निरुत्सुक, विशिष्ट, शिष्टभुक्, शिष्ट, प्रत्यय, अनघ:, ये दस नाम प्रभु के हैं।

टीका : सुमेधा - 'मिधृसंगमे च' मेधति मेधते संगच्छते मेध: सर्वधातुभ्यो सन् सुष्ठु: शोभनं मेध: क्रतुर्यस्येति सुमेधा:। मेधा क्रतुरित्यनेकार्थे = अर्थ 'मिधृ' धातु संगमन (गमन और ज्ञान अर्थ में है) सुष्ठु शोभन है मेधा जिसकी वे सुमेधा हैं।

विक्रमी : = विक्रामत्यनेन विक्रम: विक्रमस्तेजोऽस्यास्तीति विक्रमी। तथा हलायुधे -

> **प्राणस्थामबलद्युम्नमोज: सूक्ष्मस्तर: सह:।**
> **प्रताप: पौरुषं तेजो विक्रमस्यात्पराक्रम:॥**

विक्रम, तेज जिनको प्राप्त हुआ है ऐसे प्रभु विक्रमी हैं।

हलायुधकोश में लिखा है कि प्राण स्था, बल, द्युम्न, ओज, सूक्ष्मस्तर, प्रताप, पौरुष, तेज, विक्रम, पराक्रम ये सर्व एकार्थवाची हैं अत: बल, तेज, पराक्रम प्रताप के धारी होने से आप विक्रमी हो।

स्वामी: = अमु गतौ सुपूर्व: शोभनममति स्वामी 'सावमेरिन् दीर्घश्च' अथवा स्व: आत्मा विद्यते यस्य स स्वामी स्वस्येति सुरात्वं च ?= सु उत्तम अमी गति मुक्तिदशा जिनकी है ऐसे भगवान स्वामी कहे जाते हैं। अथवा स्व- आत्मा विद्यते यस्य स स्वामी, जिनकी आत्मा है ऐसे प्रभु स्वामी हैं अर्थात् आत्मा सर्वज्ञ है, ऐसे प्रभु स्वात्मा हैं।

दुराधर्ष: = दु:खेन महता कष्टेनापि आ समंतात् धर्षितुं स्फेटितुमशक्यो दुराधर्ष:। 'ईषद् दु:ख सुख कृच्छ्रात्कृच्छ्रार्थेषु खलप्रत्यय:'। बड़े कष्ट से, बड़े भारी प्रयत्न से भी जिनका अपमानादिक करना, नाश करना, धर्षण करना अशक्य है अत: आप दुराधर्ष हैं।

निरुत्सुक:= उत्सुनोति उत्सुक: उदो वा केनापित: निर्गत: उत्सुक: उत्तालकत्वं यस्येति स निरुत्सुक: स्थिरप्रकृतिरित्यर्थ:। 'प्रतूर्णस्त्वरितस्तूर्ण:

उत्सुकः प्रसृतः स्मृतः' = प्रभु में उतावलापन नहीं है। स्थिर प्रकृति है। वा उत्सुकता उतावलापन नष्ट हो गया है।

शीघ्रता को तूर्ण कहते हैं। आप शीघ्रता से रहित हैं।

विशिष्टः = विशिष्यते इति विशिष्ट उत्तम इत्यर्थः= प्रभु गणधरादिकों से भी विशिष्ट हैं, उत्तम हैं अतः उनको विशिष्ट कहते हैं।

शिष्टभुक् = भुजपालनाभ्यवहारयोः शिष्टान् साधुलोकान् भुनक्ति पालयतीति शिष्टभुक्। शिष्टपालक इत्यर्थः, शिष्टभुत् इत्यपिपाठः तत्र बुध् अवगमने, शिष्टान् बुध्यते जानातीति शिष्टभुत् क्विप् वेलेपि. प्र. सि. सत्य-विज्ञानः। शिष्ट, साधु लोगों का भगवान् पालन करते हैं। अतः वे शिष्टभुक् हैं, शिष्टपालक हैं। शिष्टभुत् ऐसा भी पाठ है। उसका अर्थ शिष्टान् बुध्यते जानातीति शिष्टभुत्, शिष्ट साधु लोगों को भगवान जानते हैं, ऐसा अर्थ शिष्टभुत् शब्द का है।

शिष्टः = शिष्ट विशेषणे शिष्यते इति शिष्टः सदाचार इत्यर्थः= प्रभु सदाचार से युक्त हैं अतः वे शिष्ट कहे जाते हैं।

प्रत्ययः = प्रतीयते येनार्थः स प्रत्ययः= जिनसे अर्थात् प्रभु से आत्मज्ञान भक्तों को प्राप्त होता है। अतः वे प्रत्यय हैं। जिससे अर्थ का प्रत्यय (ज्ञान) होता है उसको प्रत्यय कहते हैं।

कामनः = कामयते तच्छीलः कामनः कमनीय इत्यर्थः= प्रभु अत्यन्त कमनीय सुन्दर थे, उनका शील भी सुन्दर था। इसलिए कामन हैं।

अनघः = अविद्यमानमघं पापचतुष्टयं यस्येति अनघः= प्रभु पाप चतुष्टय से, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय इन चार पापप्रकृतियों से रहित होने से यथार्थ अनघ नाम धारक हैं।

क्षेमी क्षेमंकरोक्षय्यः क्षेमधर्म्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥

अर्थ : क्षेमी, क्षेमंकर, अक्षय्य, क्षेमधर्मपति, क्षमी, अग्राह्य, ज्ञाननिग्राह्य, ध्यानगम्य, निरुत्तर ये नौ नाम प्रभु के हैं।

टीका - क्षेमी = क्षेमो मोक्षोऽस्यास्तीति क्षेमी = क्षेम याने मोक्ष वह प्रभु को प्राप्त हो गया है अतः वे क्षेमी हैं।

क्षेमंकरः = क्षेमं करोतीति क्षेमंकरः, 'क्षेम प्रिय महेन्द्रेष्वणवः ख प्रत्ययः ह्रस्वारुषोर्मोन्तः' = भक्तों का कल्याण करने वाले प्रभु क्षेमंकर हैं।

अक्षय्यः = न क्षयितुं शक्यः अक्षय्यः= जिनका कोई भी क्षय नहीं कर सकता ऐसे प्रभु अक्षय्य हैं।

क्षेमधर्मपतिः = क्षेमधर्म्मः तस्य पतिः स्वामी क्षेमधर्मपतिः = जिससे जगत् का कल्याण होता है ऐसे निर्मल धर्म के प्रभु स्वामी पति हैं अतः उन्हें क्षेमधर्म के पति कहना योग्य ही है।

क्षमीः = क्षमोऽस्यास्तीति **क्षमी समर्थ इत्यर्थः** तथानेकार्थे - 'क्षमः शक्ते हिते युक्ते क्षमावति' = प्रभु सामर्थ्ययुक्त होने से क्षमी हैं अथवा क्षमायुक्त होने से क्षमी हैं।

अग्राह्यः = ग्राह्यते स्म ग्राह्यः परदाररलम्पटैः। कुल जाति विज्ञान गर्वविरुद्धैर्मद्यमांसमध्वास्वादकैर्न ग्राह्यः स अग्राह्यः, नोपादेयो न गम्य इत्यर्थः= जो परस्त्रीलम्पट हैं, कुल, जाति, ज्ञान आदि का गर्व धारण करते हैं, मद्य, मांस, मधु का आस्वादन करते हैं ऐसे लोगों को जो ग्राह्य नहीं हैं ऐसे जिनदेव का नाम अग्राह्य है।

ज्ञाननिग्राह्यः = ज्ञानेन केवलज्ञानेन निश्चयेन ग्राह्यः उपादेयः गम्यः सः ज्ञाननिग्राह्यः ज्ञानगम्य इत्यर्थः= जिनदेव केवलज्ञान से निश्चयपूर्वक ग्रहण करने योग्य हैं, जानने योग्य हैं। जिनदेव का स्वरूप जब हम केवलज्ञानी होंगे तब हमसे यथार्थ जाना जायेगा।

ध्यानगम्यः = उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमंतर्मुहूर्तादिति वचनात्, ध्यानेन ध्यानं चिंतानिरोधस्तेन गम्यः प्राप्यः सः ध्यानगम्यः=

अन्तर्मुहूर्त तक उत्तम संहनन वाले का एक अग्र (मुख्य आत्मा) में चित्त (मन) मन का निरोध होता है। मन एक आत्मतत्त्व में लीन होता है उसको ध्यान कहते हैं, उस ध्यान के द्वारा गम्य होने से आप ध्यानगम्य हैं।

निरुत्तरः = निरतिशयेन उत्कृष्टः निरुत्तरः 'प्रकृष्टे तरतमौ' अथवा निरुत्तरति संसारसमुद्रात् इति निरुत्तरः - प्रभु अतिशय उत्कृष्ट स्वरूप के धारक हैं। या संसार-समुद्र से भगवान पूर्णतया उत्तीर्ण हो गये हैं इसलिए वे निरुत्तर हैं। तर तम प्रत्यय उत्कृष्ट अर्थ में होते हैं।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥

अर्थ : सुकृती, धातु, इज्यार्ह, सुनय, चतुरानन, श्रीनिवास, चतुर्वक्त्र, चतुरास्य, चतुर्मुख, ये नौ नाम जिनदेव के हैं।

टीका : सुकृती = शोभनं कृतं फलं यस्मात् सुकृतं, पुण्यमुच्यते सुकृतं पुण्यमस्यास्तीति सुकृती= जिससे शोभन-सुखदायक कृत-फल मिलता है उसे सुकृत कहते हैं, पुण्य को भी सुकृत कहते हैं, भगवान ने वह पुण्य प्राप्त किया है। अतः वे सुकृती हैं।

धातुः = डुधाञ् डुभृत् धारणपूरणयोः, दधाति धत्ते वा क्रियालक्षणमर्थ-मिति धातुः, 'सितनिगमिमसिसच्यवधाञ्कृशिभ्यः स्तन्' शब्दयोनिरित्यर्थः= भगवान जिनराज धातुस्वरूप हैं। धातु क्रिया से शब्द उत्पन्न होते हैं वैसे जिनेश्वर से संपूर्ण द्वादशाङ्ग श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ है। 'डुधाञ्' धातु धारण और पूरण अर्थ में होता है अतः जो क्रिया अर्थलक्षण को धारण करती है वह धातु कहलाती है। 'सितनिग' आदि सूत्रसे स्तन् प्रत्यय करके जो शब्द की उत्पत्ति का स्थान होता है, उसे धातु कहते हैं, आप सारे शब्दों की उत्पत्ति के स्थान हो अतः आप धातु हो।

इज्यार्हः = इज्यायाः पूजायाः अर्हः योग्यः इज्यार्हः = जिनदेव पूजने योग्य हैं। हम जिन की प्रतिदिन त्रिकाल में पूजा कर पुण्य संचय करते हैं। अतः इज्यार्ह हैं।

सुनयः = ये स्याच्छब्दोपलक्षितास्ते सुनयाः यथा स्यान्नित्यः स्यादनित्यः, स्यान्नित्यानित्यः, स्यादवाच्यः, स्यान्नित्यश्चावक्तव्यः, स्यान्नित्यानित्यश्चावक्तव्यः स्यादनित्यश्चावक्तव्यः इति सप्तनयाः। अनेकान्ताश्रिताः सुनयाः ते यस्य स

सुनय:= कथंचित् स्याद् शब्द से उपलक्षित नित्यादि धर्म का प्रतिपादन करने वाले नय को सुनय कहते हैं। अर्थात् अनेकान्ताश्रित सुनय कहलाता है। और वे जिनके होते हैं वे प्रभु सुनय कहलाते हैं। ये सुनय के सात प्रकार हैं- स्यान्नित्य, स्यादनित्य, स्यान्नित्यानित्य, स्यादवाच्य, स्यान्नित्यअवाच्य, स्यादनित्य-अवाच्य, स्यान्नित्यानित्यश्चावक्तव्य:।

चतुरानन: = चत्वारि आननानि यस्येति चतुरानन: = चारमुख भगवान के होते हैं अत: उनको चतुरानन कहते हैं।

श्रीनिवास: = श्रीणां शोभानां निवासस्थानं श्रीनिवास:= भगवान सर्व शोभाओं का निवासस्थान होने से श्रीनिवास हैं।

चतुर्वक्त्र: = चत्वारि वक्त्राणि यस्येति चतुर्वक्त्र:= चार वक्त्र-मुख जिनके हैं वे जिनराज चतुर्वक्त्र कहे गये हैं।

चतुरास्य: = चत्वारि आस्यानि यस्येति स चतुरास्य:= चार आस्य याने मुख जिनके हैं।

चतुर्मुख: = चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुख:, घातिसंघातने सति भगवतस्तादृशं परमौदारिक-शरीर - नैर्मल्यं भवति यथा दिव्यं प्रतिदिशं मुखं दृश्यते अयमतिशय: स्वामिनो भवति = चारमुख जिनके हैं उन प्रभु को चतुर्मुख कहते हैं। घातिकर्मों का नाश होने पर भगवंत के परमौदारिक शरीर में अतिशय निर्मलता उत्पन्न होती है जिससे प्रत्येक दिशा में भगवान का मुख सम्मुख दिखता है, ऐसा अतिशय भगवंत का होता है। अत: भगवान चतुर्मुख कहे जाते हैं। अथवा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग ऐसे अर्थ रूप चार अनुयोग भगवान के मुख में हैं। अत: उनको चतुर्मुख कहते हैं। अथवा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष लक्षण रूप चार पदार्थ जिनके मुख में हैं। या प्रत्यक्ष, परोक्ष, आगम, अनुमान, ये चार प्रमाण जिनके मुख में हैं वे चतुर्मुख हैं या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये चार मुख-कर्मक्षय करने के द्वार जिनके हैं, वे भगवान् चतुर्मुख हैं।

सत्यात्मा सत्यविज्ञान: सत्यवाक् सत्यशासन:।
सत्याशी: सत्यसन्धान: सत्य: सत्यपरायण: ॥८॥

अर्थ : सत्यात्मा, सत्यविज्ञान, सत्यवाक्, सत्यशासन, सत्याशी, सत्यसन्धान, सत्य, सत्यपरायण, ये आठ नाम प्रभु के हैं।

टीका : सत्यात्मा = सत्सु भव्यजीवेषु योग्यः सत्यः वा सत्सु नियोज्यः सत्यः सद्भ्यो हितो वा सत्यः, सत्यः सफल आत्मा यस्येति सत्यात्मा = सज्जन ऐसे भव्य जीवों में जो योग्य उसे सत्य कहते हैं। अथवा सज्जनों में जो नियोजन करने में योग्य अथवा सज्जनों का हित करने वाला उसे सत्य कहते हैं। सत्य से सफल है आत्मा जिनका ऐसे भगवान सत्यात्मा हैं।

सत्यविज्ञानः = सत्यं सफलं विज्ञानं यस्य स सत्यविज्ञानः = जिनका विज्ञान सत्य सफल है ऐसे जिनेश्वर सत्यविज्ञान कहे जाते हैं।

सत्यवाक् = सत्या सफला वाक् यस्य स सत्यवाक् = जिनकी वाणी सत्य है सफल है ऐसे जिनेश्वर सत्यवाक् कहे जाते हैं।

सत्यशासनः = सत्यं सफलं शासनं मतं यस्येति स सत्यशासनः = जिनका शासन अर्थात् मत सत्य है। उन जिनदेव को सत्यशासन कहते हैं।

सत्याशीः = सत्या सफला आशी अक्षयं दानमस्तु इत्यादिरूपा आशीराशीर्वादो यस्य स सत्याशीः ये केचिन्मुनयस्तेषामाशीर्दातुर्लाभान्तराय-वशात् कदाचित् न फलति जन्मान्तरे तु फलत्येव भगवतस्त्वाशीरिहलोके परलोके च फलत्येव तेन भगवान् सत्याशीः उच्यते = सत्य-सफल, आशीर्वाद जिनका वे प्रभु सत्याशी हैं। हे भव्य ! तेरा दान अक्षय होवे, ऐसा तीर्थंकर का दाता को दिया हुआ आशीर्वाद सफल होता है अतः जिनदेव सत्याशी हैं। कई मुनियों का आशीर्वाद दाता में लाभान्तराय कर्म का उदय होने से इस भव में कदाचित् सफल नहीं होता, परन्तु परभव में,उनका आशीर्वाद सफल हो जाता है। परन्तु जिनदेव का आशीर्वाद तो इहलोक में भी तथा परलोक में भी दोनों में सफल होता है। इसलिए भगवान सत्याशी हैं।

सत्यसन्धानः = सत्यप्रतिज्ञ इत्यर्थः = भगवान जिनेश्वर की प्रतिज्ञा कभी असत्य नहीं होती है।

सत्यः = सति साधुः सत्यः = जिनदेव सज्जनों के लिए सत्य ही रहते हैं, सफल ही रहते हैं।

सत्यपरायण: = सत्यस्य परायण: विवरणं सत्यपरायण: = जिनदेव सत्य का विवरण करने में तत्पर रहते हैं।

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शन: ।
अणुरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

अर्थ : स्थेयान्, स्थवीयान्, नेदीयान्, दवीयान्, दूरदर्शन, अणु, अणीयान्, अनणु, गुरुराद्योगरीयसाम् = ये नौ नाम प्रभु के है।

स्थेयान् = अतिशयेन स्थिर: स्थेयान् 'गुणादिष्टेयन्सौ वा' इति सूत्रेण ईयन्स् प्रत्यय: तद्वदिष्टेमेयस्सु बहुलं इत्यनेन सूत्रेण स्थिरशब्दस्य स्थ आदेश: 'प्रिय स्थिर स्फिरोरू गुरु बहुल प्रदीर्घ ह्रस्ववृद्ध वृन्दारकाणां प्रस्थ स्फुवर गर बंहत्रपद्राघह्रस्व वर्ष बृंदा:' इति वचनात् स्थिरशब्दस्य स्थ आदेश: 'अवर्ण इवर्णे ए' स्थेयञ् संजातं प्रथमैकवचनं सि: 'सान्तमहतोर्नोपधाया:' दीर्घ:। व्यंजनाच्च सिलोप: संयोगान्तस्य लोप: स्थेयान् स्थिरतर इत्यर्थ := भगवान अपने तप आदि कार्यों में स्थिरतर रहते हैं। वा जिनका आदेश स्थिरतर है।

स्थवीयान् = अतिशयेन स्थूल: स्थवीयान् स्थूलतर इत्यर्थ: 'स्थूलदूर-युव क्षिप क्षुद्राणामंतस्थादेर्लोपो गुणश्च' = प्रभु अधिक स्थूल भी थे। वा जिनका ज्ञान महान् था वा स्वयं महान् थे वा विशाल ज्ञानके धारक होनेसे आप स्थवीयान् हो।

नेदीयान् = अतिशयेन अंतिको नेदीयान् समीपस्थ इत्यर्थ:, 'अंतिकबाढ्योर्नेदिसाधौ', प्रभु चिन्तन करने वाले भक्तों के लिए अतिशय नजदीक हैं। अत: नेदीयान् हैं।

दवीयान् = अतिशयेन दूर: दवीयान् दूरस्थ इत्यर्थ:= जिनदेव अभक्तों से अतिशय दूर हैं। वा पापों से, विभाव भावों से अत्यन्त दूर हैं अत: दवीयान् हैं।

दूरदर्शन: = दूरेण दृश्यते इति दूरदर्शन: 'शासुबुद्धिदृशिधृषिमषां क्यु:' = भक्तों को जिनदेव दूर से भी दीखते हैं। दूर से भी योगी पुरुषों को आप का दर्शन प्राप्त होता है अत: आप दूरदर्शन हैं।

अणु: = अण रण वण भण मण कण क्वणष्टनध्वनशब्दे। अण् अणति शब्दं करोतीति अणु:। पद्य सिव सिह निमनित्रपि पींदिकंदिकबंधिवहयणिभ्यश्च उ प्रत्यय: अणुरिति जातं कोऽर्थ:, अणुरविभागी अतिसूक्ष्म: पुद्गलपरमाणु-रुच्यते सोऽणुरिति सूक्ष्मत्वाद्विखं डोन भवति अल्पत्वात्। उक्तं च-

परमाणो: परं नाल्पं नभसो न परं महत्।
इति ब्रुवन्किमद्राक्षीन्नेमौदीनाभिमानिनौ॥

इति वचनात् 'पुद्गलपरमाणुरतिसूक्ष्मो भवति। स: उपमाभूतो भगवान् तदणुसदृशत्वात् योगिनामप्यगम्य: अणुरुच्यते।'=

अर्थ : अण्, रण्, वण्, भण्, मण्, कण् आदि धातु शब्द अर्थ में आते हैं। अण् धातु से 'उ' प्रत्यय करने पर अणु शब्द की उत्पत्ति होती है। अणति=शब्द करता है, जिसकी दिव्यध्वनि होती है। अथवा 'अणु' अविभागी सूक्ष्म पुद्गल परमाणु को भी अणु कहते हैं जो अतिसूक्ष्म है, इन्द्रियज्ञान के अगोचर है, अल्प है। सो ही कहा है-

परमाणु से कोई अल्प नहीं है और आकाश से कोई बड़ा नहीं है। ये दीन, अभिमानी किसी के भी गोचर नहीं हैं, दृष्टिगोचर नहीं हैं। अणु से भगवान को उपमा दी है कि हे भगवन्! आप अणु सदृश हैं, अतिसूक्ष्म हैं, योगिजन के भी अगम्य हैं, आपको योगी जन भी नहीं जान सकते अत: आप अणु हैं।

अणीयान् = अणोरप्यतिसूक्ष्मत्वात् अतिशयेन अणु: सूक्ष्म: अणीयान्। **'प्रकृतष्टेर्थे गुणादिष्टेयन्सौ वा?' इति सूत्रेण इयन्स् प्रत्ययस्तद्धितं।** पुद्गलपरमाणु-स्तावत् सूक्ष्मो वर्त्तते सोऽपि अवधिमन:पर्ययज्ञानवतां गम्योस्ति परं भगवान् तेषां योगिनामपि अगम्यस्तेन स: अणीयानित्युच्यते = अणु से भी अतिसूक्ष्म होने से प्रभु अणीयान् हैं। पुद्गल परमाणु यद्यपि सूक्ष्म हैं तथापि अवधिज्ञानी तथा मन:पर्ययज्ञानियों को गम्य है, ज्ञेय है; परन्तु भगवान उन योगियों को भी अगम्य हैं। इसलिए भगवान को अणीयान् कहा है।

अनणु: = न अणु: अनणुर्महानित्यर्थ:। तथानेकार्थे = अणुर्व्रीह्यलयो:=

भगवान अणु नहीं हैं अर्थात् महान् हैं। अनेकार्थ कोश में अणु व्रीही अलय को कहा है। अति सूक्ष्म है, लघु है उसको अणु कहा है। परमात्मा हीन, लघु नहीं है, अत: अनणु हैं।

गुरुराद्योगरीयसां = अतिशयेन गुरवो गरीयांसस्तेषामाद्योगुरु:, शास्ता गुरुराद्यो गरीयसाम् सर्वेषां प्रथमगुरुरित्यर्थ:= जो अतिशय गुरु हैं उनमें भी भगवान् आद्य गुरु हैं, आद्य शास्ता हैं। अर्थात् जिनेश्वर सभी के लिए आद्य हैं। इनसे दूसरा कोई भी बड़ा गुरु नहीं है।

सदायोग: सदाभोग: सदातृप्त: सदाशिव:।
सदागति: सदासौख्य: सदाविद्य: सदोदय: ॥१०॥

सुघोष: सुमुख: सौम्य: सुखद: सुहित: सुहृद्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमेश्वर: ॥११॥

अर्थ : सदायोग, सदाभोग, सदातृप्त, सदाशिव, सदागति, सदासौख्य, सदाविद्य, सदोदय, सुघोष, सुमुख, सौम्य, सुखद, सुहित, सुहृद, सुगुप्त, गुप्तिभृद्, गोप्ता, लोकाध्यक्ष, दमेश्वर ये उन्नीस नाम प्रभु के हैं।

टीका - सदायोग: = सदा सर्वकालं योगो आसंसारमलब्धलाभलक्षणं परमशुक्लध्यानं यस्य स सदायोग:= सदा सर्वकाल योग - परमशुक्लध्यान रूपी योग भगवान को है। जब तक भगवान संसार में भ्रमण करते थे तब तक इनको परम शुक्लध्यान नहीं था, जब इन्हें इसकी प्राप्ति हुई तबसे वे इससे कभी अलग नहीं रहे अत: वे सदायोग वाले ही रहेंगे। अत: आप सदायोग हैं।

सदाभोग: = सदा सर्वकालं भोगो निज शुद्ध बुद्धैक स्वभाव परमात्मैक-लोलीभाव- लक्षणपरमानंदामृतरसंस्वादस्वभावो भोगो यस्य स सदाभोग:। अथवा सत्समीचीन: आभोगो मनस्कारो मनोव्यापारो यस्य स सदाभोग:= भगवान संपूर्ण काल में अपना जो शुद्ध बोधरूप स्वभाव है अर्थात् परमात्मा में अभेदरूप से विलीन होकर जो परमानन्दरूप अमृतरस का आस्वाद लेना उसको सदाभोग कहते हैं। उसमें ही उनका आत्मा नित्य तत्पर रहता है। इसलिए वे सदाभोग हैं। अथवा सदा निरंतर 'आभोग' समीचीन मन का व्यापार जिनके हो वह सदाभोग है।

सदातृप्त: = सदा सर्वकालं तृप्त: पूर्णकामत्वात् सदातृप्त:, सदा अक्षुधित इत्यर्थ:= वे सदाकाल तृप्त हैं अर्थात् अब वे पूर्णकाम हुए हैं। अब उनकी क्षुधा मिट गयी है।

सदाशिव: = सदा सर्वकालं शिवं कल्याणं यस्येति सदाशिव:= भगवान सर्वकाल में शिव कल्याण रूप हैं।

सदागति: = सदा सर्वकालं गतिर्ज्ञानं यस्य स सदागति:= भगवान सर्व काल में गति ज्ञान रूप ही रहते हैं।

सदासौख्य: = सदा सर्वकालं सौख्यं परमानंदलक्षणं यस्य स सदासौख्य:= सदा सर्वकाल में जो परमानंद सुख में लीन रहते हैं।

सदाविद्य: = सदा सर्वकालं विद्या केवलज्ञानलक्षणं यस्य स सदाविद्य:= सर्वकाल भगवान केवलज्ञान लक्षण को धारण करते हैं।

सदोदय: = सदा सर्वकालं उदयोऽनस्तगमनं यस्येति सदोदय: अथवा सदा सर्वदा सर्वकालं उत्कृष्टोऽय: शुभावहो विधिर्यस्य स सदोदय:= सर्वकाल उनका उदय ही रहता है, कभी उनका अस्त के प्रति गमन नहीं होता और भगवान सर्वकाल में शुभ भाग्ययुक्त ही रहते हैं।

सुघोष: = सुष्ठु शोभनो घोषो योजनध्वनिर्यस्य स सुघोष:= भगवान का सुन्दर घोष, शब्द या आवाज जिसे ध्वनि कहते हैं और जो दिव्य रूप से एक योजन तक सुनने में आती है अत: आप सुघोष हैं।

सुमुख: = सुष्ठु शोभनं मुखं यस्य स सुमुख: विरागमुख इत्यर्थ:= भगवन्त का मुख सदा शोभायुक्त होकर भी वीतरागतामय होता है।

सौम्य: = सोमो देवता यस्य स सौम्य: अक्रूर इत्यर्थ:= भगवान सदा सौम्य अक्रूर शान्त ही रहते हैं। इसलिए सौम्य हैं।

सुखद: = सुखं लौल्याभावे मनसो निर्वृत्ति: संतोषस्तत्सुखं ददाति यच्छतीति सुखद:= लोभ के अभाव में जो मन की सांसारिक भोगों से निर्वृत्ति होती है, संतोष होता है, निराकुलता होती है उसको सुख कहते हैं। उस सुख में स्वयं लीन हैं, शरण में जाने वालों को संतोष सुख प्रदान करते हैं अत: सुखद कहलाते हैं।

सुहितः = सुष्ठु हितं पुण्यं यस्य स सुहितः= भगवान हमेशा भक्तों के लिए हित रूप ही हैं, पुण्य रूप हैं। सबके हित में लीन हैं अतः सुहित हैं।

सुहृद् = सुष्ठु शोभनं हृदयं यस्य स सुहृद् = भगवान का हृदय सतत हमेशा शोभित ही रहता है। अतः सुहृद् हैं। सुहृद् का अर्थ अच्छा मित्र है। भगवान सब का हित करने वाले मित्र हैं।

सुगुप्तः = गुप्यते स्म गुप्तः सुष्ठु गुप्तो गूढः सुगुप्तः मिथ्यादृष्टिनामगम्य इत्यर्थः= भगवान का स्वरूप मिथ्यादृष्टियों के लिए गूढ़ ही रहता है, मिथ्यादृष्टि जन उनके स्वरूप को नहीं जानते अतः गुप्त हैं। वा निरंतर स्वस्वरूप में लीन रहते हैं इसलिये भी गुप्त हैं।

गुप्तिभृत् = सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः रत्नत्रयस्य गोपनं रक्षणं गुप्तिः, रत्नत्रयं वा गोपायति रक्षयति पालयतीति गुप्तिः, गुप्तिं बिभर्त्ति स गुप्तिभृत् = मन, वचन तथा शरीर के व्यापारों को पूर्णतया बंद करना गुप्ति है अर्थात् रत्नत्रय का रक्षण करना, पालन करना, गुप्ति है। गुप्ति रत्नत्रय का रक्षण करती है, पालन करती है। इस गुप्ति को भगवान धारण करते हैं अतः वे गुप्तिभृत् हैं।

गोप्ता = गोपायत्यात्मानं रक्षतीति गोप्ता = भगवान अपने आत्मा का रक्षण करते हैं अतः वे गोप्ता हैं।

लोकाध्यक्षः = लोकानां प्रजानां अध्यक्षः प्रत्यक्षीभूतः लोकाध्यक्षः, अथवा लोकास्त्रीणि भवनानि अध्यक्षाणि लोचनानि यस्येति लोकाध्यक्षः= लोकों को, प्रजाओं को भगवान अध्यक्ष, प्रत्यक्ष रहते हैं। अतः लोकाध्यक्ष हैं। या लोक याने तीनलोक ऊर्ध्व, मध्य, अधो ऐसे तीनों लोकों के भगवान लोचन याने नेत्र के समान हैं अतः लोकाध्यक्ष कहे जाते हैं।

दमेश्वरः = दमस्तपः क्लेशसहिष्णुता तस्येश्वरः स्वामी दमेश्वरः= दम, तप से होने वाले क्लेश को सहन करना यह दम का लक्षण है। ऐसे दम के भगवान ईश्वर हैं, स्वामी हैं, अतः वे दमेश्वर हैं।

इस प्रकार श्रीमद् अमरकीर्त्ति सूरि विरचित जिनसहस्रनाम की टीका में सातवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

卐 अष्टमोऽध्यायः 卐

(बृहदादिशतम्)

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः।
मनीषी धिषणो धीमान् शेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥

नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

अर्थ : बृहद्बृहस्पति, वाग्मी, वाचस्पति, उदारधी, मनीषी, धिषण, धीमान्, शेमुषीश, गिरांपति, नैकरूप, नयोत्तुङ्ग, नैकात्मा, नैकधर्मकृत्, अविज्ञेय, अप्रतर्क्यात्मा, कृतज्ञ, कृतलक्षण, ये सत्तरह नाम प्रभु के सार्थक हैं जो इस प्रकार हैं-

टीका : बृहद्बृहस्पतिः = बृहन्ति वर्द्धन्ते इति बृहन्तः, बृहतां पतिः वर्णविकारे बृहस्पतिः, बृहच्चासौ पतिः बृहस्पतिः बृहद्बृहस्पतिः। वृद्धस्वराचार्य इत्यर्थः= इन्द्र के गुरु होने से बृहस्पति हैं।

बृहद् = धातु वृद्धि अर्थ में है अतः जो वृद्धि को प्राप्त है उसे बृहत् कहते हैं, अथवा बृहत् का अर्थ वर्ण (अक्षर) भी है। उन वर्णों का पति बृहस्पति कहलाता है तथा वृद्धि को प्राप्त स्वरों के आचार्य बृहद्बृहस्पति कहलाते हैं। अतः भगवान सम्पूर्ण स्वरों के उत्पादक या स्वामी होने से बृहद्बृहस्पति कहलाते हैं।

वाग्मी = प्रशस्तावाक् विद्यतेऽस्य स वाग्मी, वाचोग्मिनिः= अत्यंत प्रशस्त हैं वाणी वचन जिनके, तथा जीवादि पदार्थों का यथार्थ विवेचन प्रभु करते हैं इसलिए वाग्मी कहे जाते हैं।

वाचस्पतिः= वाचां पतिः वाचस्पतिः= ये द्वादशांग वचनों के स्वामी हैं। अतः वाचस्पति हैं।

उदारधीः= उदर्यते उदारः घञ् उदारस्त्यागविक्रमाभ्यां, शूरा धीर्बुद्धिर्यस्य स उदारधीः- त्याग और विक्रम गुण से प्रभु की बुद्धि शौर्ययुक्त है। प्रभु ने विरक्त

होकर विशाल राज्य का त्याग किया और मोह का नाश करने में अपना अपूर्व धैर्य प्रकट किया। अत: वे उदारधी हैं। लोकालोकव्यापी ज्ञानयुक्त होने से उदार धी हैं।

मनीषी = मनीषा बुद्धिर्विद्यतेऽस्य स मनीषी। जीवादिक पदार्थों का विचार करने में प्रभु की बुद्धि बहुत ही चतुर है। अत: वे **मनीषी** हैं। वा मननशक्ति युक्त होने से **मनीषी** हैं।

धिषण:= धिषणास्यास्ति इति धिषण:। त्रिधृषा प्रागल्भे इति धृष्णोतीति धिषण:= 'धृषेधिषश्च' =

अर्थ = 'धृषा' अति बोलना या चातुर्य अर्थ में आता है। 'धृ' को धि आदेश होता है अत: धिषण शब्द बनता है, चतुरतापूर्ण बुद्धियुक्त होने से धिषण हैं। धारण शक्ति से सम्पन्न होने से भी आप धिषण हैं।

धीमान् = धीरस्ति अस्य **धीमान्** = गणधरादि में प्रभु की बुद्धि श्रेष्ठ है। वा 'धी' केवलज्ञान के धारक होने से धीमान् कहलाते हैं।

शेमुषीश: = शे अव्यय शेमो हस्तं मुष्णाति शेमुषी मेधा तस्या: ईश: **स्वामी** शेमुषीश:= शेमुषी - बुद्धि है, बुद्धि के स्वामी होने से आप शेमुषीश कहलाते हैं। 'शे' अव्यय है, मुष् धातु चुराने या ग्रहण करने के अर्थ में है, वह शेमुषीश है और तत्त्वज्ञान को ग्रहण करने वालों में जो स्वामी हैं वे **शेमुषीश** कहलाते हैं।

गिरांपति: = गिरां वाणीनां **पति:** गिरांपति: '**क्वचिन्न** लुप्यते' इति विधानात् = प्रभु सब वचनों के स्वामी हैं। **उनके** ज्ञान वा वचन में कोई वस्तु छिपी हुई नहीं है। वा १८ महाभाषा और सात सौ लघु भाषा के स्वामी होने से आप गिरांपति हैं।

नैकरूप: = न एकं रूपं आकारो यस्य **नैकरूप:** जैनास्तु जिनं कथयन्ति बौद्धास्तु बुद्धं प्रतिपादयन्ति, भागवतास्तु नारायणं कथयन्ति, महेश्वरास्तु ईश्वरं निरूपयंति इति अनेन नाभिसूनुर्नैक स्वरूप इत्यर्थ:= नहीं है एक रूप जिसका अत: प्रभु अनेक रूप के धारक हैं। जैसे - जैन वृषभनाथ को जिन कहते हैं।

बौद्ध उनको बुद्ध नाम से पुकारते हैं। भागवत विष्णु प्रभु को नारायण कहते हैं। महेश्वर उनको ईश्वर कहते हैं। इस प्रकार नाभि के पुत्र का एक स्वरूप नहीं है वह अनेक रूप है।

नयोत्तुङ्गः = नयाः नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूताः सप्त, अथवा स्यादेकं, स्यादनेकं, स्यादुभयं, स्यादवाच्यं, स्यादेकं वावक्तव्यं, स्यादनेकं वावक्तव्यं, स्यादेकानेकं वावक्तव्यं च तैरुत्तुंगः उन्नतः नयोत्तुंगः= आदिनाथ भगवान नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे सात नयों से उन्नत हैं। अथवा सातभंगों से श्रेष्ठ हैं। वे सातभंग इस प्रकार हैं : स्यादेक, स्यादनेक, स्यादेकानेक, स्यादवाच्य, स्यादेक अवाच्य, स्यादनेक अवाच्य, स्यादेकानेक अवक्तव्य ऐसे सात भंगों से आदिप्रभु श्रेष्ठ हैं। वे सर्वथा एक नहीं हैं परन्तु कथंचित् एक हैं, वे जीवद्रव्य की अपेक्षा एक हैं। परन्तु केवलज्ञान, केवलदर्शन, आदिगुणों की अपेक्षा अनेक हैं। द्रव्य तथा गुणों की क्रमापेक्षा कथंचित् एकानेक हैं। द्रव्य और गुणों की अपेक्षा युगपत् होने से प्रभु स्यादवाच्य हैं। इस कथंचित् अवाच्य में एक की मुख्यता अन्तर्हित है। अतः पाँचवाँ भंग हुआ। तथा इसी भंग में अनेक की मुख्यता भी अन्तर्हित हैं। अतः छठा भंग स्यादनेक अवक्तव्य भंग है और इसी स्यादवाच्य भंग में क्रम से एकत्व-अनेकत्व भी अन्तर्हित हैं। अतः इन सात नयों से प्रभु उन्नत हैं।

नैकात्मा = न एकः आत्मा यस्येति नैकात्मा, 'असरीरा जीवघणा' इति वचनात् = मुक्त हुए जिनेश्वर में अनेक मुक्तात्माओं का समावेश हुआ है। तो भी जिनेश्वर के ज्ञानादि गुण जिनेश्वर के ही हैं। क्योंकि वे गुण उनसे अभिन्न हैं तथा जिस सिद्धक्षेत्र के असंख्यात प्रदेशों में आदिप्रभु के असंख्यात आत्मप्रदेश विराजमान हैं, उतने में ही अनन्त मुक्तात्माओं के आत्मप्रदेश भी विराजमान हैं। अतः अन्य मुक्तात्माओं की अपेक्षा जिनेश्वर में नैकात्मत्व है। परन्तु स्वद्रव्यादि अपेक्षा से जिनेश आदिनाथ में नैकात्मत्व नहीं है।

नैकधर्मकृत् = न एकं धर्मं कृतवान् नैकधर्मकृत् यतिश्रावकधर्म-भेदादिति= आदि भगवंत ने अपनी दिव्यध्वनि से यतिधर्म तथा गृहस्थधर्म तथा उनमें अनेक भेदों का विवेचन किया है। अतः वे नैकधर्मकृत् हैं।

अविज्ञेय: = न विज्ञेय: ज्ञातुमशक्य इत्यर्थ:= उनका स्वरूप हमारे ज्ञान से जानना अशक्य है। अत: वे अविज्ञेय हैं।

अप्रतर्क्यात्मा = अप्रतर्क्य: अविचार्य: अवक्तव्य: आत्मा स्वरूपं स्वभावो यस्येति स अप्रतर्क्यात्मा = भगवान के, आत्मा के स्वरूप का अर्थात् स्वभावों का विचार करने में हमारी बुद्धि असमर्थ है। अत: वे अप्रतर्क्यात्मा हैं। शब्दों के द्वारा भी उनका स्वरूप अवक्तव्य है।

कृतज्ञ: = कृतं कृतयुगं जानातीति कृतज्ञ: = भगवान कृतयुग के ज्ञाता हैं। अत: वे कृतज्ञ हैं।

कृतलक्षण: = कृतानि सम्पूर्णानि लक्षणानि श्रीवृक्षशंखाब्जस्वस्तिकांकुश तोरणादीनि यस्य स कृतलक्षण: सम्पूर्णलक्षण इत्यर्थ:= प्रभु के देह पर श्रीवृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, आदि शुभ एक हजार आठ लक्षण हैं अत: वे कृतलक्षण हैं।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भ: प्रभास्वर:।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भ: सुदर्शन: ॥३॥

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाऽध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासन: ॥४॥

अर्थ : ज्ञानगर्भ, दयागर्भ, रत्नगर्भ, प्रभास्वर, पद्मगर्भ, जगद्गर्भ, हेमगर्भ, सुदर्शन, लक्ष्मीवान्, त्रिदशाध्यक्ष, दृढीयान्, इन, ईशिता, मनोहर, मनोज्ञांग, धीर, गम्भीरशासन ये सत्तरह नाम प्रभु के हैं।

टीका : ज्ञानगर्भ: = ज्ञानं मतिश्रुतावधिर्गर्भे मातु: कुक्षौ यस्य स ज्ञानगर्भ:= जब प्रभु माता के गर्भ में आये तो मति, श्रुत तथा भवप्रत्यय अवधिज्ञान के साथ आये, अत: उनका ज्ञानगर्भ नाम सार्थक है।

दयागर्भ: = दया जीवानुकंपा गर्भे मातु: कुक्षौ यस्य स दयागर्भ:= सब प्राणियों पर दया करने का भाव धारण कर प्रभु ने माता के गर्भ में प्रवेश किया अत: वे दयागर्भ हैं।

रत्नगर्भ: = रत्नानि गर्भे मातु: कुक्षौ यस्य स रत्नगर्भ:= सर्व गर्भों में

प्रभु जिनेश्वर का गर्भ श्रेष्ठ है। अत: वे रत्नगर्भ हैं। चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, आदिकों के गर्भ की अपेक्षा तीर्थंकर का गर्भ श्रेष्ठ होने से उनके गर्भ को रत्नगर्भ कहना योग्य है। तथा तीर्थंकर के माता के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से तथा गर्भ में आने के अनन्तर नौ मास तक रत्नवृष्टि स्वर्ग से कुबेर करते हैं। अत: प्रभु रत्नगर्भ हैं।

प्रभास्वर: = 'कासृभासृदीप्तौ' भास् प्रपूर्व: प्रभासते इत्येवंशीलो प्रभास्वर: 'कासिपिसिभासीशस्थाप्रमदां च' = कासृ भासृ धातु दीप्ति अर्थ में है 'प्र' उपसर्ग है। उत्कृष्ट रूप से देदीप्यमान कान्ति वाले होने से प्रभास्वर कहलाते हैं।

जगद्गर्भ: = जगत्त्रैलोक्यं गर्भे यस्येति जगद्गर्भ:= यह जगत् त्रैलोक्य जिनके गर्भ में है या जिनके ज्ञान में सर्वजगत् प्रभासित हुआ है। अत: जगद्गर्भ हैं।

हेमगर्भ: = हेम स्वर्ण गर्भे मातु: कुक्षौ यस्येति हेमगर्भ:= भगवान् जब माता के गर्भ में आते हैं तब सुवर्णयुक्त रत्नवृष्टि होती है। अत: भगवान् हेमगर्भ कहे जाते हैं।

सुदर्शन: = सुखेनानायासेन दृश्यते इति सुदर्शन :। 'शासुयुधिदृशिधृषि मृषां वा'= अतिशय सुख से अनायास ही प्रभु का दर्शन होता है। या प्रभु का दर्शन भक्तों को सुखदायक है। अत: प्रभु सुदर्शन हैं।

लक्ष्मीवान् = लक्ष्मी: अनंतज्ञानादिका विद्यतेऽस्येति लक्ष्मीवान् तदस्यास्तीतिमत्वंतत्वात् = अनंतज्ञान-दर्शन-सुख-शक्ति रूप लक्ष्मी के धारक प्रभु हैं। उनकी यह लक्ष्मी घातिकर्म के नाश से प्राप्त हुई है। अत: वे सदैव लक्ष्मीवान् हैं।

त्रिदशाध्यक्ष:= त्रिदशं प्रमाणमेषां ते त्रिदशा: देवास्तेषामध्यक्ष: प्रत्यक्षीभूत: त्रिदशाध्यक्ष:= देवों को भगवान प्रत्यक्ष होते हैं, विदेह आदि देशों में जिनेश्वरों का सतत विहार होता है। अत: देव वहाँ जाकर उनका दर्शन करते हैं। इसलिए वे देवों के लिए प्रत्यक्ष हैं।

दृढीयान् = अतिशयेन दृढः दृढीयान्।

पृपक्वं मृदुं दृढं चैव भृशं च कृशमेव च।
परिपूर्णं दृढं चैव षडेतान् विधोस्मरेत् ॥२८॥

अत्यन्त दृढ़ को दृढ़ीयान् कहते हैं। परिपक्व, मृदु, दृढ़, कृश, परिपूर्ण, दृढ़तर ये छह दृढ़ के नाम हैं।

भगवान् ज्ञान में परिपक्व हैं, दृढ़ हैं, अपने स्वभाव में परिपूर्ण हैं, दया के सागर होने से मृदु हैं, कर्मों का नाश करने से कृश हैं अत: दृढ़ हैं।

इन: = इण् गतौ एति योगिनां ध्यानबलेन हृदय-कमलमागच्छति इति इन:। 'इण जिकृषिभ्योनक्' = ध्यान के सामर्थ्य से योगिजन के हृदयकमल में प्रभु आते हैं। अत: वे 'इन' हैं। 'इण्' धातु गति अर्थ में और ज्ञान अर्थ में है।

ईशिता = ईष्टे ऐश्वर्यवान् भवतीत्येवंशील: ईशिता = प्रभु अनन्तज्ञानादि ऐश्वर्यसंपन्न हैं अत: वे ईशिता हैं।

मनोहर: = मनश्चित्तं भव्यानां हरतीति मनोहर:= भव्यों के मन को जिनेश्वर अपनी तरफ खींचते हैं। अत: वे मनोहर हैं।

मनोज्ञांग: = मनो जानातीति मनोज्ञं, मनोहरं सुन्दरं अंगं शरीरावयवं च यस्येति मनोज्ञांग:= प्रभु का शरीर और मुख, नेत्र, नासिका, हस्त, पादादि संपूर्ण अवयव मनोज्ञ, सुंदर होते हैं। जिनको देखकर इन्द्र तृप्त नहीं होता है, इसलिए प्रभु मनोज्ञांग हैं।

धीर: = ध्येयं प्रति धियं बुद्धिमीरयति प्रेरयतीति धीर: अथवा धियो राति ददाति भक्तानामिति धीर:= प्रभु भक्तों की बुद्धि को रत्नत्रयरूपी ध्येय के प्रति प्रवृत्त करते हैं। अत: वे धीर हैं, या भक्तों को सद्बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे भक्तों का हित होता है, उनको रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

गम्भीरशासन: = गम्भीरं अतलस्पर्शं शासनं मतं यस्य स गम्भीरशासन:= जीवादि तत्त्वों का गंभीर उपदेश है जिसमें, पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित तथा अहिंसादि गुणों से परिपूर्ण तथा दोष की कणिका भी नहीं है जिसमें ऐसा प्रभु का गम्भीरशासन नाम सार्थक है।

धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधोदेवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अमोघवागमोघाज्ञो निर्ममोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥

अर्थ : धर्मयूप, दयायाग, धर्मनेमि, मुनीश्वर, धर्मचक्रायुध, देव, कर्महा, धर्मघोषण, अमोघवाग, अमोघाज्ञ, निर्मम, अमोघशासन, सुरूप, सुभग, त्यागी, समयज्ञ, समाहित, ये सत्तरह नाम प्रभु के कैसे सार्थक हैं, इसे कहते हैं।

टीका - धर्मयूपः = यु मिश्रणे यौतीति यूपः, नीपादयः नीपयूपस्तूपकूप-तल्पशरव्यवाष्पाः, धर्मस्य दयायाः यूपः यज्ञस्तम्भः धर्मयूपः। यू धातु मिश्रण अर्थ में है, अतः मिश्रण करता है, मिलाता है, उसको यूप कहते हैं। यूप का अर्थ स्तंभ, सहारा है। कूप का सहारा, कूपयूपस्तूप आदि। भगवान् दयामय धर्म के स्तंभ हैं, यूप हैं अतः धर्मयूप हैं।

दयायागः = दया सगुणनिर्गुणसर्वप्राणिवर्गाणां करुणा यागः पूजा यस्य स दयायागः= सद्गुणी और दुर्गुणी सर्व प्राणियों पर करुणा करना ही जिनकी पूजा है ऐसे प्रभु दयायाग कहे जाते हैं। वा दयापूर्ण यज्ञ करने वाले होने से दयायाग हैं।

धर्मनेमिः = णीञ् प्रापणे, नयतीति शकटं नेमिः, 'नीदलिभ्यां मि' धर्मस्य रथस्य चक्रस्य नेमिः धर्मनेमिः =

'णीञ्' धातु प्रापण अर्थ में है अतः जो गाड़ी को ले जाता है उसको नेमि कहते हैं। धर्म रूपी रथ की धुरा होने से भगवन् आप धर्मनेमि हैं।

मुनीश्वरः = मुनीनां प्रत्यक्षज्ञानिनां ईश्वरः मुनीश्वरः= प्रत्यक्षज्ञानी - अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान धारक मुनिवृंद प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं। उनके प्रभु ईश्वर स्वामी हैं। मुनिजनों के स्वामी होने से आप मुनीश्वर हैं।

धर्मचक्रायुधः = धर्म एव चक्रं पापारातिखंडकत्वात् धर्मचक्रं धर्मचक्रमायुधं शस्त्रं यस्यासौ धर्मचक्रायुधः= पापरूपी शत्रुओं को खंडित करने वाले धर्मचक्र रूपी आयुध को प्रभु ने धारण किया है अतः वे धर्मचक्रायुध कहलाये। धर्म-

चक्ररूपी हथियार को धारण करने से आप धर्मचक्रायुध हैं।

देव: = 'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युति-कांति-गतिषु' दीव्यति क्रीडति परमानंद-पदे देव: अच् = दिव् धातु से देव शब्द बनता है, क्रीड़ा करना दिव् धातु का अर्थ है। अर्थात् परमानन्द पद में, मुक्तिसुख में प्रभु क्रीड़ा करते हैं इसलिए देव हैं।

कर्महा = कर्म शुभाशुभं हतवान् कर्म्महा 'क्विप् ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु' = शुभाशुभ कर्म को अर्थात् पापपुण्य कर्मों को प्रभु ने नष्ट किया है अत: कर्महा हैं। 'हन्' धातु घात अर्थ में है, 'आ' प्रत्यय होकर 'हा' बनता है।

धर्म्मघोषण: = धर्म्म: अहिंसादि: स एव घोषणं दुन्दुभिर्यस्य धर्म्मघोषण:- प्रभु अहिंसा धर्म की दुन्दुभि हैं अर्थात् प्रभु ने अहिंसा धर्म की सर्वत्र घोषणा की है। अत: प्रभु धर्मघोषण हैं।

अमोघवाक् = अमोघा सफला वाक् यस्य स अमोघवाक् - प्रभु की दिव्यध्वनि ने असंख्य प्राणियों को हितमार्ग में लगाया है।

अमोघाज्ञ: = अमोघा सफला आज्ञा वाक् यस्य स अमोघाज्ञ:= प्रभु की आज्ञा - वाणी सफल है, अत: अमोघाज्ञ हैं।

निर्मम: = निर्गता ममता अस्मादिति निर्मम:= प्रभु की आत्मा से ममता रागद्वेष नष्ट हो गये हैं। अत: वे निर्मम हैं।

अमोघशासन: = अमोघं अनिष्फलं शासनं कथनं यस्य स अमोघशासन: अमोघ याने अनिष्फल, सफल शासन उपदेश जिनका, ऐसे प्रभु अमोघशासन।

सुरूप: = सुष्ठु शोभनं रूपं सौंदर्यं यस्यासौ सुरूप:- प्रभु शोभन सुन्दर सौंदर्य के धारक हैं।

सुभग: = सुष्ठु शोभनो भगो ज्ञानं माहात्म्यं यशो यस्येति सुभग:= तथानेकार्थे -

भगोऽर्क्कज्ञानमाहात्म्यं, यशोवैराग्यमुक्तिषु।
रूप वीर्य प्रयत्नेच्छा श्री धर्म्मैश्वर्य योनिषु॥

प्रभु का सु-उत्तम, भग-ज्ञान, माहात्म्य तथा यश है। अत: वे सुभग हैं। भग शब्द के अनेक अर्थ हैं- यथा सूर्य, ज्ञान, माहात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप-सौंदर्य, वीर्य, प्रयत्न, इच्छा, श्री, धर्म, ऐश्वर्य और योनि ऐसे पन्द्रह अर्थ हैं। उत्तम ज्ञान, यश, माहात्म्य, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि हैं अत: सुभग हैं।

त्यागी = त्यागो दानं तत् त्रिविधमाहारदानमभयदानं ज्ञानदानं च। त्यागो विद्यतेऽस्येति त्यागी = त्याग दान वह तीन प्रकार का है आहारदान, अभयदान, ज्ञानदान। तीन प्रकार के त्याग को करने वाले भगवान त्यागी हैं। पर-परिणति (विभावभावों) के त्याग करने से आप त्यागी हैं।

समयज्ञ: = समयं कालं सिद्धान्तं जानातीति समयज्ञ:- समय, काल तथा सिद्धान्त का वाचक है। अर्थात् अनादि अनिधन काल और उसका परिवर्तन जिनके ऊपर होता है ऐसे पदार्थों को, जैन सिद्धान्तों को जानने वाले प्रभु समयज्ञ हैं। वा समय - आत्मा के ज्ञाता होने से समयज्ञ हैं।

समाहित: = 'डुधाञ् डुमञ् धारणपोषणयो:' समादधाति समाधत्ते स्म वा समाहित: दधातेर्हि समाधानं प्राप्त इत्यर्थ:। तथानेकार्थे - समाहित: समाधिस्थे संश्रुतप्रतिज्ञात:=

डुधाञ् डुमञ् धातु धारण-पोषण अर्थ में है। अत: 'सम' उपसर्ग करके समादधाति, समाधत्ते स्म वा समाहित है। निरंतर समाधिस्थ रहते हैं, सदा अपने में लीन रहते हैं, सावधान रहते हैं, अत: समाहित हैं।

सुस्थित: स्वास्थ्यभाक् स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धव:।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृह: ॥७॥

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा नि:सपत्नो जितेन्द्रिय:।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहाऽनघ: ॥८॥

अर्थ : सुस्थित, स्वास्थ्यभाक्, स्वस्थ, नीरजस्क, निरुद्धव, अलेप, निष्कलङ्कात्मा, वीतराग, गतस्पृह, वश्येन्द्रिय, विमुक्तात्मा, नि:सपत्न, जितेन्द्रिय, प्रशान्त, अनन्त-धामर्षि, मंगल, मलहा, अनघ, ये अठारह नाम प्रभु के सार्थक हैं।

टीका - सुस्थितः - 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ', सुस्थीयते स्म सुस्थितः क्लद्यति स्वातिमास्थात्यगुणे सुखो इत्यर्थः-

'ष्ठा' धातु गतिनिवृत्ति अर्थ में है, जो ऐसी अवस्था को प्राप्त हुए हैं जिससे पुनः आगमन नहीं है अतः सुस्थित हैं। सुख में अतिशय स्थिर हुए प्रभु को सुस्थित कहते हैं। अर्थात् घातिकर्म के विनाश से अनन्तसुख में प्रभु स्थिर हुए हैं। अतः सुस्थित हैं। वा सम्यक् रूप से अपने चैतन्य भाव में लीन होने से सुस्थित हैं।

स्वास्थ्यभाक् = स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं स्वास्थ्यं चेतोनिरोधः तं भजते स्वास्थ्यभाक् 'भजोविण्', परपदार्थों से मन को हटाकर अपने शुद्ध स्वरूप में प्रभु पूर्णतया स्थिर हुए हैं। अतः वे स्वास्थ्यभाक् हैं। वा कर्मरोगरहित होने से स्वास्थ्यभाक् हैं।

स्वस्थः = स्वे आत्मनि तिष्ठतीति स्वस्थः 'नाम्निश्च कः' 'अलोपः सार्वधातुके', प्रभु अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप में सदा स्थिर हैं अतः स्वस्थ हैं।

नीरजस्कः = निर्गतं विनष्टं रजो ज्ञानदर्शनावरणद्वयं यस्येति नीरजस्कः= ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म को रज कहते हैं। ये रजरूप दो कर्म प्रभु से सर्वथा अलग हुए। अतः प्रभु नीरजस्क रजरहित हुए हैं। कर्मरजरहित होनेसे नीरजस्क हैं।

निरुद्धवः = उत्कृष्टो हव उद्धवः उद्धवात् अध्वरात् निष्क्रान्तो निरुद्धवः यज्ञरहितः इत्यर्थः तथानेकार्थे - 'उद्धवः केशवमातुले उत्सवे ऋतुवह्नौ च' = **अर्थः** उत्कृष्ट हव (यज्ञ) उद्धव कहलाता है। उद्धव (यज्ञ) से रहित होने से निरुद्धव कहलाते हैं। अथवा - उद्धव - केशव (नारायण), मामा, उत्सव, ऋतु और अग्नि अर्थ में आता है। भगवान सांसारिक उत्सवों से ऋतुओं से क्रोध अग्नि से रहित होने से निरुद्धव हैं।

अलेपः = लेपः पापकर्ममलकलंकः, न लेपो यस्येति अलेपः= लेप से, पापकर्ममल कलंक से प्रभु रहित थे। अतः वे अलेप हैं। कर्मरूप लेप से रहित हैं।

निष्कलङ्कात्म: = निर्गत: कलङ्क: अपवादो यस्य स निष्कलङ्कात्मा = प्रभु कलंक से, अपवाद से रहित थे। अत: वे निष्कलङ्क नाम को यथार्थ धारण करते हैं।

वीतराग: = वीतो विनष्टो रागो यस्येति वीतराग:। अजेर्वी अथवा ई: विशिष्टा ई: वी. मोक्षलक्ष्मी: तां प्रति इत: प्राप्तो रागो यस्येति स वीतराग:= प्रभु की आत्मा से रागद्वेष नष्ट हो गये हैं। अथवा विशिष्ट जो ई लक्ष्मी - मोक्षलक्ष्मी उसके प्रति प्रभु का सम्बन्ध होने से भी वीतराग हैं।

गतस्पृह: = गता वाञ्छा यस्येति गतस्पृह:, वाञ्छारहित: इत्यर्थ:- प्रभु इच्छा रहित होने से गतस्पृह हैं।

वश्येन्द्रिय: = वश्यानि स्वाधीनानि इन्द्रियाणि स्पर्शनादीनि यस्येति वश्येन्द्रिय:= प्रभु ने अपनी स्पर्शनादि इन्द्रियाँ अपने वश में कर लीं इसलिए वे वश्येन्द्रिय बन गये।

विमुक्तात्मा = विमुच्यते स्म संसाराद्विमुक्त: आत्मा यस्य स विमुक्तात्मा- प्रभु की आत्मा संसार से विमुक्त हुई। इसलिए विमुक्तात्मा हैं।

नि:सपत्न: = निर्गतो विनष्ट: सपत्न: शत्रुर्यस्येति नि:सपत्न:= प्रभु के शत्रु नष्ट हुए थे अत: वे नि:सपत्न हैं।

जितेन्द्रिय: = जितानि विषयसुखपराङ्मुखीकृतानि इन्द्रियाणि स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु:, श्रोत्र लक्षणानि येन स जितेन्द्रिय :। निरुक्तं तु - जित्वेन्द्रियाणि सर्वाणि यो वेत्यात्मानमात्मना। गृहस्थो वानप्रस्थो वा स जितेन्द्रिय उच्यते॥

प्रभु ने इन्द्रियों को जीता था, विषयसुखों से इन्द्रियों को पराङ्मुख किया था। अत: वे जितेन्द्रिय हैं। जितेन्द्रिय शब्द की निरुक्ति इस प्रकार है- जिसने अपनी सब इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की है, तथा जो अपने द्वारा अपने आत्मा को जानता है, ऐसा गृहस्थ हो अथवा वानप्रस्थ उसको जितेन्द्रिय कहना चाहिए।

प्रशान्त: = 'दम् शम् उपशमे' प्रशाम्यति स्म प्रशान्त: रागद्वेषमोहरहित: इत्यर्थ:, अथवा प्रकृष्टं सुखं अंते समीपे यस्येति प्रशान्त: = प्रभु राग-द्वेष तथा मोह से रहित होने से प्रशान्त हैं। अथवा प्रकृष्ट-अनन्त-शं-सुख अन्ते जिनके समीप में है वे प्रभु प्रशान्त हैं।

अनंतधामर्षि:= अनन्तं च तद्धाम केवलज्ञानं अनंतधाम यस्येति अनंतधामा अनंततेजा: स चासौ ऋषिश्च त्रिकालदर्शी अनंतधामर्षि:= अनन्त-धाम-केवलज्ञान जिनको प्राप्त हुआ एवं प्रभु अनन्त तेजस्वी त्रिकालदर्शी ऋषि हैं अत: अनन्तधामर्षि कहलाते हैं।

मङ्गलं = मङ्गं सुखं लाति ददाति इति मंगलं, पापं गालयतीति मंगलं, अथवा मङ्गं सुपुण्यमिति यावत् तल्लाति आदत्ते इति वा मङ्गलम्। तथा-चोक्तम् मंगलशब्दोऽयमुद्दिष्ट: पुण्यार्थस्याभिधायक:, तल्लातीत्युच्यते सद्भिर्मंगलम्। मम् पापं दुरितमिति यावत् तद्गालयति विनाशयति विध्वंसयतीति मंगलं। तथा चोक्तं -

मलं पापमिति प्रोक्तं, उपचारसमाश्रयात्।
तद्धि गालयतीत्युक्तं मंगलं पण्डितैर्जैनै: ।।

तथा चोक्तं -

त्रैलोक्येशनमस्कारो लक्षणं मङ्गलं मतम्।
विशिष्टभूतशब्दानां शास्त्रादावथवा स्मृत: ।।

भगवान 'मङ्ग' सुख को देते हैं अत: मंगल हैं। तथा 'मं' पाप को 'गालयति' नष्ट करते हैं इसलिए मंगल हैं अथवा मंगं सुपुण्यको देते हैं, भक्तों को सुपुण्य प्रदान करते हैं अत: वे मंगल हैं। अथवा मं-दुरित-पाप उसका प्रभु विध्वंस करते हैं। अत: वे मंगल हैं, मङ्ग शब्द पुण्य के भाव को दिखाता है। उस पुण्य की प्राप्ति जिससे होती है, उसे मंगलार्थी सज्जनों ने मंगल कहा है। पाप को उपचार से मल कहते हैं। उसका गालन करना नाश करना मंगल है ऐसा पंडितों का कहना है। शास्त्र के प्रारंभ में त्रिलोक प्रभु जिनेन्द्र को नमस्कार करना मंगल है। अथवा शास्त्र के आरंभ समय में विशिष्ट शब्दों का स्मरण करना मंगल है।

मलहा = मलं पापं हतवान् मलहा = मल को, पाप को प्रभु ने नष्ट किया है।

अनय:= न अय: शुभाशुभं दैवं कर्म यस्येति अनय: स्वरेऽक्षरविपर्यय:

पापपुण्यमिति तेन रहित इत्यर्थः= न अयः- शुभाशुभ दैव, कर्म को अय कहते हैं, उससे रहित प्रभु को अर्थात् पुण्य तथा अशुभ - पाप रहित प्रभु को अनय कहना योग्य है।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्त्तो मूर्त्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥

अर्थ : अनीदृक्, उपमाभूत, दिष्टि, दैव, अगोचर, अमूर्त्त, मूर्तिमान, एक, नैक, नानैकतत्त्वदृक्, अध्यात्मगम्य, अगम्यात्मा, योगवित्, योगिवंदित, सर्वत्रग, सदाभावी, त्रिकालविषयार्थदृक् ये सत्तरह नाम प्रभु के किस प्रकार सार्थक हैं।

टीका – अनीदृक् = 'दृशिरप्रेक्षणे' इदम् पूर्वः अयमिव दृश्यते इति ईदृक् 'कर्मण्युपमाने त्यदादौ दृशेष्टक् च क्विप् इदमीइदमुस्थाने ई वे लो च वर्ग. वा विरामो, न ईदृक् अनीदृक् उपमारहित इत्यर्थः=

अर्थ : दृशिर् धातु प्रेक्षण (देखने) अर्थ में है। इदं पूर्वः यह इसके समान है, दिखता है उसको ईदृक् कहते हैं- अतः व्याकरण में 'ईदृक्' उपमा अर्थ में है। जो सब उपमाओं से रहित है वह अनीदृक् कहलाता है। भगवान के समान दूसरा कोई नहीं है, अतः भगवान अनीदृक् हैं।

उपमाभूतः = उप पूर्वो मा, माने उपमानं उपमा आतश्चोपसर्गे प्रसिद्ध-वस्तुकथनं उपमा उपमायां भूयते स्म भूतः संजातः उपमाभूतः, यथा गौर्गवयः तथा जिनः= प्रसिद्ध वस्तु के कथन को उपमा कहते हैं। जैसे किसी सुन्दरी के मुख का वर्णन करने के लिए प्रसिद्ध वस्तुभूत चन्द्र का वर्णन किया जाता है। इस सुन्दरी का मुख चन्द्र के समान है ऐसा कहा जाता है अर्थात् चन्द्र उपमान है और सुन्दरी का मुख उपमेय है। उसी तरह आदिप्रभु चन्द्र की तरह प्रसिद्ध वस्तु है, अतः उपमान रूप है, उपमेय नहीं है। वा गाय जैसा गवय होता है, ऐसी उपमा जिसके नहीं दी जाती स्वयं उपमाभूत हैं।

दिष्टिः = दिशति शुभाशुभफलमिति दिष्टिः वा दिश्यतेऽनया दिष्टिः तथानेकार्थे - 'दिष्टिरानंदमाने च' = प्रभु शुभ तथा अशुभ कार्य के सुखदायक तथा असुखदायक फलों का वर्णन करते हैं वा शुभाशुभ कर्मों का फल वर्णन किया जाता है अतः दिष्टि कहे जाते हैं। अथवा 'दिश्' धातु अनेक अर्थों में है 'आनन्द' ज्ञान अर्थ में भी 'दिश्' है जो आत्मीय आनन्द तथा केवलज्ञान में मग्न हैं अतः दिष्टि कहलाते हैं।

दैवं = देवस्यात्मन इदं दैवम् 'दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः'= प्रभु भक्तों के लिए दैवस्वरूप भाग्य - स्वरूप हैं, सुख देने वाले हैं। तथा अभक्तों के लिए वे अशुभ दैव-स्वरूप हैं। तो भी प्रभु निर्मल शुद्ध स्वरूप हैं। अथवा दैव का अर्थ भाग्य है, नियति है विधि (कर्म) है। प्रभु भाग्य, नियति, विधि का कथन करने वाले हैं अतः 'दैव' हैं।

अगोचरः = गावश्चरंत्यस्मिन्निति गोचरः 'गोचरसंचरवहव्रज व्यंजकमापण-निगमाश्च' न गोचरः नेंद्रियाणां गम्यः अगोचरः = गो-इन्द्रिय है, जो इन्द्रियों के द्वारा गम्य है, जानने योग्य है, वह गोचर है। भगवान् इन्द्रिय-गम्य नहीं हैं अतः अगोचर हैं।

अमूर्त्तः = 'मूर्च्छा मोहसमुच्छ्रययोः'। मूर्च्छति स्म मूर्त्तः न मूर्त्तः अमूर्त्तः अशरीर इत्यर्थः= मूर्च्छा, मोह के समुदाय मूर्च्छा हैं। मूर्च्छा को मूर्त्त कहते हैं वा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण जिसमें है उसको मूर्त्त कहते हैं वा शरीर को मूर्त्त कहते हैं, जिनके मूर्त्त शरीर नहीं है अतः अमूर्त्त हैं।

मूर्त्तिमान् = मूर्च्छनं मूर्तिः, मूर्त्तिराकारोऽस्यास्तीति मूर्त्तिमान्, प्रतिमा स्थापित इत्यर्थः= प्रभु अर्हदवस्था में जब थे तब ये सशरीर थे। उनकी उस अवस्था की स्थापना - जिनेश्वर में प्रतिमा में आरोपित करते हैं। तब स्थापना निक्षेप की अपेक्षा से उन्हें मूर्त्तिमान् कहते हैं।

एकः = इण् गतौ, एतीति एकः, इत्यभिकायाशल्यर्च्चिकृदाधाराभ्यक्' असहाय इत्यर्थः तथानेकार्थे - एकोन्यकेवलश्रेष्ठः संख्या = किसी के साहाय्य की अपेक्षा बिना प्रभु कर्मक्षय कर मुक्त हुए। अतः वे एक कहे जाते हैं। अथवा प्रभु मोक्षमार्ग का उपदेश देने के कार्य में अद्वितीय थे, श्रेष्ठ थे, मुख्य थे। अतः

वे एक कहे गये हैं। 'इण्' धातु गति अर्थ में है, एति अपने स्वभाव को प्राप्त होते हैं अत: एक हैं।

नैक:= न एक: न असहायो नैक: अनेक इत्यर्थ:, अथवा न विद्यते रुद्र: के आत्मनि यस्य स नैक:= प्रभु न एक -असहाय नहीं हैं। अनन्तगुणों से वे पूर्ण हैं। अत: वे असहाय नहीं हैं। अथवा के, प्रभु की आत्मा में न रुद्र-रुद्र नहीं है, ऐसे स्वभाव वाले प्रभु हैं।

नानैकतत्त्वदृक् = न एकतत्त्वं अनैकतत्त्वं न अनैकतत्त्वं पश्यतीति नानैक-तत्त्वदृक्। आत्मतत्त्वं पश्यतीत्यर्थ: नानैकतत्त्वदर्शीत्यर्थ:= प्रभु अनेक तत्त्वों को नहीं देखते हैं अर्थात् वे अपने आत्मस्वरूप को निरन्तर देखते रहते हैं। अत: नानैकतत्त्वदृक् हैं।

अध्यात्मगम्य:= आत्मनि अधि अध्यात्मचित्तं तेन गम्यो गोचर: अध्यात्मगम्य:। अध्यात्मशब्दस्यार्थ: कथ्यते - मिथ्यात्वादि-समस्त-विकल्प-जाल-परिहारेण शुद्धात्मन्यधि यदनुष्ठानं तदध्यात्मा तेन गम्य: अध्यात्मगम्य: = अपनी आत्मा में जो चित्-ज्ञान है उससे प्रभु अपने स्वरूप को जानते हैं। अध्यात्म शब्द के अर्थ का खुलासा ऐसा है- आत्मा में जो मिथ्यात्व रागादिक समस्त विकल्प उठते रहते हैं, उनका विनाश कर अपने शुद्धात्म स्वरूप में जो स्थिर रहना उसे अध्यात्म कहते हैं। अपनी आत्मा के स्वरूप में स्थिर रहकर भगवान् आत्मा का स्वरूप यथार्थ जानते हैं। अथवा जो आत्मा के गोचर है उसे अध्यात्मगम्य कहते हैं।

अगम्यात्मा = न गम्योऽगम्य:अगोचर: आत्मा यस्येति अगम्यात्मा, पापिनामगम्य इत्यर्थ:= पापी लोगों को जिनेश्वर की आत्मा का स्वरूप ज्ञात नहीं होता है। अत: जिनेश्वर अगम्यात्मा हैं।

योगवित् = योगमलब्धलाभं वेत्तीति योगवित् = जो प्राप्त नहीं हुआ उसे प्राप्त कर प्रभु ने खूब जाना। अत: वे योगवित् हैं।

योगिवंदित:= योगो ध्यानसामग्री योगो विद्यते येषां ते योगिन: तैर्वन्दित: नमस्कृत : स योगिवंदित:= ध्यान सामग्री जिनके पास है ऐसे योगिजन से प्रभु वंदित होते हैं अर्थात् योगिजन जिनेश्वर की वन्दना करते हैं।

सर्वत्रग:= सर्वत्र गच्छतीति सर्वत्रग: 'डो संज्ञायामपि' = सर्व त्रैलोक्य में प्रभु संचार करते हैं अर्थात् अपने केवलज्ञान से सर्व जगत् को तथा उसमें स्थित सर्व पदार्थों को जानते हैं।

सदाभावी = सदा सर्वकालं भविष्यतीति सदाभावी, 'भूस्थाभ्यां णिनि:' = सदा भविष्य काल में भी अपने ज्ञानादि गुणों की परिणति धारण करने वाले प्रभु हैं। अत: वे सदाभावी नाम को धारण करते हैं।

त्रिकालविषयार्थदृक् = त्रिकालविषयार्थान् त्रिकालगोचरपदार्थान् पश्यतीति त्रिकालविषयार्थदृक् = भूतकाल, वर्त्तमानकाल तथा भविष्यकाल में गुणपर्यायों में परिणत होने वाले अनन्तानन्त पदार्थों को प्रभु देखते हैं। अत: वे त्रिकालविषयार्थदृक् हैं।

शङ्कर: शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण:।
अधिप: परमानन्द: परात्मज्ञ: परात्पर: ।।११।।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदय:।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणि: ।।१२।।

अर्थ : शंकर, शंवद, दान्त, दमी, क्षान्ति-परायण, अधिप, परमानन्द, परात्मज्ञ, परात्पर, त्रिजगत्वल्लभ, अभ्यर्च्य, त्रिजगन्मंगलोदय, त्रिजगत्पति-पूज्यांघ्रि, त्रिलोकाग्रशिखामणि, १५ नाम प्रभु के सार्थक हैं।

टीका - शंकर: - शं परमानन्दलक्षणं सुखं करोतीति शंकर:, शं पूर्वेभ्य: संज्ञायामच् प्रत्यय: = शं परमानन्द लक्षण रूप सुख को जिन्होंने अपनी आत्मा में उत्पन्न किया है तथा योगिजनों को भी सुख की प्राप्ति के लिए कारण हैं ऐसे प्रभु यथार्थ शंकर हैं।

शंवद: = वद् व्यक्तायां वाचि, वद: शंपूर्व: शं सुखं वदतीति शंवद: शं पूर्वेभ्य: संज्ञायां अच् = शं परमानन्द सुख की प्राप्ति के कारणों का भगवंत ने भव्यों के लिए कथन किया है। अत: वे शंवद हैं। संज्ञा अर्थ में अच् प्रत्यय हुआ है।

दान्त:= दम्यते स्म दान्त: दांत सांत पूर्ण: हस्तस्य ष्ट च्छन्न प्रज्ञप्ताश्चेनता

तप:क्लेशसह इत्यर्थ :=

मन को शांत करने वाले होने से आप दान्त हैं। अथवा दान्त, सांत पूर्ण अर्थ में हैं अत: जिसने हस्तादि क्रियाओं को या मन वचन काय को वश में किया है तथा तप के क्लेश को सहन करते हैं उनको भी दान्त कहते हैं।

दमी = दम: इन्द्रियनिग्रह: अस्यास्तीति दमी = प्रभु ने इन्द्रियों को वश किया। स्पर्शादिक विषयों के प्रति इन्द्रियों को नहीं जाने दिया। अत: प्रभु दमी हैं।

क्षान्तिपरायण: = क्षान्तौ क्षमायां परायण: तत्पर: स क्षांतिपरायण: क्षमापर इत्यर्थ:= आदि जिनेश्वर क्षमा धारण करने में तत्पर थे। अत: यह नाम यथार्थ है।

अधिप: = अधिकं पाति सर्वजीवान् रक्षतीति अधिप:, 'उपसर्गेत्वातोड:'। अथवा अधिकं पिबति केवलज्ञानेन लोकालोकं व्याप्नोति इति अधिप: = सर्व जीवों का प्रभु रक्षण करते हैं। अत: वे प्रभु अधिप हैं। प्रभु अधिक तथा लोकालोक का पान करते हैं अर्थात् अपने केवलज्ञान से लोकालोक को उन्होंने व्याप्त किया है।

परमानंद: = परम उत्कृष्ट: आनन्द: सौख्यं यस्येति परमानन्द:= उत्कृष्ट आनंद सुख प्रभु को प्राप्त हुआ है। अत: वे परमानन्द के धारक हैं, परमानन्द स्वरूप हैं।

परात्मज्ञ: = पर: उत्कृष्ट: केवलज्ञानोपेतत्वात् परात्मा अथवा परे एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ता: प्राणिन: आत्मा निश्चय-नयेन निजसमाना यस्य स परात्मा परात्मानं जानातीति, पर याने उत्कृष्ट अनन्तज्ञानादि केवलज्ञानयुक्त होने से परात्मज्ञ, अत: वे अनन्त ज्ञानादि स्वरूप को जानते हैं। या एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जो आत्मा प्राणी हैं वे निश्चयनय से मेरे समान शुद्ध स्वरूपी हैं, ऐसा जानने वाले प्रभु परात्मज्ञ कहलाते हैं।

परात्पर: = पृ पालनपूरणयो: पिपर्त्ति पृणाति वा पर: 'स्वरवृदृगमिग्रहा- मलनाम्यंत: गुण:' परात् अन्यस्मात् पर: परात्पर:-

वर्णागमो गवेन्द्रादौ, सिंहे वर्णविपर्यय:।
षोडशादौ विकारस्तु, वर्णनाश: पृषोदरे॥

इति नित्यवर्णागम: सार्वकालीन: इत्यर्थ:, अथवा परात् श्रेष्ठात् पर: श्रेष्ठं परात्पर: श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठ इत्यर्थ:। अथवा परात् कर्म - शत्रोरपर: अन्य: केवल: इत्यर्थ:=

'पृ' धातु पालन-पोषण अर्थ में है, अत: पालन-पोषण करने वाले को 'पर' कहते हैं, पालन-पोषण करने वालों में 'पर' श्रेष्ठ हो उसे 'परात्पर' कहते हैं।

अथवा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। अत: परात्पर हैं। अथवा 'पर' का अर्थ कर्मशत्रु है उन कर्मों से आप 'पर' रहित हैं, अकेले हैं, स्व रूप हैं अत: 'परात्पर' हैं।

त्रिजगद्वल्लभ:= त्रिजगतां वल्लभ: अभीष्ट: त्रिजगद्वल्लभ: = सर्व त्रैलोक्य प्रभु को प्रिय अभीष्ट मानते हैं इसलिए त्रिजगद्वल्लभ हैं।

अभ्यर्च्य:= अर्च् पूजायां अभ्यर्च्यते इति अभ्यर्च्य: पूज्य इत्यर्थ:= सब भक्तों द्वारा जिनेश्वर पूज्य हैं। अत: अभ्यर्च्य हैं।

त्रिजगन्मङ्गलोदय:= त्रिजगतां त्रिभुवनस्थितभव्यजीवानां मंगलानां पंचकल्याणानां उदय: प्राप्तिर्यस्मादसौ त्रिजगन्मंगलोदय:, तीर्थंकरनाम-गोत्रयोर्भक्तानां दायक: इत्यर्थ := तीन लोक में स्थित भव्यजीवों को मंगल स्वरूप प्रभु से पंचकल्याणों की प्राप्ति होती है। एवं भगवंत की आराधना से भक्तों को तीर्थंकर नाम कर्म की तथा उच्चगोत्र की प्राप्ति होती है। अत: प्रभु त्रिजगन्मङ्गलोदय स्वरूप हैं।

त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रि:= त्रिजगतां पति: त्रिजगत्पति: तेन पूज्यो अभ्यर्च्यौ अंघ्री चरणकमले यस्य स त्रिजगत्पति - **पूज्यांघ्रि:=** त्रैलोक्य के स्वामी धरणेन्द्र, चक्रवर्ती और सुरेन्द्रों के द्वारा प्रभु के चरण पूजनीय हैं। अत: उन्हें त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रि कहते हैं।

त्रिलोकाग्रशिखामणि: = त्रैलोक्यस्य अग्रं शिखरं त्रैलोक्याग्रं त्रैलोक्याग्रे शिखामणि: चूडारत्नं स त्रैलोक्याग्रशिखामणि:= त्रैलोक्य के अग्रभाग में मुक्ति-स्थान को प्राप्त प्रभु चूड़ामणि के समान हैं।

इस प्रकार सूरिश्रीमदमरकीर्त्ति विरचित जिनसहस्रनाम की टीका का आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 नवमोऽध्याय: 卐

(त्रिकालदर्श्यादिशतम्)

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत:।
सर्वलोकातिग: पूज्य: सर्वलोकैकसारथि: ॥१॥

पुराण: पुरुष: पूर्व: कृतपूर्वांगविस्तर:।
आदिदेव: पुराणाद्य: पुरुदेवोधिदेवता ॥२॥

अर्थ : त्रिकालदर्शी, लोकेश, लोकधाता, दृढव्रत, सर्वलोकातिग, पूज्य, सर्वलोकैकसारथि, पुराण, पुरुष, पूर्व, कृतपूर्वांगविस्तर, आदिदेव, पुराणाद्य, पुरुदेव, अधिदेवता ये पन्द्रहनाम प्रभु के सार्थक नाम हैं जो इस प्रकार हैं।

टीका - त्रिकालदर्शी = त्रिकालमतीतानागतवर्तमानं द्रष्टुमवलोकयितुं शीलमस्यास्तीति त्रिकालदर्शी 'ऋषिस्त्रिकालदर्शी' स्यादिति हलायुधनाम-मालायाम् = भूत, भविष्य और वर्त्तमान काल ऐसे तीन काल देखने का स्वभाव सामर्थ्य प्रभु में है। हलायुध कोश में ऋषि को त्रिकालदर्शी कहा है।

लोकेश: = लोकस्य त्रैलोक्यस्थितप्राणिगणस्य ईश: प्रभु: लोकेश:= लोक में रहने वाले सब प्राणिगण के आदिजिन स्वामी हैं।

लोकधाता = लोकस्य प्राणिगणस्य धाता स्रष्टा प्रतिपालको वा लोकधाता = प्रभु जगत् के समस्त प्राणियों के प्रतिपालक हैं, धाता, विधाता हैं इसलिए लोकधाता कहे जाते हैं।

दृढव्रत:= दृढं निश्चलं व्रतं दीक्षा यस्य, प्रतिज्ञा वा यस्य दृढव्रत:= आदि भगवान की दीक्षा एवं व्रतपालनप्रतिज्ञा निश्चल है अत: वे दृढव्रत हैं।

सर्वलोकातिग:= सर्वलोकान् त्रैलोक्यस्थितप्राणिगणान् अतिगच्छति अतिक्रम्य गच्छतीति सर्वलोकातिग: सर्वपुरोगामीत्यर्थ:= तीन लोक में स्थित जितने प्राणिसमूह हैं उनको अपने सर्वज्ञत्वादि गुणों से उल्लंघ कर आगे जाने वाले आप हैं।

पूज्य:= पूजायां नियुक्त: पूज्य:= भगवान आदिनाथ सर्वज्ञत्वादि गुणों से सर्व लोगों के द्वारा पूज्य हैं।

सर्वलोकैकसारथि:= सर्वलोकस्य एक एव नेता इत्यर्थ:= भगवंत ने तीनों लोकों में स्थित प्राणिसमूह को धर्मकार्य में प्रवृत्त करने में अद्वितीय नेता के पद को धारण किया। अत: आप मुख्य नेता हैं।

पुराण:= पुरे शरीरे परमौदारिककाये अनिति जीवति मुक्तिं यावद् गच्छति वा स पुराण:= पुर में अर्थात् परमौदारिक शरीर में मोक्ष-प्राप्ति के समय तक भगवान का जीवन रहता है। अत: वे पुराण हैं।

पुरुष:= पृ पालनपूरणयो: पृणाति पूरयति लोकानामुदरं ध्यानेनेति पुरुष: पृणाते क्रुष:, अथवा पुरुणि महति इंद्रादीनां पूजिते पदे शेते तिष्ठतीति पुरुष:= अपने शुक्लध्यान से प्रभु त्रैलोक्य के उदर को भर देते हैं, व्याप्त करते हैं अत: पुरुष हैं। अथवा पुरु महान् इन्द्रादि उनसे पूज्य ऐसे पद में प्रभु सदा रहते हैं। इसलिए वे पुरुष हैं।

पूर्व:= पूर्वतीति पूर्व: सर्वेषामाद्य इत्यर्थ:, आदि जिनेन्द्र सर्व तीर्थंकरों में प्रथम हैं, आद्य हैं अत: पूर्व हैं।

कृतपूर्वांगविस्तर:= कृतो विहित: पूर्वांगानां पूर्वं, पर्व्वांगं पर्वं, नयुतांगं, नयुतं, कुमुदं, कुमुदांगं, पद्माङ्गं पद्मं, नलिनाङ्गं नलिनं, कमलांगं, कमलं, तुटिटांगं तुटिटं, अटटांगं अटटं, अममांगं अममं, हा हा हू हू अंगं हाहाहूहू, विद्युल्लतांगं, विद्युल्लता, लतांगं लता, महालतांगं महालता, शीर्षप्रकंपितं, हस्तप्रहेलिका, अचलात्मकं, तेषां विस्तारोऽक गणना येन स कृतपूर्वांगविस्तर:, अथवा कृतो

विहित: पूर्वाणामुत्पादादीनां अंगानामाचारांगादीनां विस्तारो येन स: कृतपूर्वांगविस्तर: सर्वशास्त्रकर्त्ता इत्यर्थ: = आदिनाथ भगवन्त ने पूर्वांग से लेकर अचलात्मक संख्या तक विस्तार से अंकगणना का लोगों को उपदेश दिया। उन संख्याओं के नाम - पूर्वाङ्ग, पूर्व, पर्वांग, पर्व, नयुतांग, नयुत, कुमुदांग, कुमुद, पद्माङ्ग, पद्म, नलिनाङ्ग, नलिन, कमलांग, कमल, तुटिटांग, तुटिट, अटटांग, अटट, अममांग, अमम, हा हा हू हू अंग, हा हा हू हू, विद्युल्लताङ्ग, विद्युल्लता, लताङ्ग, लता, महालताङ्ग, महालता, शीर्षप्रकंपित, हस्तप्रहेलिका, अचलात्मक।

राजवार्तिक, हरिवंश पु. जम्बूद्वीपपण्णत्ति	तिलोयपण्णत्ति महापुराण	प्रमाणनिर्देश
८४ लाख वर्ष	८४ लाख वर्ष	१ पूर्वांग
८४ लाख पूर्वांग	८४ लाख पूर्वांग	१ पूर्व
	८४ पूर्व	१ पर्वांग
	८४ लाख पर्वांग	१ पर्व
८४ लाख पूर्व	८४ पर्व	१ नियुतांग
८४ लाख नियुतांग	८४ लाख नियुतांग	१ नियुत
८४ लाख नियुत	८४ नियुत	१ कुमुदांग
८४ लाख कुमुदांग	८४ लाख कुमुदांग	१ कुमुद
८४ लाख कुमुद	८४ कुमुद	१ पद्मांग
८४ लाख पद्मांग	८४ लाख पद्मांग	१ पद्म
८४ लाख पद्म	८४ पद्म	१ नलिनांग
८४ लाख नलिनांग	८४ लाख नलिनांग	१ नलिन
८४ लाख नलिन	८४ नलिन	१ कमलांग
८४ लाख कमलांग	८४ लाख कमलांग	१ कमल
८४ लाख कमल	८४ कमल	१ त्रुटितांग
८४ लाख त्रुटितांग	८४ लाख त्रुटितांग	१ त्रुटित
८४ लाख त्रुटित	८४ त्रुटित	१ अटटांग
८४ लाख अटटांग	८४ लाख अटटांग	१ अटट

८४ लाख अटट	८४ अटट	१ अममांग
८४ लाख अममांग	८४ लाख अममांग	१ अमम
८४ लाख अमम	८४ अमम	१ हाहांग
८४ लाख हाहांग	८४ लाख हाहांग	१ हाहा
८४ लाख हाहा	८४ हाहा	१ हूहू अंग
८४ लाख हू हू अंग	८४ हू हू अंग	१ हू हू
८४ लाख हू हू	८४ हू हू	१ लतांग
८४ लाख लतांग	८४ लाख लतांग	१ लता
८४ लाख लता	८४ लता	१ महालतांग
८४ लाख महालतांग	८४ महालतांग	१ महालता
	८४ महालता	१ श्रीकल्प
	८४ श्रीकल्प	१ हस्तप्रहेलित
	८४ हस्तप्रहेलित	१ अचलात्म

इसके बाद पल्य आदि समझना चाहिए।

इन संख्याओं का प्रारंभ इस प्रकार है-

एक परमाणु का एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक मन्द गति से जाने के काल को **समय** कहते हैं।

असंख्यात समय की एक **आवली** होती है।

असंख्यात आवली का एक उच्छ्वास $\frac{२८८०}{३७७३}$ सैकण्ड = १ उच्छ्वास या प्राण

सात उच्छ्वास का $\frac{५१८५}{५३९}$ सैकण्ड = १ स्तोक।

सात स्तोक = $\frac{३७३१}{७७}$ = १ लव

साढ़े अड़तीस लव = २४ मिनिट = १ नाली (घड़ी)

दो नाली की ४८ मिनिट या एक मुहूर्त।

१५१० निमेष=३७७३ उच्छ्वास (एक मुहूर्त)

तीन हजार सातसौ तहत्तर उच्छ्वास में एक समय कम को भिन्न अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं। आवली से एक समय अधिक को जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं और मध्यम असंख्यात भेद हैं।

तीस मुहूर्त्त (२४ घण्टे) अहोरात्रि है।

१५ अहोरात्रि का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक मास होता है। दो मास की एक ऋतु है। तीन ऋतु का एक अयन होता है। दो अयन का एक संवत्सर है। पाँच वर्ष का एक युग होता है। इसी प्रकार आगे की संख्या समझना चाहिए.

लक्ष वर्ष, पूर्वांग, पूर्व आदि।

इस प्रकार पूर्वादि अंगों की संख्या का विस्तार पूर्वक कथन किया है अत: इनका कृतपूर्वांगविस्तर नाम है।

अथवा - जिन्होंने आचारादि ११ अंग का तथा उत्पाद पूर्वादि १४ पूर्वों का विस्तारपूर्वक कथन किया है। अत: इनका नाम कृतपूर्वांगविस्तर है।

अथवा उत्पाद, अग्रायणी, आदि चौदह पूर्व तथा आचारांग, सूत्रकृताङ्गादि बारह अंगों का विस्तार से प्ररूपण आदि भगवन्त ने किया है अर्थात् सर्व शास्त्रों के कर्त्ता भगवान हैं।

आदिदेव:= आदि: सर्वभूतानां देवो दानादिगुणयुक्त:, आदिश्चासौ देवश्च आदिदेव:, यद् वा आदौ जगत्सृष्टे: प्रागपि स्वेन ज्योतिषा दीप्तिमान् आदिदेव:= सर्व प्राणियों के जो प्रथम देव हैं, जो दानादि गुणों से युक्त हैं, अर्थात् ऋषभनाथ आदिदेव हैं। या कर्मभूमि की उत्पत्ति होने के पूर्व अपनी ज्ञानज्योति से वे दीप्तिमान थे।

पुराणाद्य:= पुराणं महापुराणं तस्य आदौ भव आद्य: पुराणाद्य:= महापुराण के आरम्भ में आदिभगवान हुए हैं।

पुरुदेव:= पुरुर्महान् इन्द्रादीनामाराध्यो देव: पुरुदेव: अथवा पुरव: प्रचुरा: असंख्या देवा यस्य स पुरुदेव: असंख्यातदेवसेवित: इत्यर्थ: अथवा पुरो स्वर्गस्य देव: पुरुदेव: देवदेव इत्यर्थ := भगवान पुरु-बड़े जो इन्द्रादि देव उनके आराध्य

हैं। अर्थात् इन्द्रादि देवों से भगवान पूजनीय हैं इसलिए पुरुदेव हैं। या जिनकी आराधना करने वाले देव पुरु असंख्यात हैं ऐसे देव अर्थात् आदि भगवान असंख्यात देवों से सेवित हैं। अथवा पुरा प्रथमत: भगवान् स्वर्ग के देव थे इसलिए उनको पुरुदेव कहते हैं, भगवान देवों के भी देव थे, देवदेव थे।

अधिदेवता = देव एव देवता 'देवात् तल' अधिकदेवता अधिदेवता बहुदेव इत्यर्थ: शक्रादीनां परमाराध्या देवता अधिदेवता = आदिजिनेन्द्र सर्व देवों में मुख्य देव हैं इसलिए उन्हें अधिदेवता कहते हैं। इन्द्रादिक के द्वारा परम आराध्य देवता हैं अत: अधिदेवता हैं।

युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशक:।
कल्याणवर्ण: कल्याण: कल्य: कल्याणलक्षण: ।।

कल्याणप्रकृतिर्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मष:।
विकलंक: कलातीत: कलिलघ्न: कलाधर: ।।४।।

अर्थ : युगमुख्य, युगज्येष्ठ, युगादिस्थितिदेशक, कल्याणवर्ण, कल्याण, कल्य, कल्याणलक्षण, कल्याणप्रकृति, दीप्तकल्याणात्मा, विकल्मष, विकलंक, कलातीत, कलिलघ्न, कलाधर, ये चौदह नाम भगवान के सार्थक हैं।

टीका - युगमुख्य:= युगेषु कृतयुगेषु मुखमिव मुख्य: युगमुख्य: युगप्रधानमित्यर्थ:= कृतयुग में आदि प्रभु मुख्य हैं।

युगज्येष्ठ:= युगेषु कृतयुगेषु ज्येष्ठ: अतिशयेन वृद्ध: प्रशस्यो वा ज्येष्ठ: युगज्येष्ठ:= कृत युग में अतिशय श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ तथा अतिशय प्रशस्य माननीय हैं।

युगादिस्थितिदेशक:= युगानां कृतयुगानामादि: युगादि: तस्य स्थिति: स्थानं वर्तनोपायं क्षत्रियवैश्यशूद्राणामिति, दिशति उपदिशति य: स युगादिस्थिति-देशक:, कथक इत्यर्थ:= कृतयुग के आरम्भ में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों के जीवनोपायों का भगवान ने उपदेश किया और त्रिवर्णों की रचना प्रकट की।

कल्याणवर्ण:= कल्याणवत् सुवर्णवत् वर्ण: शरीराकारो यस्य स

कल्याणवर्ण: सुवर्णवर्ण इत्यर्थ:= कल्याण सुवर्ण के समान वर्ण शरीर की कान्ति जिनकी वे कल्याणवर्ण हैं।

कल्याण:= कल्यं नीरुजत्वमनिति प्राणितीति कल्याण: तथानेकार्थे 'कल्यं प्रभाते, मधुनि, सज्जे, दक्षे, निरामये' कल्य याने नीरोगता और आप कुशल नीरोगता से युक्त हो इसलिए कल्याण हो अथवा आपके द्वारा प्राणियों का कल्याण होता है या कल्याण को प्राप्त होते हैं इसलिए भी कल्याण हो।

कल्य:= कल्येषु कल्याणेषु कुशल: कल्य: तथा चोक्तं 'कल्यं कल्याणवाचिस्यात्' । अथवा कल संख्याने प्राणिन: कलयति संख्यातीति कल्य:= प्राणियों का कल्याण करने में प्रभु कुशल होने से कल्य नाम के धारक हुए अथवा प्राणियों की गणना प्रभु करते थे।

कल्याणलक्षण:= कल्याणं मंगलं चिह्नं लक्षणं यस्य स कल्याण - लक्षण: अरहंतमंगलमिति वचनात् 'कल्याणं हेम्नि मंगले' इत्यनेकार्थे = कल्याण मंगल वही है लक्षण चिह्न जिनका ऐसे प्रभु हैं, क्योंकि 'अरिहंत मंगलं' ऐसा वचन है। कल्याण शब्द के सुवर्ण और मंगल इन अर्थों का नानार्थ कोश में उल्लेख है।

कल्याणप्रकृति:= कल्याणा पुण्यप्रकृति: स्वभावो यस्येति कल्याण प्रकृति: पुण्यप्रकृतिरित्यर्थ:- कल्याण रूप पुण्यप्रकृति स्वभाव के धारक प्रभु हैं अर्थात् प्रभु के निरन्तर पुण्य प्रकृति का उदय रहता है।

दीप्तकल्याणात्मा= दीप्तं च कल्याणं च दीप्तकल्याणं देदीप्यमानं पुण्यं आत्मा यस्येति दीप्तकल्याणात्मा पुण्यात्मा इत्यर्थ:= देदीप्यमान पुण्य प्रकृति से युक्त है आत्मा जिनकी ऐसे प्रभु पुण्यात्मा दीप्त आत्मा हैं।

विकल्मष:= विगतं विनष्टं कल्मषं पापं यस्य स विकल्मष: निष्पाप: इत्यर्थ:= प्रभु के पापप्रकृतियों का नाश होने से वे पापरहित अर्थात् निष्पाप हैं।

विकलङ्क:= विगत: कलङ्कोऽपवादो यस्य स विकलंक: निष्कलंक: इत्यर्थ:= कलंक, अपवाद, उससे प्रभु रहित हैं अर्थात् विकलङ्क निष्कलंक हैं।

कलातीत:= कलां शरीरमतीत: शरीरबंधरहित: इत्यर्थ:= शरीर को कला कहते हैं, भगवान शरीर से अतीत थे, रहित थे। अत: वे कलातीत नाम से सर्वथा युक्त थे, वे शरीर के बन्ध से रहित थे।

कलिलघ्न:= कलिलं पापं हंतीति कलिलघ्न:- पाप को कलिल कहते हैं, उसका आपने विनाश किया। ज्ञानावरणादिक कर्म का नाम पाप है। उसका प्रभु ने विनाश किया, इसलिए कलिलघ्न नाम सार्थक हुआ।

कलाधर:= कलां द्वासप्ततिकला: धरतीति कलाधर := प्रभु बहत्तर कलाओं के धारक थे और उन्होंने अपने भरतादिक सौ पुत्रों को उन कलाओं का ज्ञान दिया था अत: वे कलाधर नाम से शोभायमान थे।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्‌बन्धुर्जगद्विभु: ।
जगद्धितैषी लोकज्ञ: सर्वगो जगदग्रज: ॥५॥

चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचर: ।
सद्योजात: प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभ: ॥६॥

अर्थ : देवदेव, जगन्नाथ, जगद्‌बन्धु, जगद्विभु, जगद्धितैषी, लोकज्ञ, सर्वग, जगदग्रज, चराचरगुरु, गोप्य, गूढात्मा, गूढगोचर, सद्योजात, प्रकाशात्मा, ज्वलज्ज्वलनसप्रभ, ये पन्द्रह नाम प्रभु के सार्थक हैं।

टीका : देवदेव:= देवानामिन्द्रादीनामाराध्यो देव: देवदेव: अथवा देवानां राज्ञां देव: राजा देवदेव: राजाधिराज: इत्यर्थ: अथवा देवानां मेघकुमाराणां देव: परमाराध्यो देवदेव:= देवों के अर्थात् इन्द्रादिकों के प्रभु आराध्य देव थे, अथवा देवों के राजाओं के भी देव थे, राजा थे अत: राजाधिराज थे या देवों के मेघकुमार देवों के प्रभु देव थे आराध्य थे। अत: देवदेव थे।

जगन्नाथ:= जगतां त्रिलोकानां नाथ: जगन्नाथ:= भगवान अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकों के महास्वामी हैं।

जगद्‌बन्धु:= जगतां बन्धु: बांधव: जगद्‌बंधु: = प्रभु त्रिलोक के हित-कर्त्ता बांधव मित्र बन्धु हैं।

जगद्धितैषी = जगतां प्राणिनां हितमिच्छतीति जगद्धितैषी = जगत् के प्राणियों का हित हो ऐसी इच्छा प्रभु रखते हैं।

लोकज्ञ:= अनन्तानन्ताकाशबहुमध्य-प्रदेशे घनोदधिघनवाततनु-वाताभिधानवातत्रयवेष्टितोऽनादिनिधनोऽकृत्रिम-निश्चलासंख्यातप्रदेशो लोकोऽस्ति लोकं जानातीति लोकज्ञ:= यह लोक - जगत् अनन्तानन्ता-काश के बहुमध्य भाग में घनोदधि, घनवात तथा तनुवात, इन तीन वातवलयों से वेष्टित है और अनादि अविनाशी है, अकृत्रिम, निश्चल तथा असंख्यात प्रदेशवाला है। इस प्रकार लोक का स्वरूप प्रभु जानते हैं अत: वे लोकज्ञ हैं।

सर्वग:= सर्वं गच्छति जानातीति सर्वग:= सर्व वस्तुओं को भगवान जानते हैं अत: वे सर्वग हैं, सर्वज्ञ हैं।

जगदग्रज:= जगतां अग्रं जगदग्रं, त्रैलोक्यशिखरं, जगदग्रे जातो जगदग्रज:= जगत् के अग्रभाग - लोकशिखर - मोक्षस्थान वहाँ प्रभु उत्पन्न हुए, विराजमान हुए, अत: जगदग्रज हैं।

चराचरगुरु:= चरा मनुष्यादय: अचरा अमनुष्यादय: तेषां गुरु: शास्ता स्वरूप - कथक:- चर-त्रसजीव, द्वीन्द्रिय जीव से पंचेन्द्रिय तक चार गतियों के मनुष्य, देव, नारकी और पशु तथा अचर-स्थावरजीव पृथिव्यादिक, इनके आदि भगवान् गुरु हैं, इनको हितोपदेश देते हैं तथा इनका स्वरूप कहते हैं अत: चराचरगुरु हैं।

गोप्य:= गुप्यते इति गोप्य: तथानेकार्थे - **'गोप्यौ दासेरगोप्तव्यौ'** = प्रभु का स्वरूप गुप्त है, गोप्य है। हम अज्ञ लोक उसे नहीं जानते हैं।

गूढात्मा= गूह्यते स्म गूढ: गोप्य: संकलित: आत्मा यस्य स गूढात्मा = भगवान का आत्मस्वरूप गूढ है, अतीन्द्रिय है।

गूढगोचर:= गूढानि गोप्यानि संवृत्तानि गोचाराणि इन्द्रियाणि यस्य स गूढगोचर: गूढेन्द्रिय इत्यर्थ:= प्रभु की स्पर्शनादि इन्द्रियाँ संवृत हुईं क्योंकि, वे त्रैलोक्य के अनन्त पदार्थों को उनके गुणपर्यायों सहित जानते हैं। अत: उनकी इन्द्रियों का व्यापार संवृत हुआ है। केवलज्ञान के द्वारा वे अनन्तपदार्थों को जानते हैं।

सद्योजात:= सद्यस्तत्कालं स्वर्गात्प्रच्युत्य मातुर्गर्भे उत्पन्नत्वात् सद्योजात: उक्तं च -

सद्योजातः श्रुतिं बिभ्रत् स्वर्गावतरणोच्युतः।
त्वमद्य वामतां धत्से कामनीयकमुद्वहन्॥

प्रभु की स्वर्ग से प्रच्युति होते ही माता के गर्भ में प्रवेश हो जाता है। अतः वे सद्यः तत्कालजातः, माता के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं ऐसा कहना योग्य है। इस विषय में ऐसा कहा है- हे प्रभो ! जब आपने स्वर्ग से चयकर माता के गर्भ में प्रवेश किया तब इन्द्र ने सारी बात जान ली और यह सर्व विदित हो गई तब आपको सद्योजात नाम प्राप्त हुआ और आप अतिशय उत्तम सौन्दर्य को धारण करने लगे इसलिए आपने वामदेव नाम को भी धारण किया।

प्रकाशात्मा = प्रकाशनं प्रकाशः प्रकाश उद्योतः आत्मा यस्य स प्रकाशात्मा = जिनकी आत्मा प्रकाश स्वरूप तेजस्वी हुई, उद्योत करने वाली हुई ऐसे प्रभु प्रकाशात्मा कहे गये।

ज्वलज्ज्वलनसप्रभः:= ज्वलतीति ज्वलन् स चासौ ज्वलनः वैश्वानरः ज्वलत् ज्वलनः ज्वलनस्य समाना प्रभा कान्तिर्यस्य स ज्वलज्ज्वलनसप्रभः:= आपकी प्रभा, कांति ज्वालायुक्त अग्नि के समान होने से, हे प्रभो, आप ज्वलज्ज्वलनसप्रभ इस नाम के धारक हुए हैं।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः॥७॥
तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः।
संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः॥८॥

अर्थ : आदित्यवर्ण, भर्माभ, सुप्रभ, कनकप्रभ, सुवर्णवर्ण, रुक्माभ, सूर्यकोटिसमप्रभ, तपनीयनिभ, तुंग, बालार्काभ, अनलप्रभ, संध्याभ्रबभ्रु, हेमाभ, तप्तचामीकरच्छवि, ये १४ नाम प्रभु के सार्थक नाम हैं जो इस प्रकार हैं।

टीका = आदित्यवर्णः = आदित्यवद्वर्णो यस्य स आदित्यवर्णः दिवाकरसहस्रसमप्रभः इत्यर्थः= प्रभु की शरीरकान्ति जिसको भामण्डल कहते हैं, वह सहस्रसूर्यों के सदृश है इसलिए प्रभु आदित्यवर्ण कहे जाते हैं।

भर्माभ:= भर्मण: स्वर्णस्य आभा छविर्यस्य स भर्माभ:= प्रभु की आभा स्वर्ण की कांति सदृश कांति वाली थी।

सुप्रभ:= शोभना चन्द्रार्ककोटिसमा नेत्राणां प्रिया च प्रभा द्युतिमंडलं यस्य स सुप्रभ:= करोड़ों चन्द्र-सूर्य की शोभा सदृश होकर भी नेत्रों को आह्लादित करने वाली प्रियप्रभा अर्थात् भामण्डल जिनका है ऐसे प्रभु अपने सुप्रभ नाम को अन्वर्थ करते हैं।

कनकप्रभ:= कनकस्य हेम: प्रभा कांतिर्यस्य स कनकप्रभ:= प्रभु स्वर्ण के समान कांति धारण करने वाले हैं।

सुवर्णवर्ण:= सुवर्णस्य वर्ण आकारो यस्य स सुवर्णवर्ण:= सुवर्णवर्ण।

रुक्माभ:= सुवर्ण, रुक्म ये दोनों शब्द सुवर्ण वाचक हैं अर्थात् प्रभु की देहकान्ति सुवर्ण के समान है, ऐसा ही अर्थ सुवर्णवर्ण और रुक्माभ इन दोनों शब्दों का समझना चाहिए।

सूर्यकोटिसमप्रभ:= सूर्यकोटिसमा सदृशी प्रभा यस्य स सूर्यकोटिसमप्रभ:, सूर्य की प्रभा याने कांति समान जिनकी कांति है।

तपनीयनिभ:= तपनीयस्य निभ: सदृश: तपनीयनिभ:= तपनीय सुवर्ण, निभ: सदृश सोने के समान कान्तिमान् प्रभु हैं।

तुंग:= तुजति दीर्घमादत्ते तुङ्ग उन्नत: विशिष्टफलदायक इत्यर्थ:= उच्च, उन्नत, विचारयुक्त अर्थात् प्रभु भक्तों को विशिष्ट फल देने वाले हैं।

बालार्काभ:= बालश्चासावर्क: बालार्क: बाल इव अर्क: बालार्कस्य प्रभा कांतिर्यस्येति बालार्काभ:= प्रभु बालसूर्य के समान कांति वाले हैं।

अनलप्रभ:= 'अन च' अनिति प्राणितीति अनल:, अनलस्य ज्वलनस्य प्रभा यस्येति अनलप्रभ: कर्मशत्रूणामुच्चाटकत्वादित्यर्थ:= अनल याने अग्नि की प्रभा, कान्ति के समान कांतिवाले प्रभु हैं। अथवा कर्म शत्रुरूपी ईंधन को जलाने वाले होने से अग्नि के समान हैं।

सन्ध्याभ्रबभ्रु:= विप्रा: सम्यक् ध्यायंति इति सन्ध्या, आप्नोति सर्वादिश: इति अभ्रं, बिभर्त्ति शोभां बभ्रु: संध्याया: अभ्रं मेघ: संध्याभ्रवत् बभ्रु: कपिलपिंगल:

संध्याभ्रबभ्रुः तथाचोक्तं - 'विपुले, नकुले विष्णौ', 'बभ्रुः स्यात् पिङ्गले त्रिषु' संध्याकालमेघवत् पिंगलः इत्यर्थः।

अर्थ : ब्राह्मण लोक जिसका समीचीन रूप से ध्यान करते हैं अतः संध्या कहलाती है। अथवा सन्धि काल को प्राप्त होने से चारों दिशाएँ सन्ध्या कहलाती हैं। सन्ध्याकालीन बादल के समान शोभा को धारण करने वाले होने से 'सन्ध्याभ्रबभ्रु कहलाते हैं। कपिल, पिंगल के समान वर्ण वाले हैं।

अनेकार्थ कोश में विपुल, नकुल, विष्णु, बभ्रु शब्द में सन्ध्या का कथन है। तीनों सन्ध्या काल के मेघ के समान पिंगल वर्ण के हैं।

हेमाभः= हिनोति वर्द्धते अनेन हिमन् हेमं च हेम्नं च, हेमस्य वा आभा यस्येति हेमाभः सुवर्ण के समान पीत कांति प्रभु ने धारण की थी। अतः हेमाभ हैं।

तप्तचामीकरच्छविः= चामीकराकरे भवं चामीकरं स्वर्णं तप्तं उत्कलितं चामीकरं तद्वच्छविः शोभा यस्येति तप्तचामीकरच्छविः = अग्नि से संतप्त हुए सोने के समान प्रभु के देह का कान्ति - मण्डल होने से प्रभु अग्नितप्त सुवर्ण समान कांति धारण करते हैं।

निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥

द्युम्नाभो जातरूपाभो तप्तजांबूनदद्युतिः।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥

अर्थ : निष्टप्तकनकच्छाय, कनत्कांचनसन्निभ, हिरण्यवर्ण, स्वर्णाभ, शातकुंभनिभप्रभ, द्युम्नाभ, जातरूपाभ, तप्तजाम्बूनदद्युति, सुधौतकलधौतश्री, प्रदीप्त, हाटकद्युति, ये ग्यारह नाम प्रभु के सार्थक नाम हैं।

टीका : निष्टप्तकनकच्छायः= निष्टप्तं दीप्तं कनकं जातरूपं निष्टप्तकनकं तद्वच्छाया शोभा यस्येति निष्टप्तकनकच्छायः= कनक सुवर्ण का नाम है और निष्टप्त तपाये हुए सुवर्ण का नाम है अतः तपाये हुए शुद्ध सुवर्ण के समान छाया (कान्ति) वाले होने से निष्टप्तकनकच्छाय नाम प्रभु का है।

कनत्कांचनसन्निभ:= कनञ्च दीप्तं च कांचनं जाम्बूनदं कनत्कांचनं तद्वत् सन्निभ: सदृश: स कनत्कांचनसन्निभ: = चमकते हुए सोने के समान है शोभा जिनकी ऐसे प्रभु।

हिरण्यवर्ण:= हिरण्यं रुक्मं तद्वद्वर्णो यस्येति हिरण्यवर्ण:= हिरण्य याने सोना इसके समान है वर्ण रंग जिसका उसे हिरण्यवर्ण कहते हैं।

सुवर्णाभ:= स्वर्णं गाङ्गेयं तद्वदाभा छविर्यस्येति स्वर्णाभ:= सुवर्ण के समान प्रभु की देह छवि है।

शातकुम्भनिभप्रभ:= शतकुंभगिरौ भवं शातकुंभं गाङ्गेयं तद्वद्निभा सदृशी प्रभा यस्येति शातकुंभनिभप्रभ:। सदृक्, समान, सदृश:, सदृक्ष:, प्रख्य:, प्रकाश:, प्रतिम:, प्रकार:, तुल्य:, सम:, सन्निभ: इत्यभिन्ना: शब्दा: प्रयोगेषु वेष्टणीया: = शतकुंभ नामक पर्वत पर उत्पन्न हुए स्वर्ण के समान प्रभु की प्रभा सुहावनी लगती है। सदृक्, समान, सदृश, सदृक्ष, प्रख्य, प्रकाश, प्रतिम, प्रकार, तुल्य, सम, सन्निभ ये सब शब्द एकार्थ वाचक अर्थात् समान अर्थ के वाचक हैं। जैसे हेमसदृक्, स्वर्ण सदृश, हाटकतुल्य इत्यादि इनका सबका अर्थ सोने के समान ही होगा। अत: भगवान शुद्ध सुवर्ण के समान कान्ति वाले हैं।

द्युम्नाभ:= "द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृच्छं धनं वसु। इत्यमरकोशे द्युम्नमर्थ रैर्विभवानरिहिरण्यं द्रविणं॥" द्रव्य, वित्त, स्वापतेय, रिक्थ, ऋच्छ, धन, वसु, द्युम्न, ये धन या सुवर्ण के नाम हैं, उस सुवर्ण के समान कान्ति वाले हैं अत: द्युम्नाभ हैं।

जातरूपाभ:= जातरूपं कर्बुर: तद्वदाभा यस्येति स जातरूपाभ:= सुवर्ण को जातरूप कहते हैं, उसकी तरह है आभा जिनकी, उन्हें जातरूपाभ कहते हैं।

दीप्तजाम्बूनदद्युति:= दीप्तं जाम्बूनदं कार्त्तस्वरं दीप्तजाम्बूनदं तद्वद्द्युति: कांतिर्यस्येति स दीप्तजाम्बूनदद्युति:= तपे हुए जाम्बूनद - याने सोने के समान है कांति जिसकी ऐसे प्रभु को दीप्त जाम्बूनदद्युति कहते हैं।

सुधौतकलधौतश्री:= सुधौतं निर्मलं कलधौतं रूप्यं सुधौतकलधौतं तस्य श्रीः शोभा यस्येति सुधौतकलधौतश्रीः 'रजतं कलधौतं च रूप्यं तारं च कथ्यते' हलायुधनाममालायां = निर्मल चांदी के समान है श्री (शोभा) जिसकी अतः सुधौतकलधौतश्री भगवान का नाम है।

हलायुध नाममाला में ''रजत, कलधौत, रूप्य, तार ये निर्मल चांदी के नाम हैं। अतः चांदी की निर्मल कान्ति के समान उज्ज्वल होने से भगवान सुधौतकलधौतश्री हैं।

प्रदीप्त:= दीपा दीप्तौ दीपः प्रपूर्वः प्रदीप्यतेस्म: प्रदीप्तः 'क्तः नडीड्श्वीदनुबंधवेटामपतनिष्कुषोर्नेट्।' दीप्तवानित्यर्थः = 'दीपा' धातु दीप्ति अर्थ में है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'दीपा' धातु से 'प्रदीप' शब्द बना है। इसका अर्थ है। भगवान बहुत कान्ति वाले हैं।

हाटकद्युति:= हाटकं महारजतं तद्वत् द्युतिर्यस्येति स हाटकद्युतिः। स्वर्णरूपं द्रव्यमित्यादिकं परमेश्वरस्यांशमिति भावार्थः= हाटक नाम सुवर्ण का है अतः तप्तायमान सुवर्ण के समान कान्ति वाले हैं।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः ।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ।।११।।
शांतिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शांतिकृच्छांतिः कांतिमान् कामितप्रदः ।।१२।।

अर्थ : शिष्टेष्ट, पुष्टिद, पुष्ट, स्पष्ट, स्पष्टाक्षर, क्षम, शत्रुघ्न, अप्रतिघ, अमोघ, प्रशास्ता, शासिता, स्वभू, शांतिनिष्ठ, मुनिज्येष्ठ, शिवताति, शिवप्रद, शान्तिद, शान्तिकृत, शान्ति, कान्तिमान्, कामितप्रद ये २१ नाम प्रभु के सार्थक हैं जो इस प्रकार हैं।

टीका - शिष्टेष्टः = शिष्टानामिन्द्रचक्रवर्तिधरणेन्द्राणामिष्टः अभीष्टः वल्लभः शिष्टेष्टः= शिष्ट अर्थात् सज्जन ऐसे जो इन्द्र, चक्रवर्त्ती, धरणेन्द्रादिक महाभव्य आदि पर प्रभु की भव्य प्रीति है वे उनको वल्लभ मानते हैं। अतः भगवान शिष्टेष्ट हैं।

पुष्टिद:= पुष्टिं पोषणं उदरदां पूर्तिं ददातीति पुष्टिद:= प्रभु भव्यों को उदरपोषणरूप पुष्टि देने वाले हैं क्योंकि असि, मसि, कृषि आदि का व्यवहार प्रभु ने ही बताया था।

पुष्ट:= पुष्यति स्म पुष्ट: पूर्व सिद्ध समान ज्ञान दर्शन सुख वीर्याद्यनंतगुणै: सबल:, उक्तं च-

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलं।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयो:॥

प्रभु अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्यादिक अनन्तगुणों से सिद्ध समान पुष्ट हैं, सबल हैं। अत: वे पुष्टनाम से कहे जाते हैं। लोकोक्ति भी है-

जिनके पास समान धन है, जिनका कुल समान है उनमें मैत्री तथा विवाह होता है। परन्तु जो समान पुष्ट नहीं हैं अर्थात् एक धनसंपन्न तथा कुलसम्पन्न है और दूसरा धन, कुल सम्पन्न नहीं है उन दोनों में मैत्री, विवाह नहीं होता। अत: आदिप्रभु अनन्तज्ञानादि गुणों से पुष्ट हैं अत: दोनों समान हैं।

स्पष्ट:= 'स्पर्शो वा घनस्पर्शनयो: स्पृश्यते स्म स्पष्ट: प्रकट इत्यर्थ: विशदं, प्रकटं, स्पष्टं, प्रकाशं स्फुटमिष्यते' इति हलायुधे = विशद, प्रकट, स्पष्ट, प्रकाश और स्फुट को स्पष्ट कहते हैं अत: आप प्रकट हैं, स्पष्ट हैं, विशद हैं, प्रकाशयुक्त हैं।

स्पष्टाक्षर:= स्पष्टानि व्यक्तानि श्रोत्रमन: प्रियाण्यक्षराणि वर्णा यस्येति स्पष्टाक्षर:। तथानेकार्थे –

अक्षरं स्यादपवर्गे परमब्रह्मणोरपि।
गगने धर्मतपसोरध्वरे मूलकारणे॥

मोक्ष और परमब्रह्म जो अविनाशी हैं, उनका क्षरण नाश नहीं होता अत: वे अक्षर हैं। आकाश, धर्म, तप, यज्ञ और मूलकारण ये भी अक्षर शब्द के वाच्य हैं, यहाँ भगवंत की वाणी स्पष्टाक्षरयुक्त और प्रिय थी, इस अर्थ की अपेक्षा है।

क्षम:= क्षमूषसहने क्षम्यते सोढुं परीषहान् क्षम:। 'क्षम: शक्त:' हलायुधे = प्रभु परिषह सहन करने में समर्थ हैं।

शत्रुघ्न:= शत्रून् हंतीति शत्रुघ्न:। 'अमनुष्य-कर्तृकेपिचटक्' अपि शब्द-बलात् संजातसूर इत्यर्थ:= कर्म शत्रुओं का नाश भगवन्त ने किया।

अप्रतिघ:= अविद्यमान: प्रतिघ: क्रोधो यस्य स अप्रतिघ:= प्रतिघ याने क्रोध, प्रभु क्रोध रहित थे अत: उन्हें अप्रतिघ नाम प्राप्त है।

अमोघ:= मुह्य वैचित्त्ये मुह्यते मोघ:, मुहेर्गुणश्च मुहे: क प्रत्ययो भवति हस्य घो गुणश्च, न मोघो विफल: अमोघ: सफल: इत्यर्थ:= मोघ - विफल, न मोघ: अमोघ: भगवान का तपश्चरण विफल नहीं हुआ, इससे उन्हें केवलज्ञान रूप फल प्राप्त हुआ, अत: वे केवलज्ञान रूप फल प्राप्ति से अमोघ - सफल हुए।

प्रशास्ता = प्रशास्ति विनयवरान् धर्मं शिक्षयति इति प्रशास्ता - प्रभु ने विनेयजनों को - भव्यों को धर्म के पाठ पढ़ाये। अत: वे प्रशास्ता हैं।

शासिता = शासु अनुशिष्टौ, शास्तीति शासिता रक्षक इत्यर्थ:= प्रभु ने संसाररूप अपाय से भव्यजनों को बचाया। अत: वे शासिता - रक्षक हैं।

स्वभू:= स्वेन आत्मना भवति वेदितव्यं वेत्तीति स्वभू: अथवा स्वस्य धनस्य भू: स्थानं स्वभू: भक्तानां दारिद्र्यविनाशक इत्यर्थ: अथवा सुष्ठु अतिशयेन न भवतीति पुनर्भवेस्वभू:= परोपदेश के बिना अपना आत्मस्वरूप भगवंत ने प्राप्त किया तथा गुरूपदेश के बिना जीवादि पदार्थों का स्वरूप जान लिया। अत: वे स्वभू हैं। अथवा स्व की, धन की भू-भूमि स्थान प्रभु हैं। प्रभु भक्तों के दारिद्र्य का विनाश करते हैं। या प्रभु सु - अतिशयपूर्वक, पुन: संसार में अभू - उत्पन्न नहीं होते हैं। इसलिए वे स्वभू हैं।

शांतिनिष्ठ:= कामक्रोधाद्यभाव:, शांति: तस्यां निष्ठा क्रिया यथाख्यातं चारित्रं यस्येति स शांतिनिष्ठ:- काम, क्रोधादिकों का अभाव होना ही शान्ति का स्वरूप है। प्रभु ने उसमें क्रिया की अर्थात् प्रभु यथाख्यात चारित्र में तत्पर हुए हैं। इसलिए वे शान्तिनिष्ठ हैं।

मुनिज्येष्ठः= मुनिषु अतिशयेन वृद्धः प्रशस्यो वा ज्येष्ठः मुनिज्येष्ठः= मुनियों में प्रभु, अतिशय वृद्ध ज्येष्ठ हैं इसलिए इन्हें मुनिज्येष्ठ कहते हैं।

शिवतातिः= शिवस्य निर्वाणस्य तातिः चिन्ता यस्य स शिवतातिः, शिवं तनोति वा शिवतातिः तथोक्तं हलायुधनाममालायां - क्षेमंकरोरिष्टतातिः शिवतातिः शिवंकरः= शिव की, मोक्ष की, ताति - चिन्ता जिनको है वह शिवताति हैं।

शिवप्रदः= शिवं परमकल्याणं प्रददातीति शिवप्रदः= शिव-परमकल्याण उसे भक्तों को जो देते हैं वे शिवप्रद हैं।

शांतिदः= शांतिं कामक्रोधाद्यभावं ददातीति शांतिदः- प्रभु ने काम-क्रोधादि के अभाव रूप शांति भव्यों को दी। अतः वे शांतिद हैं।

शान्तिकृत्= शांतिं क्षुद्रोपद्रवविनाशं करोतीति शांतिकृत् = क्षुद्रों के द्वारा किये गये उपद्रवों का नाश भगवान करते हैं। अतः वे शान्तिकृत् नाम से युक्त हैं। .

शान्तिः= शाम्यति सर्वकर्मक्षयं करोतीति शान्तिः तिक्त्व तौ च संज्ञायामाशिषि संज्ञायां पुल्लिंगे तिक् प्रत्ययः= भगवान ने सर्वकर्मों का क्षय किया।

कान्तिमान्= कांतिः शोभाऽस्यास्तीति कांतिमान् = कांति - शोभा, अन्तरंग की अनन्तज्ञानादि शोभा, बहिरंग समवसरण रूप शोभा, तथा स्वशरीर की भामण्डलरूप शोभा को प्रभु ने धारण किया। अतः वे कांतिमान हैं।

कामितप्रदः= कामितं वाञ्छितं प्रददातीति कामितप्रदः= भगवान कामित वांछित देते हैं। अतः वे कामितप्रद हैं।

श्रियांनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थविरः स्थास्नुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

अर्थ : श्रियांनिधि, अधिष्ठान, अप्रतिष्ठ, प्रतिष्ठित, सुस्थिर, स्थविर, स्थास्नु, प्रथीयान्, प्रस्थित, पृथु ये दस नाम आपके सार्थक नाम हैं।

टीका - श्रियांनिधिः= श्रियां केवलज्ञानलक्ष्मीणां निधिः स्थानं श्रियांनिधिः= भगवान केवलज्ञान निधि के आश्रय स्थान हैं।

अधिष्ठानं = अधिष्ठीयते अधिष्ठानम् आविष्टलिंगत्वान्नपुंसकत्वं। अधिष्ठानं - प्रभवेध्यासने नगरचक्रयोरित्यनेकार्थे = प्रभव, अध्यासन, नगर, चक्र आदि अनेक अर्थ में आता है, भगवान प्रभावशाली हैं; तीन लोक रूपी नगर के स्वामी हैं, पुण्यचक्र के सम्पादक हैं अतः अधिष्ठान हैं।

अप्रतिष्ठः= प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठीयतेऽनया प्रतिष्ठा न प्रतिष्ठा स्थापना यस्येति अप्रतिष्ठः अगुरुरित्यर्थः= प्रतिष्ठापना, स्थापना की जाती है उसे प्रतिष्ठा कहते हैं, अतद्गुण वाली वस्तु में किसी दूसरे गुणों का आरोपण करना प्रतिष्ठा है। जैसे पत्थर की मूर्ति में अर्हद् के गुणों का आरोपण करना। वह प्रतिष्ठा जिसमें न हो, स्वयं के गुण हो उसको अप्रतिष्ठ कहते हैं।

प्रतिष्ठितः= प्रतिष्ठा स्थापना संजाता यस्येति प्रतिष्ठितः तारकितादि दर्शनात् संजातेऽर्थे 'इत' च प्रत्ययः स्थैर्यवा - नित्यर्थ := प्रतिष्ठा, स्थापना जिसकी की गई है वह प्रतिष्ठित कहलाता है। प्रभुवर ने अपने गुणों को अपने द्वारा अपने में विकसित करके प्रतिष्ठित किया है अतः वे प्रतिष्ठित हैं।

सुस्थिरः= योगनिरुद्धे सति उद्भासनेन पद्मासनेन वा सुतिष्ठति निश्चलो भवतीति सुस्थिरः, 'तिमिरुधिमदि मंदिचदि बंधि रुचि सुषिभ्यः किर' इत्यधिकारे अजिरादयः 'अजिरशिशिर-शिथिरस्थिरबदिराः' इत्यनेन सूत्रेण किरप्रत्ययान्तो निपातः= जब योगनिरोध हो जाता है तब भगवंत उद्भासन से या पद्मासन से निश्चल हो जाते हैं, सुस्थिर (भली प्रकार स्थिर हो जाते हैं।)

स्थविरः= तिष्ठत्येवंशीलः स्थविरः । 'कसिपिसिभासीशस्थाप्रमदां च वरः प्रत्ययः' = जो अचल, अविनाशी रूप से स्थिर हो गये हैं अतः स्थविर कहलाते हैं।

स्थास्नुः= तिष्ठतीत्येवंशीलो स्थास्नुः नाम्लास्थाक्षिपं चिपरै मूलां स्नुः= स्थानशील हैं, अपने आप में स्थिर हैं, जिनके आत्मप्रदेश अकंप हैं अतः स्थास्नु हैं।

प्रथीयान्= अतिशयेन पृथु प्रथीयान् - अतिशय महान् होने से प्रभु प्रथीयान् कहे जाते हैं।

प्रथित: = प्रथ प्रख्याने प्रथनं प्रथा 'षानुबंधभिदादिभ्य: स्त्वङ् घटादय: षानुबंधा: प्रथा प्रसिद्धि: संजाता यस्येति प्रथित: तारकितादिदर्शनात् संजातेऽर्थे इत् च प्रत्यय: जगद्विख्यात इत्यर्थ:- अतिशय रूप से विख्यात प्रख्यात होने से प्रथित कहलाते हैं।

पृथु: = प्रथ प्रख्याने रजुतर्कुवल्गुफल्गुशिश्रुरिपुपृथुलघव : एते उ प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

यह शब्द प्रथ (प्रख्यात अर्थ में) धातु से बना है, 'उ' निपात से लगा है अत: जो अत्यन्त विस्तरित है, अनन्त गुणों से व्याप्त है अत: पृथु हैं।

इस प्रकार श्रीमदमरकीर्त्ति विरचित जिनसहस्रनाम टीका में नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 दशमोऽध्याय: 卐

(दिग्वासादिशतम्)

दिग्वासा वातरसनो निर्ग्रन्थेशो दिगम्बर: ।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुह: ॥१॥

तेजोराशिरनन्तौजा: ज्ञानाब्धि: शीलसागर: ।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्त्तिस्तमोपह: ॥२॥

अर्थ : दिग्वासा, वातरसन, निर्ग्रन्थेश, दिगम्बर, निष्किंचन, निराशंस, ज्ञानचक्षु, अमोमुह, तेजोराशि, अनंतौजा, ज्ञानाब्धि, शीलसागर, तेजोमय, अमितज्योति, ज्योतिमूर्ति, तमोपह, ये पन्द्रह नाम प्रभु के सार्थक नाम हैं।

टीका : दिग्वासा दिशो वासांसि वस्त्राणि यस्य स दिग्वासा

नग्नाटो दिग्वासा: क्षपणश्रमणश्च जीवको जैन: ।
आजीवो मलधारी निर्ग्रन्थ: कथ्यते सद्भि: ॥

इति हलायुधे = पूर्वादि दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं उसे दिग्वासा कहते हैं। हलायुध कोश में ये नाम हैं-

नग्नाट, दिग्वासा, क्षपण, श्रमण, जीवक, जैन, आजीव, मलधारी और निर्ग्रन्थ ये दिगम्बर जैन साधु के नाम हैं।

वातरसन:= वात एव रसना कटिसूत्रं यस्येति वातरसन:।

"कलाप: सप्तकी कांची मेखला रसना तथा। कटिसूत्रं सा रसना" इति हलायुधे = वायु ही है रसना याने कटिसूत्र जिनका ऐसे प्रभु को वातरसन कहते हैं। कलाप, सप्तकी, कांची, मेखला, रसना और कटिसूत्र ये कमर में बाँधने वाले आभूषणों के नाम हैं।

निर्ग्रन्थेश:= ग्रन्थात् चतुर्विंशतिपरिग्रहात् निष्क्रान्तो निर्ग्रन्थ: तस्य ईश: स्वामी निर्ग्रन्थेश:। चौबीस परिग्रहों से रहित ऐसे मुनियों के ईश होने से उन्हें निर्ग्रन्थेश कहते हैं।

दिगम्बर:= दिशोऽम्बराणि वस्त्राणि यस्य स दिगम्बर: नग्न: इत्यर्थ:। उक्तं च निरुक्ते -

यो हताश: प्रशांताशस्तमाशाम्बरमुचिरे।
य: सर्वसंगसन्त्यक्त: स नग्न: परिकीर्तित:॥

दिशा ही है अम्बर याने वस्त्र जिसके वह दिगम्बर अर्थात् नग्न ऐसा अर्थ होता है। कहा भी है- जिसने धन-धान्य, स्त्री-पुरुषादिकों की प्राप्ति होवे ऐसी आशायें नष्ट की हैं उसे प्रशान्ताश कहते हैं। तथा जिसने सर्व परिग्रहों का त्याग कर दिया है उसे आशाम्बर कहते हैं। दिशारूपी वस्त्रधारी कहते हैं। अर्थात् ऐसे महात्मा को नग्न कहते हैं।

निष्किंचन:= निर्गतं निष्क्रांतं किंचनं धनमस्येति निष्किंचन: निर्ग्रन्थाचार्य: इत्यर्थ: = किंचन - धन यह सर्व परिग्रह की प्राप्ति का मूल कारण है। उसका जिसने त्याग किया है उस महात्मा को निष्किञ्चन कहते हैं अर्थात् जो निर्ग्रन्थाचार्य हुए हैं ऐसे प्रभु को निष्किञ्चन कहते हैं।

निराशंस:= आशंसनं आशंसा शंसि प्रत्ययाद: । निर्गता आशंसा आकांक्षा यस्येति निराशंस: निराश इत्यर्थ:। हलायुधनाममालायाम् -

"इच्छा वाञ्छा स्पृहा कांक्षा कामनाशा रुचिस्तथा। आशंसा चेति

तुल्यार्थ:''= आशंसा - आकांक्षा, निराशंसा - वह आकांक्षा जिनसे अलग हुई है, जिनसे नष्ट हो गई है, वे निराशंस हैं, इच्छा रहित हो गये हैं। हलायुध नाममाला में कहा है-

इच्छा, वांछा, स्पृहा, कांक्षा, कामना, आशा, रुचि, आंशसा ये सब तुल्य अर्थवाची हैं।

ज्ञानचक्षु:= मतिश्रुतावधिमन: पर्ययकेवलानि ज्ञानं, चक्षुर्लोचनं यस्येति ज्ञानचक्षु:= मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान है नेत्र जिनके उसे ज्ञानचक्षु कहते हैं।

अमोमुह:= मुह् वैचित्ये अत्यर्थं मुह्यति धातोर्य चण्परोक्षागुणश्चेक्रियते मोमुह्य जात मोमुह्यते इत्येवशीलो मोमुह:। [illegible] तस्य लुगिचिचेक्रिय न लोप: **मोमुहजातम्**। नमोमुह: **अमोमुह:**। भृशं निर्मोह इत्यर्थ:= मुह् धातु मोहित अर्थ में है अत: सांसारिक पदार्थों में मोहित होने को मुह कहते हैं, अत्यन्त मोह को मोमह कहते हैं, जिनके मोह नहीं है, मोहनीय कर्म का विनाश हो गया है, उसको अमोमुह कहते हैं अर्थात् निर्मोही है।

तेजोराशि:= रश इति सौत्रोऽयं धातु: रशतीति राशि:, अजिजन्य रशिपणेश्च इजप्रत्यय:। तेजसां भूरिभास्कर-प्रकाशानां राशि: पुंज: तेजोराशि: = भूरि प्रकाश की राशि (पुंज) को तेजो-राशि कहते हैं, भगवान् के शरीर का इतना प्रकाश होता है जिससे समवसरण में रात-दिन का भेद नहीं रहता अत: भगवान तेजोराशि हैं।

अनंतौजा:= अनंत ओजोऽवष्टंभो दीप्ति: प्रकाशो बलं धातुस्तेजो वा यस्य स अनंतौजा:। अथौज: किमुच्यते उषादाहे उषतीत्योज:, उपेर्द्रश्च, अनेन असन् प्रत्यय: षस्य ज:।

ओज: सोमात्मकं स्निग्धं, शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्॥

देह : सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहज:, इति सुश्रुत:। चरकेप्युक्तम्-

हृदि तिष्ठति यत् शुद्धं रक्तमीषत् सपीतकं।
ओजः शरीरे व्याख्यातं, तन्नाशात् म्रियते नरः।।

गुरु शीलं मृदु स्निग्धं, बहुलं मधुरं स्थिरं।
प्रसन्नं पिच्छिलं शुक्लमोजो दशगुणं स्मृतम्।।

एवं चर भूर्येण - ईषद्रक्तपीतं शुक्लं च निरुपममोजो व्यावर्णितं। तत्र केचित् बलमेवौजस्तेजस्वी विशेषेण व्यावर्णयंतीति –

प्राणः स्वात्मबलं द्युम्नमोजः सुष्मं स्तरं सहः।
प्रतापः पौरुषं तेजो विक्रमः स्यात्पराक्रमः।।

इति हलायुधे, प्रभु में अनंत ओज अर्थात् तेज, प्रकाश, बल, धैर्य होता है। अतः वे अनन्तौजा कहे जाते हैं। ओज शब्द का अर्थ शुक्र - वीर्य ऐसा भी है और इस शुक्र के विषय में सुश्रुत में ऐसा वर्णन है- ओज अर्थात् वीर्य सोमात्मक है। वह स्निग्ध, शुक्ल, शीत, स्थिर और सर-सर्व शरीर में है, तो भी विविक्त स्थान में है, वह मृदु और सच्चिकण और प्राणों का घर है अर्थात् प्राणों का आधारभूत है। सर्व सावयव देह उससे व्याप्त है। चरक में भी कहा है-

हृदय में जो शुद्ध और अल्प पीला रक्त रहता है उसे ओज कहते हैं और शरीर में वीर्य रहता है उसका जब नाश होता है तो मनुष्य मरता है। ओज में दश गुण रहते हैं। गुरु याने वजनवाला, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहुल, मृदुल, स्थिर, कान्तियुक्त, सान्द्र तथा शुभ्र। इस प्रकार ओज को ही बल या प्राण कहते हैं, हलायुध कोश में इसके अनेक नाम हैं- ओज, प्राण, स्थाम, बल, द्युम्न, ओज, शुष्म, वरंसह, प्रताप, पौरुष, तेज, विक्रम, पराक्रम ये इसके ही नाम हैं।

ज्ञानाब्धिः= ज्ञानस्य विज्ञानस्याब्धिः समुद्रः ज्ञानाब्धिः= ज्ञान-विज्ञान अर्थात् केवलज्ञान के प्रभु समुद्र हैं।

शीलसागरः= शीलानि अष्टादशसहस्र संख्यानि तेषां सागरः समुद्रः निवासस्थानं शीलसागरः= प्रभु अठारह हजार शीलों के सागर-समुद्र हैं, निवासस्थान हैं।

तेजोमय:= तेजसो विकारोऽवयवो वा तेजोमय: 'प्रकृतविकारेऽवयवे वा भक्ष्याच्छादनयोश्चमयट्':- स्वयं भगवान् केवलज्ञान रूपी प्रकाश से युक्त होने से तेजोमय हैं।

अमितज्योति:= अमितं अमर्यादीभूत ज्योति: केवलं यस्येति अमितज्योति:= अमर्याद ज्योति केवल ज्योति है जिसकी उसे अमितज्योति कहते हैं।

ज्योतिमूर्ति:= ज्योतिषां तेजसां मूर्त्तिराकारो यस्येति ज्योतिमूर्त्ति:= तेज वान मूर्त्ति आकार है जिनका वे ज्योतिमूर्त्ति कहे जाते हैं।

तमोपह:= तमो अंधकारं अपहंतीति तमोपह:, अपक्लेशतमसो: ड प्रत्यय:= अज्ञान रूपी अन्धकार के नाशक होने से तमोपह है अथवा - मानसिक क्लेशरूपी अन्धकार के नाशक हैं।

जगच्चूडामणिर्दीप्त: शंवान्विघ्नविनायक:।
कलिघ्न: कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशक: ॥३॥
अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूक: प्रमामय:।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराज: प्रजाहित: ॥४॥

अर्थ : जगच्चूड़ामणि, दीप्त, शंवान्, विघ्नविनायक, कलिघ्न, कर्मशत्रुघ्न, लोकालोकप्रकाशक, अनिद्रालु, अतंद्रालु, जागरूक, प्रमामय, लक्ष्मीपति, जगज्योति, धर्मराज, प्रजाहित, ये पन्द्रह नाम प्रभु के सार्थक नाम हैं।

टीका : जगच्चूडामणि:= गच्छतीत्येवंशीलं जगत् पंचमोपधायाधुटि वा गुणोदीर्घ: यममनतनगमां क्वौ पंचमोलोप: अत् धातोस्तोन्त: पानुबंधे जगज्जातं जगतस्त्रैलोक्यस्य चूडामणि: शिरोरत्नं स जगच्चूडामणि:। 'चूडामणिं च विद्वांसो वदन्ति शिरसि स्थितम्' इति हलायुधे :

अर्थ : परिणमनशील को जगत् कहते हैं अत: जगत् का अर्थ तीन लोक है। आप तीन लोक में शिरोमणि हैं, सबके शिरपर - लोक के अग्रभाग में स्थित हैं अत: आप जगच्चूड़ामणि हैं। ऐसा विद्वान् कहते हैं।

दीप्त:= दीप्यते स्म दीप्त: दीप्तवानित्यर्थ:= प्रभु कोट्यवधि चन्द्र सूर्य की दीप्ति से भी अधिक प्रकाश के धारक हैं। अत: दीप्त हैं।

शंवान् = शं सुखमस्यास्तीति शंवान् = मोहनीय कर्म को विध्वस्त कर प्रभु ने शं - अनन्तसुख को प्राप्त किया है। अत: शंवान् हैं।

विघ्नविनायक:= विघ्नं विद्युदादय: तेषां विनायक: स्फेटक: विघ्नविनायक:, अथवा विघ्नकरणमंतरायस्येति तत्त्वार्थवचनात् दानादीन्युक्तानि दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेत्यत्र तेषां विहननं विघ्न: विघ्नस्यांतरायस्य विनायक: स्फेटको विघ्न-विनायक: अंतरायकर्मविनाशक इत्यर्थ:- बिजली गिरना आदिक जो उपद्रव उत्पन्न होते हैं उनको विघ्न कहते हैं। उनके विनायक - विनाशक प्रभु हैं। या दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य की प्राप्ति होने में जो विघ्न कर्म है उसे अन्तराय कहते हैं। दान अन्तराय कर्म के उदय से पात्र को आहारादि दान देने के परिणाम उत्पन्न नहीं होते, लाभान्तराय से लाभप्राप्ति नहीं होती, भोगान्तराय से भोगने की इच्छा होने पर भी भोग नहीं सकता, बार-बार जो पदार्थ भोगे जाते हैं ऐसे पदार्थ स्त्री-वस्त्रादिक का उपभोग प्राणी नहीं कर सकते। तथा कोई कार्य करने का उत्साह न हो वह वीर्यान्तराय है। आदि भगवंत ने ये पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म शुक्लध्यान से नष्ट किये। अत: वे विघ्नविनायक हैं।

कलिघ्न:= कलिं सङ्ग्रामं हन्तीति कलिघ्न:, 'कलिर्विभीतके शूरे विवादेऽभ्यपुणे युधि' इत्यनेकार्थे - कलि - संग्राम - युद्ध को प्रभु घ्न - नष्ट करते हैं। प्रभु के दर्शन से पारस्परिक वैर नष्ट होकर मित्रता उत्पन्न होती है। कलि शब्द संग्राम, पाप, विभीतक (हरड़), शूर, विवाद, युद्ध आदि अनेक अर्थ में है। अत: कलि, पाप, वैर, युद्ध का नाश करते हैं अत: कलिघ्न हैं।

कर्मशत्रुघ्न: = कर्म्मशत्रून् हन्तीति कर्म - शत्रुघ्न:= ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को नष्ट करने वाले प्रभु कर्मशत्रुघ्न हैं।

लोकालोकप्रकाशक:= लोकालोकयो: प्रकाशक: उद्द्योतक: कथक: लोकालोकप्रकाशक:= केवलज्ञान से षट्द्रव्यात्मक लोक तथा केवल आकाश को जानकर उनका कथन करने वाले भगवान तथानामवाले हैं।

अनिद्रालु:= निपूर्वा द्रा कुत्सायां गतौ निद्रात्येवंशीलो निद्रालु:। 'दयि-पति गृहि स्पृहि श्रद्धातन्द्राभ्य: आलु:' न निद्रालु: अनिद्रालु: अनिद्र इत्यर्थ:=

नि उपसर्ग पूर्वक 'द्रा' धातु कुत्सित गति में आता है, उससे आलु प्रत्यय लगाने पर निद्रालु बनता है। जिसमें किसी भी इन्द्रिय के द्वारा विषयों का ग्रहण नहीं होता है, न निद्रालु अनिद्रालु है, भगवान् निद्रा से रहित हैं, हमेशा स्वस्वरूप में जागरूक हैं अत: अनिद्रालु हैं।

अतंद्रालु:= तंद्रा इति सौत्रो धातु: आलस्यार्थे वर्त्तते तंद्रात्येवंशील: तंद्रालु: न तंद्रालु: अतंद्रालु: अनालस्य इत्यर्थ:= तन्द्रा धातु आलस्य अर्थ में है, भगवान के, आलस्य के जनक मोहका नाश होने से कभी आलस्य नहीं है, अत: वे अतन्द्रालु हैं।

जागरूक:= जागर्त्तीत्येवंशीलो जागरूक: आत्मस्वरूपे सदा सावधान: जागरणशील: इत्यर्थ: जागरूक इति वचनात् जागृ धातोरूक प्रत्यय:= जो जागृतशील है, अपने आत्मस्वरूप में जो सावधान है, जागरणशील है, जागृ धातु में रुक प्रत्यय लगकर जागरूक बन गया।

प्रमामय:= माङ्माने मेङ्प्रतिदाने प्रमाणं प्रमा। आतश्चोपसर्गे अङ् प्रमया ज्ञानेन निर्वृत्त: प्रमामय: प्रस्तुतवृत्ते मयट् ज्ञानमय इत्यर्थ:= 'मा' धातु ज्ञान अर्थ में है और मेङ् धातु 'प्रतिदान' अर्थ में है, मा ज्ञान जिसमें है वह प्रमा कहलाते हैं, 'प्र' उपसर्ग है प्रकृष्ट अर्थ में अत: प्रकृष्ट ज्ञान (केवलज्ञान) या संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित ज्ञान प्रकृष्ट ज्ञान है, 'मयट्' प्रत्यय से 'प्रमामय' कहलाते हैं। जिनके आत्मप्रदेश केवलज्ञानमय हैं अत: भगवान प्रमामय हैं।

लक्ष्मीपति:= लक्षदर्शनांकनयो: लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं जनमिति लक्ष्मी: 'लक्षेर्मोन्तश्च' लक्ष्मी: श्री: तस्या: पति: लक्ष्मीपति:= 'लक्ष्' धातु दर्शन और चिह्न अर्थ में आता है। अत: जो आत्मा के अनन्त दर्शन ज्ञानादि चिह्न को प्रकट करती है, वा पुण्योदय से प्राप्त समवसरण की विभूति को दिखाती है वह लक्ष्मी कहलाती है। उस लक्ष्मी के पति (केवलज्ञानादि तथा समवसरण लक्ष्मी के स्वामी) होने से लक्ष्मीपति कहलाते हैं।

जगज्ज्योति:- जगतां प्राणिनां ज्योति: कल्पवृक्ष: जगज्ज्योति: सूर्यचंद्रवत् द्योतक इत्यर्थ: तथाचोक्तमार्षे -

मद्यातोद्यविभूषास्रग् ज्योतिर्दीपगृहाङ्गका:।
भोजनामत्रवस्त्रांगा: दशधा कल्पपादपा:॥

जगत् के प्राणियों को प्रभु ज्योतिरंग कल्पवृक्ष के समान हैं। अथवा सूर्य-चंद्रवत् जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रभु जगज्ज्योति हैं।

आर्षपुराण में दश प्रकार के कल्पवृक्षों के नाम इस प्रकार हैं-

पानाङ्ग, तूर्याङ्ग, विभूषाङ्ग, स्रगाङ्ग, ज्योतिरङ्ग, दीपाङ्ग, गृहाङ्ग, भाजनाङ्ग, भोजनाङ्ग, वस्त्राङ्ग ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं।

धर्मराज:= धर्मस्य अहिंसालक्षणस्य चारित्रस्य रत्नत्रयस्य उत्तमक्षमादेश्च राजा स्वामी धर्मराज: = अहिंसा लक्षण धारण करने वाला, चारित्र, रत्नत्रय तथा उत्तम क्षमादि जो दशधर्म उनके प्रभु स्वामी हैं अत: वे धर्मराज हैं। अथवा अहिंसा के शासक होने से भी धर्मराज हैं।

प्रजाहित:= प्रजानां त्रिभुवनस्थितलोकानां हित: पथ्य: कर्त्ता वा प्रजाहित:= त्रैलोक्य में स्थित सर्व जीवों को हित तथा पथ्य उपाय दिखाने वाले प्रभु हैं। वा प्रजा (सर्व जीवों के) हितकारी होने से 'प्रजाहित' कहलाते हैं।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथ:।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायक:॥५॥

मूलकर्त्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारण:।
आप्तोवागीश्वर:श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक्॥६॥

अर्थ : मुमुक्षु, बन्धमोक्षज्ञ, जिताक्ष, जितमन्मथ, प्रशान्तरसशैलूष, भव्यपेटकनायक, मूलकर्त्ता, अखिलज्योति, मलघ्न, मूलकारण, आप्त, वागीश्वर, श्रेयान्, श्रायसोक्ति, निरुक्तवाक् ये पन्द्रह नाम प्रभु के सार्थक नाम हैं।

टीका : मुमुक्षु:- मोच् मोक्षणे मोक्तुमिच्छति मुमुक्षतीत्येवंशीलो मुमुक्षु:, 'सनंतासंसे भिक्षामु:' तथाचोक्तं निरुक्ते-

य: कर्मद्वितयातीतस्तं मुमुक्षुं प्रचक्षते।
पाशैर्लोहस्य हेम्नो वा यो बद्धो बद्ध एव स:॥

भव्य जीवों को घाति-कर्म तथा अघाति कर्मों से मुक्त करने की इच्छा करने वाले प्रभु मुमुक्षु हैं। निरुक्त में इसे ऐसा कहा है-

जो महायोगी दो प्रकार के कर्मों से रहित होना चाहता है उसे मुमुक्षु कहते हैं। परन्तु जो चाहे लोहपाश से या सुवर्णपाश से बद्ध है, उसे बद्ध ही समझना चाहिए।

वा, मुक्ति की कामना करने से मुमुक्षु हैं।

बन्धमोक्षज्ञ:= बधं मोक्षं च जानातीति बन्धमोक्षज्ञ:, तदुक्तम् बन्ध-मोक्षलक्षणं -

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो:।
बद्धो हि विषयासक्तो मुक्तो निर्विषयस्तथा।

बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने वाले प्रभु बंधमोक्षज्ञ हैं।

मनुष्य का मन ही बन्ध तथा मोक्ष का कारण है। जो व्यक्ति पंचेन्द्रिय विषयों में आसक्त हुआ है उसे बद्ध और जो उन विषयों में अनासक्त है उसे मुक्त समझना चाहिए।

जिताक्ष:= जितानि अक्षाणि इन्द्रियाणि येनेति जिताक्ष: विजितेन्द्रिय: इत्यर्थ:= जीत लिया है इंद्रियों को जिन्होंने, वे जितेन्द्रिय हुए हैं।

जितमन्मथ:= मनज्ञाने मन्मननं मत्‌क्विप् पंचमोपधा धुटि च गुणे दीर्घ:, यममनतनगमां क्वौ पंचमो लोप: अत् आत् धातोस्तान्त: पानुर्लोबंधे वेलौ. सि. व्यंज. मनश्चेतनां मथ्नातीति मन्मथ: जितो मन्मथो मदनो येनेति जितमन्मथ:-

मनश्चेतना का मन्थन करने वाला मन्मथ-कामदेव है। जिसने मन्मथ को जीत लिया वह जितमन्मथ है।

प्रशान्तरसशैलूष:= प्रशान्तश्चासौ रस: प्रशान्तरस: नवमरस: तत्र शैलूष: नटाचार्य: प्रशान्तरसशैलूष: उपशान्तरसनर्तक: इत्यर्थ:, प्रशान्त-रसस्येदं, लक्षणं

य: कर्मद्वितयातीतस्तं मुमुक्षुं प्रचक्षते।
पाशैर्लोहस्य हेम्नो वा यो बद्धो बद्ध एव स:।।

भव्य जीवों को घाति-कर्म तथा अघाति कर्मों से मुक्त करने की इच्छा करने वाले प्रभु मुमुक्षु हैं। निरुक्त में इसे ऐसा कहा है-

जो महायोगी दो प्रकार के कर्मों से रहित होना चाहता है उसे मुमुक्षु कहते हैं। परन्तु जो चाहे लोहपाश से या सुवर्णपाश से बद्ध है, उसे बद्ध ही समझना चाहिए।

वा, मुक्ति की कामना करने से मुमुक्षु हैं।

बन्धमोक्षज्ञ:= बंधं मोक्षं च जानातीति बन्धमोक्षज्ञ:, तदुक्तम् बन्ध-मोक्षलक्षणं -

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो:।
बद्धो हि विषयासक्तो मुक्तो निर्विषयस्तथा।

बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने वाले प्रभु बंधमोक्षज्ञ हैं।

मनुष्य का मन ही बन्ध तथा मोक्ष का कारण है। जो व्यक्ति पंचेन्द्रिय विषयों में आसक्त हुआ है उसे बद्ध और जो उन विषयों में अनासक्त है उसे मुक्त समझना चाहिए।

जिताक्ष:= जितानि अक्षाणि इन्द्रियाणि येनेति जिताक्ष: विजितेन्द्रिय: इत्यर्थ:= जीत लिया है इंद्रियों को जिन्होंने, वे जितेन्द्रिय हुए हैं।

जितमन्मथ:= मनज्ञाने मन्मननं मत्क्विप् पंचमोपधा धुटि च गुणे दीर्घ:, यममनतनगमां क्वौ पंचमो लोप: अत् आत् धातोस्तान्त: पानुर्लोबंधे वेलों. सि. व्यंज. मनश्चेतनां मथ्नातीति मन्मथ: जितो मन्मथो मदनो येनेति जितमन्मथ:-

मनश्चेतना का मन्थन करने वाला मन्मथ-कामदेव है। जिसने मन्मथ को जीत लिया वह जितमन्मथ है।

प्रशान्तरसशैलूष:= प्रशान्तश्चासौ रस: प्रशान्तरस: नवमरस: तत्र शैलूष: नटाचार्य: प्रशान्तरसशैलूष: उपशान्तरसनर्तक: इत्यर्थ:, प्रशान्त-रसस्येदं, लक्षणं

वाग्भटाचार्येण वाग्भटालंकारेऽप्युक्तम्-सम्यग्ज्ञानसमुत्थानं शांतो निःस्पृहनायकः।
रागद्वेषपरित्यागात् सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः॥

शान्तरस के नर्तक प्रभु हैं। वाग्भटालंकार में शान्तरस का स्वरूप ऐसा है। इस शान्तरस में सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है, शान्तरस में रागद्वेष का त्याग होने से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है तथा इसके नायक मुनिराज अत्यन्त निःस्पृहता के आदर्श होते हैं।

भव्यपेटकनायकः= भव्यानां रत्नत्रययोग्यानां पेटकानि समूहाः भव्यपेटकानि, भव्यपेटकानां नायकः स्वामी भव्यपेटकनायकः= रत्नत्रय की प्राप्ति होने योग्य जीवों को भव्य कहते हैं। उनका समूह पेटक कहलाता है। प्रभु भव्यों के पेटकों के अर्थात् समूहों के नायक स्वामी हैं। अतः भव्यपेटकनायक कहलाते हैं।

मूलकर्त्ता = मूलप्रतिष्ठायां मूलति मूल्यते प्रतिष्ठाप्यते मूलं 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां घञ्' मूलं निदानं आदिकारणं करोतीति मूलकर्त्ता।

मूल (जिसका आदि अन्त नहीं है, ऐसे अनादिनिधन जैनधर्म के कर्त्ता होने से मूल कर्त्ता कहलाते हैं।)

अखिलज्योतिः= अखिले लोके ज्योतिः केवलदर्शनलक्षणं लोचनं यस्येति स अखिल-ज्योतिः - संपूर्ण लोक को प्रभु का केवलदर्शन रूप नेत्र देखता है। अतः वे अखिलज्योति हैं। वा सारे जगत् के प्रकाशक होने से आप अखिलज्योति हैं।

मलघ्नः= मलान् हंतीति मलघ्नः, यत्स्मृति-

वसाशुक्रमसृक्मज्जा मूत्रं विट् कर्णविट् नखः।
श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥

अथवा मलान् तपोमलान् मायामिथ्यात्वनिदानानि हंतीति **मलघ्नः-** प्रभु ने वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्टा, कर्णमल, नखमल, अश्रुमल, श्लेष्मा, दूषिका और स्वेद इन मलों का नाश किया क्योंकि प्रभु का शरीर परमौदारिक था। उसमें ये मल नहीं थे। अथवा माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन तपोमल भी नहीं हैं अतः आप मलघ्न कहे जाते हैं।

अर्थात् द्रव्यमल, भावमल और नो कर्म मल के घातक होने से मलघ्न कहलाते हैं।

मूलकारण:= मूलं रोहणे मूलयति मूलं - 'नाम्युपधाप्रीकृगृज्ञां कः', मूलस्य आरोहणस्य प्रादुर्भावस्य सृष्टेर्वा कारणं निदानं हेतुरिति यावद् मूलकारणं = मूल (मोक्ष, सिद्धपद उसके आरोहण) का कारण होने से वा मोक्षमहल के आरोहण का मूल कारण होने से मूल कारण हैं।

आप्त:= आप्यते स्म आप्तः आप्तस्येदं लक्षणं यशस्तिलकमहाकाव्ये श्रीसोमदेवसूरिणाप्युक्तम्-

क्षुत्पिपासा भयं द्वेषश्चिंतनं मूढतागमः।
रोगो जरा रुजा मृत्युः क्रोधः स्वेदो मदो रतिः॥

विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादशध्रुवाः।
त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे॥

एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोयमाप्तो जिनेश्वरः।
स एव हेतुः सूक्तीनां केवलज्ञानलोचनः॥

तथा चोक्तम् -

यस्यात्मनि श्रुते तत्त्वे चरित्रे मुक्तिकारणे।
एकवाक्यतया वृत्तिराप्तः सोऽनुमतः सताम्॥

जीवादि तत्त्वों को जानने की इच्छा से तथा संसार-दुःखों का नाश करने की इच्छा से, तथा अनन्त सुखरूपी अमृत जहाँ प्राप्त होता है ऐसे मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा से विद्वान् लोक जिसको प्राप्त कर लेते हैं ऐसे अर्हत्परमेष्ठी को आप्त कहते हैं। इस अभिप्राय का श्लोक-

इहाप्यते तत्त्वबुभुत्सया भवभ्रमोत्थदुखापानिनीषयाबुधैः।
अनन्तसौख्यामृत मोक्षलिप्सया निरुच्यतेऽन्वर्थतयाप्तइत्यसौ॥

श्री सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक में आप्त का जो लक्षण कहा है वह इस प्रकार है -

भूख, प्यास, भीति, द्वेष, चिन्ता, अज्ञता, प्रीति, वृद्धावस्था, रोग, मरण, क्रोध, पसीना, गर्व, रति, आश्चर्य, जन्म, निद्रा और विषाद ये अठारह दोष त्रैलोक्य के सर्वप्राणियों के साधारण रहते हैं। परन्तु इन दोषों से रहित जो है वह जिनेश्वर आप्त है और वही सब उत्तम वचनों का हेतु है तथा केवलज्ञान रूपी नेत्र का धारक है। जिसने आत्मा, श्रुतज्ञान, जीवादिक तत्त्व और मुक्ति का कारण ऐसा चारित्र, उसका विरोध रहित उपदेश दिया है वह आप्त है, ऐसा: सज्जनों ने माना है। वा यथार्थ वक्ता होने से आप आप्त हैं।

वागीश्वर: = वाचां वाणीनामीश्वरो वागीश्वर:= भगवान, वचन के वाणी के, ईश्वर हैं। अत: वागीश्वर हैं।

श्रेयान् = प्रकृष्ट: प्रशस्य: श्रेयान् प्रशस्य स्पृष्ट:= भगवान जीवों का उत्तम कल्याण करने वाले हैं। वा कल्याण स्वरूप होने से श्रेयान् हैं।

श्रायसोक्ति: = श्रेयो नि:श्रेयसं तदधिकृत्यकृत:। श्रायसी 'देवी-कार्शिसपादीर्घ-सश्रेयसामा' इत्येकारस्याकार:। श्रायसी उक्ति: वाणी यस्येति श्रायसोक्ति: प्रशस्तवागित्यर्थ := कल्याण स्वरूप वाणी युक्त होने से, श्रायसोक्ति हैं अर्थात् आपके वचन प्रशस्त हैं, हितकारी हैं।

निरुक्तवाक् = निरुक्तानि चिंतावाक् वचनं यस्य स निरुक्तवाक् = पूर्वापर दोष रहित युक्तियुक्त वचन जिनके ऐसे प्रभु निरुक्तवाक् हैं। वा सार्थ वचनयुक्त होने से भी निरुक्तवाक् हैं।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्त: सुगतोहतदुर्नय: ॥७॥
श्रीश: श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकर:।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सल: ॥८॥

अर्थ : प्रवक्ता, वचशामीश, मारजित्, विश्वभाववित्, सुतनु, तनुनिर्मुक्त, सुगत, हतदुर्नय, श्रीश, श्रीश्रितपादाब्ज, वीतभी, अभयंकर, उत्सन्नदोष, निर्विघ्न, निश्चल, लोकवत्सल ये १६ सार्थक नाम प्रभु के हैं।

टीका- प्रवक्ता - प्रकर्षेण वक्तीति प्रवक्ता - प्रभु उत्कृष्ट वक्ता हैं।

वचसामीश:= वचसां वाणीनां ईश: स्वामी वचसामीश:= प्रभु वचनों के स्वामी हैं।

मारजित् = मारं कन्दर्पं जितवान् मारजित्। 'सत्सुद्विषद्रुह युज् विद् भिद् जिनीराजामुपसर्गेप्यनुपसर्गेऽपि क्विप् धातोस्तोऽन्त:पानुबंधे' = मार, काम को जीतने से मारजित् कहलाते हैं।

विश्वभाववित् = विश्वेषां त्रिलोकानां भावश्चिंताभिप्राय: विश्वभाव:, विश्वभावं स्वगतं वेत्तीति विश्वभाववित् = समस्त विश्व में स्थित प्राणियों का अभिप्राय उनकी चिंता प्रभु जानते हैं इसलिए वे विश्वभाववित् कहे जाते हैं। संसार के सारे पदार्थों के ज्ञाता होने से विश्वभाववित् हैं।

सुतनु:= तनु विस्तारे तनोतीति तनु: 'भृ मृ तृ चरितस्तरित निमिज्सिशीङ्भ्य उ:' सुष्ठु शोभना तनु: शरीरं यस्येति सुतनु:= 'तनु' धातु विस्तार अर्थ में है, जो संकोच-विस्तार को प्राप्त होता है उसको तनु कहते हैं, उत्तम शरीर से युक्त होने से सुतनु कहलाते हैं।

तनुनिर्मुक्त:= तन्वा शरीरेण निर्मुक्त: रहितस्तनुनिर्मुक्त: । अथवा तनोर्निर्मुक्त: अदेह: सिद्धावस्थायामित्यर्थ:= प्रभु शरीर से रहित हैं। अथवा प्रभु शरीर से सिद्धावस्था में निर्मुक्त (रहित) हुए हैं।

सुगत:= शोभनं गतं गमनं यस्य स सुगत: अथवा सुष्ठु शोभनं गतं केवलज्ञानं यस्य स सुगत: अथवा सुगा सुगमना अग्रेगामिनी ता लक्ष्मीर्यस्य स सुगत:= उत्तम मंद गमन होने से प्रभु सुगत हैं अत: प्रभु का गमन मुक्ति की ओर होता है। या सु-उत्तम गत-केवलज्ञान जिनको है वे सुगत हैं। अथवा सुगा-शुभगमन जिसका है ऐसी जो ता-लक्ष्मी उससे युक्त प्रभु को सुगत कहते हैं। जिनके आगे-आगे चक्र चलता रहता है।

हतदुर्नय:= दुर्नया पूर्वोक्त स्वरूप पररूपादि चतुष्टयप्रकारेण सदेवासदेव नित्यमेवानित्यमेव, एकमेवानेकमेवेत्यादिदुष्टतया प्रवर्त्तते ये नया एकदेशग्राहिणो दुर्नया: कथ्यन्ते। हता विध्वस्ता दुर्नया: मिथ्यात्वादयो येनेति हतदुर्नय:= वस्तु अनेक स्वभावात्मक है तो भी वह सद्रूप ही है, नित्य ही है, अनित्य ही है,

एक ही है, अनेक ही है इत्यादि सर्वथा एक रूप प्रतिपादन करने वाले नय दुर्नय हैं। ऐसे दुर्नयों का प्रभु ने विध्वंस किया और कथंचित् रूप से वस्तु सद् है, असद् है, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, इत्यादि सुनयों का स्वरूप प्रभु ने कहा है। अतएव प्रभु हतदुर्नय हैं।

श्रीश:= श्रीणां श्रीदेवीनां ईश: स्वामी श्रीश:। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धिलक्ष्म्य: पल्योपमस्थितय: श्रीमदुमास्वामिवचनात् = श्री ह्री आदि देवियों के प्रभु स्वामी हैं अत: वे श्रीश हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वामी आचार्य ने श्री ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये एक पल्य की आयु वाली षट् देवियाँ कही हैं, उनके स्वामी हैं था ये देवियाँ गर्भस्थ प्रभु की माता की सेवा करती हैं अत: भगवान श्रीश हैं।

श्रीश्रितपादाब्ज:= श्रिया लक्ष्म्या श्रितौ सेवितौ पादाब्जौ चरणकमलौ यस्येति श्रीश्रितपादाब्ज:= लक्ष्मी के द्वारा प्रभु के दो पदकमल सेवित हैं अत: वे इस नाम के धारक हैं।

वीतभी:= वीता विनष्टा भी: भीतिर्यस्येति वीतभी:, 'भीतौ भीस्त्रीभियौभिय:' इति श्री विश्वशंभु प्रणीतैकाक्षरनाममालायां-

जिनको किसी प्रकार का भय नहीं है अत: वीतभी हैं। विश्वशंभु नामक एकाक्षर कोश में वा नाममाला में लिखा है, भी: भियौ भिय:। नष्ट हो गई भीति जिसकी वे वीतभी कहलाते हैं।

अभयंकर:= अभयं करोतीति अभयंकर:। भयर्तिमेघेषुकृञ:ख प्रत्यय:= प्रभु भव्यों के संसारभय को नष्ट करके उन्हें अभयदान देते हैं अर्थात् अपने उपदेश द्वारा वे प्राणियों को अभयदान देते हैं।

उत्सन्नदोष:= उच्छन्नाविच्छित्तिं गता दोषा: कामक्रोधादयो यस्येति स उत्सन्नदोष:= प्रभु ने कामक्रोधादि दोषों का नाश किया है। अत: वे उत्सन्न दोष नाम को यथार्थ धारण करते हैं।

निर्विघ्न:= हन् हिंसागत्यो: हन् विपूर्व: विहन्यतेऽनेनेति निर्विघ्न:। स्थास्नापिवतिव्याधिहनिभ्य: क स्यात् धनिरादेशश्च, गमहन: उपधालोप:, निर्गतो

विनष्टो विघ्नांतरायो यस्येति निर्विघ्न:= हन् धातु हिंसा और गति अर्थ में होती है। वि उपसर्ग है स्था, स्ना, पा, व्याधि, हान् धातुओं में 'क' प्रत्यय होता है, हन् का घन् आदेश है और न की उपधा का लोप होता है अत: नि निकलगई नष्ट हो गये, विघ्न (अन्तराय) जिनके वह निर्विघ्न कहलाता है।

निश्चल:= चल् कंपने चलतीति चल: निर्गतो विनष्टो चल: कंपो यस्येति यस्माद्वा स निश्चल: सदास्थिर इत्यर्थ:= चल, कंपपना जिनसे नष्ट हुआ है ऐसे प्रभु निश्चल हैं। जिनके आत्मप्रदेशों में कम्पन नहीं है वे निश्चल हैं।

लोकवत्सल:= वद्व्यक्तायां वाचि। मातरमभिक्षां वदतीति वत्सल:। 'वतृ वदिह निमनिकस्य सिकविभ्य: स:' वत्सोस्यास्तीति वत्सल: सिध्मादित्वाल्ल: लोकानां लोकेषु वा वत्सल: स्नेहल: लोकवत्सल: = वद् धातु बोलने अर्थ में है, माता के साथ प्रेम से बोलता है उसको वत्सल कहते हैं अर्थात् जैसे गाय को अपना बच्चा प्यारा होता है उसी प्रकार सबको अपना बच्चा बहुत प्यारा होता है अत: वत्स कहलाता है। लोक को वा लोक में जो वत्सल हो, स्नेह-युक्त हो उसको लोकवत्सल कहते हैं, अर्थात् सारे प्राणियों पर वात्सल्य भाव धारण करने से आप लोकवत्सल हैं।

लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधी:।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्ग: शुद्ध: सूनृतपूतवाक् ॥९॥
प्रज्ञापारमित: प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रिय:।
भदन्तो भद्रकृद्भद्र: कल्पवृक्षो वरप्रद: ॥१०॥

अर्थ : लोकोत्तर, लोकपति, लोकचक्षु, अपारधी, धीरधी, बुद्धसन्मार्ग, शुद्ध, सूनृतपूतवाक्, प्रज्ञापारमित,. प्राज्ञ, यति, नियमितेन्द्रिय, भदन्त, भद्रकृत्, भद्र, कल्पवृक्ष, वरप्रद, ये सत्तरह नाम प्रभु के इस प्रकार सार्थक हैं।

टीका : लोकोत्तर:= लोकेषु त्रिभुवनस्थितप्राणिवर्गेषु उत्कृष्ट: स लोकोत्तर:= तीनों लोकों में स्थित प्राणिसमूह में प्रभु सबसे उत्कृष्ट होने से लोकोत्तर हैं। समस्त जगत् में उत्कृष्ट होने से लोकोत्तर हैं।

लोकपति:= लोकानां त्रिभुवनजनानां पति: स्वामी लोकपति:= त्रिभुवन

के जनों के स्वामी हैं, भगवान पति हैं। समस्त जीवों के रक्षणकर्त्ता होने से लोकपति हैं।

लोकचक्षु:= लोके प्राणिवर्गे चक्षुरिव चक्षु: अथवा लोके लोकालोके चक्षु: केवलज्ञानदर्शनद्वयं यस्येति लोकचक्षु:= सर्वप्राणिवर्ग को भगवान् आँखों के समान हैं। अथवा प्रभु केवलज्ञान तथा केवलदर्शन रूप दो आँखों से युक्त हैं।

अपारधी:= पारं तीरं कर्म्मसमाप्तौ पारयतीति पार: न पार: अपार: अपारे सिद्धक्षेत्रे धीर्बुद्धिर्यस्येति अपारधी:= पार तीर वाचक शब्द है। कर्म समाप्ति के पार को पा लिया है जिसने, एवं प्रभु की बुद्धि, केवलज्ञान अपार है। या अपार सिद्धक्षेत्र में जिसकी बुद्धि है ऐसे प्रभु अपारधी हैं।

धीरधी:= धीरा धैर्यसंयुता निष्प्रकंपा वा धीर्बुद्धिर्यस्येति धीरधी:= धीर निष्प्रकम्प नहीं डरने वाली धैर्ययुक्त बुद्धि को धारण करने वाले प्रभु हैं। अत: धीरधी: हैं।

बुद्धसन्मार्ग:= सतां निर्वाणसागरादीनामतीततीर्थंकराणां मार्ग: सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग: सन्मार्ग:, बुद्धो ज्ञात: सन्मार्गो येनेति बुद्धसन्मार्ग:= महान् सज्जन पुरुष जो भूतकाल में हुए निर्वाण, सागर आदि तीर्थंकरों ने जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र रूपी मोक्षमार्ग भव्यों को दिखाया था, उसे आदिप्रभु ने केवलज्ञान से जानकर भव्यों को बताया। अत: भगवान् बुद्धसन्मार्ग हुए।

शुद्ध := दिवादौ शुद्धशौचे शुध्यतिस्म शुद्ध:, 'राधि सधि क्रुधि क्षुधि बंधि शुधि सिद्धि बुद्धि युधि व्याधि साधे र्धातो: इट् निषेध:' कर्मकलंकरहित इत्यर्थ:= दिवादि गण में 'शुद्ध' धातु शुद्धि या शोच 'पवित्रता' अर्थ में आता है। अत: भगवान शुद्ध हैं, पवित्र हैं, कर्मकलंक से रहित हैं अत: शुद्ध हैं।

सूनृतपूतवाक् = सुष्टूवन्यते सुनृतेन सत्येन पूता पवित्रा वाक् वाणी यस्येति सूनृतपूतवाक् = प्रिय तथा सत्ययुक्त भाषण को सूनृत कहते हैं। भगवंत की दिव्यध्वनि प्रिय तथा सत्य और पवित्र है। अत: वे तथानाम धारक हैं।

प्रज्ञापारमित:= प्रज्ञाया ऊहापोहात्मिकाया: बुद्धे: पारं परभागमितो गत: प्रज्ञापारमित:= ऊहापोहात्मक बुद्धि को प्रज्ञा कहते हैं, जिससे वस्तु का कार्य-कारण सम्बन्ध सिद्ध होता है, हेतु और साध्य संबंध-सिद्धि होती है। ऐसी प्रज्ञा के अन्त, तट को भगवान् प्राप्त हुए हैं। अत: वे प्रज्ञापारमित हैं।

प्राज्ञ:= प्रज्ञा त्रिकालार्थविषया प्रतिपत्ति:, उक्तं च -

मतिरप्राप्तविषया बुद्धि: सांप्रतदर्शिनी।
अतीतार्था स्मृतिर्ज्ञेया प्रज्ञा कालत्रयार्थगा॥

प्रज्ञाऽस्यास्तीति प्राज्ञ: प्रज्ञादित्वाण्ण:= वस्तु की, त्रिकाल में भूत-भावी-वर्तमान काल की अवस्थायें जानने वाली बुद्धि को प्रज्ञा कहते हैं। भगवान ऋषभनाथ को यह प्रज्ञा थी अत: वे प्राज्ञ थे। केवलज्ञानी थे। प्रज्ञादि के स्वरूप इस प्रकार **मति** - इन्द्रियों के साथ संबंध न होकर भी पदार्थ को जानने वाले ज्ञान को मति कहते हैं। **बुद्धि**- वर्तमानकाल के पदार्थ को जानने वाले ज्ञान को बुद्धि कहते हैं। भूतकालीन पदार्थों को जानने वाले ज्ञान को **स्मृति** कहते हैं। त्रिकाल के पदार्थों को जानने वाले ज्ञान को **प्रज्ञा** कहते हैं।

यति:= यतते यत्नं करोतीति रत्नत्रये यति:, सर्वधातुभ्य: 'इ' = जो निरंतर रत्नत्रय में प्रयत्न पूर्वक तत्पर रहते हैं, वे यति हैं।

नियमितेन्द्रिय:= नियमितानि नियंत्रितानि बद्धानि इंद्रियाणि स्पर्शन रसन घ्राण - चक्षु: श्रोत्राणि येनेति नियमितेन्द्रिय:= स्पर्श, जिह्वा, नासिका, कान, और नेत्र इन पाँचों इन्द्रियों को अपने आत्मस्वरूप में ही प्रभु ने स्थिर किया। अत: वे नियमितेन्द्रिय हैं, जितेन्द्रिय हैं।

भदंत:= भदंत: इन्द्र चन्द्र धरणेन्द्र मुनींद्रादीनां पूज्यपर्यायत्वात् भदंत:= इन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र और मुनीन्द्रों से जो पूजनीय है ऐसे प्रभु को भदन्त कहते हैं।

भद्रकृत् = भद्रं कल्याणं करोतीति कृतवान् भद्रकृत् भदि कल्याणे सौख्ये च भदंते - जो अपना और भव्यों का कल्याण करता हो, और प्रभु अपना तथा भव्यों का कल्याण करते हैं, अत: वे भद्रकृत् हैं। भद्र धातु कल्याण अर्थ में है।

भद्रः= शुद्रादयः शुद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः= शुद्ध धातु अग्र, वज्र, विप्र, भद्र, गौ, भेरी आदि अनेक अर्थ में है। स्वयं भगवान् कल्याण रूप, ज्ञानरूप हैं अतः भद्र हैं।

कल्पवृक्षः= कल्पो ध्यानं तत्र फलदो वृक्षः कल्पवृक्षः= कल्प ध्यान-प्रभु के स्वरूप-चिन्तन में जो भक्तों की एकाग्रता होती है उसे कल्प कहते हैं। वह कल्प ही स्वर्गमुक्ति फलों को देने वाला वृक्ष है। अतः भगवान को कल्पवृक्ष कहते हैं। भक्त प्रभु की भक्ति के प्रसाद से इच्छित फल को प्राप्त करते हैं अतः कल्पवृक्ष हैं।

वरप्रदः= वरमभीष्टं स्वर्गं मोक्षं च प्रददाति इति वरप्रदः= वर अभीष्ट ऐसे स्वर्ग मोक्ष को भगवान देते हैं। अतः वे वरप्रद हैं।

समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥११॥

अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

अर्थ : समुन्मूलितकर्मारि, कर्मकाष्ठाशुशुक्षणि, कर्मण्य, कर्मठ, प्रांशु, हेयादेय, विचक्षण, अनन्तशक्ति, अच्छेद्य, त्रिपुरारि, त्रिलोचन, त्रिनेत्र, त्र्यम्बक, त्र्यक्ष, केवलज्ञानवीक्षण ये १४ नाम प्रभु के सार्थक हैं, जो इस प्रकार हैं

टीका - समुन्मूलितकर्मारिः= सन्मूलितः समूलकाषं कषितः कर्मारिः कर्म्मशत्रुर्येनेति - समुन्मूलित कर्मारिः= आदि भगवन्त ने ज्ञानावरणादि आठ कर्मशत्रुओं को मूल से उखाड़कर फेंक दिया। अतः वे इस नाम को प्राप्त हुए।

कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः= शुष् शोषे आशु शोषे, आशुपूर्वः आशु शोषयति रसानिति, आशु शुष्यति अस्मादिति वा आशुशुक्षणिः कर्मकाष्ठ-दाहक इत्यर्थः= शुष् और आशु धातु शोषण अर्थ में, जलाने अर्थ में है। कर्मरूपी काष्ठ को दहन हेतु अग्नि तुल्य होने से कर्मकाष्ठाशुशुक्षणि हैं। कर्म काष्ठ के दाहक हैं।

कर्मण्यः= कर्मों का नाश करके सर्वभव्यों को मोक्षमार्ग को दिखाने का कार्य करने में प्रभु सर्वथा योग्य थे अतः कर्मण्य थे वा कर्मशील होने से कर्मण्य हैं।

कर्मठः= कर्माणि घटते इति कर्मठः, 'कर्मणि घटोठश्च कर्मशूरस्तु कर्मठः।' अमरकोशः - आत्मा को संसार के दुखों से उठाकर मोक्षसुख में स्थापन करने का शौर्य प्रभु ने किया। अतः कर्मठ नाम को धारण किया है। वा समर्थ होने से कर्मठ हैं।

प्रांशुः= प्राप्नुते इति प्रांशुः उन्नत इत्यर्थः 'प्रांशुत्वमुन्नतं तुंगमुदग्रं दीर्घमायुतम्।' इति हलायुधे = भगवान देह से, मन से और कृति से उन्नत थे। अतः उनको प्रांशु कहना योग्य ही था।

हेयादेयविचक्षणः= ओहाक् त्यागे, हीयते हेयं डुदाञ् दाने आदीयते आदेय आत्वनोरिच्च चक्षञ् ख्याञ् वि पूर्वं विविधं चष्टे इति विचक्षणः नद्यादेर्युः युवुलामनाकान्ताः। णत्वं विचक्षणो विद्वान् इत्यनेन विचक्षणः इति निपातः निपातस्य फलं ख्या आदेशो न भवति हेये आदेये च विचक्षणो विद्वान् हेयादेय-विचक्षणः=

ओहाक् धातु त्याग अर्थ में है अतः जो छोड़ा जाता है उसे हेय (छोड़ने योग्य) कहते हैं। डुदाञ् धातु ग्रहण करने में, आ उपसर्ग है, चारों तरफ से ग्रहण किया जाता है उसको आदेय कहते हैं। चक्षञ् धातु बोलने अर्थ में है, वि उपसर्ग है, विशिष्ट विविध बोलते हैं, विचारपूर्वक बोलते हैं उसको विचक्षण कहते हैं, हेयोपादेय में विचक्षण चतुर है उसको हेयोपादेयविचक्षण कहते हैं।

अनन्तशक्तिः= अनंता निःसीमा शक्तयोऽर्थक्रियाकारिसामर्थ्यानि यस्य स अनन्तशक्तिः= प्रभु में अनन्त सीमारहित ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनसे उन्होंने केवलज्ञानादि गुणों को प्राप्त किया है।

अच्छेद्यः= छेत्तुं न शक्यो अच्छेद्यः= जिसका छेदन-भेदन नहीं हो सकता ऐसे स्वरूप को धारण करने वाले प्रभु अच्छेद्य हैं।

त्रिपुरारिः= तिसृणां पुरां जन्मजरामरणलक्षणानां नगराणामरिः शत्रुः त्रिपुरारिः जन्मजरामरणत्रिपुरहर इत्यर्थः= जन्म, जरा, मरण रूप तीन नगरों के प्रभु वैरी थे। इन तीन नगरों को नष्ट कर वे मुक्त हुए। इसलिए उनको त्रिपुरारि कहते हैं।

त्रिलोचन:= त्रिषु कालेषु लोचने केवलज्ञानदर्शने नेत्रे द्वे यस्य स त्रिलोचन: त्रिकाल - विषयार्थविबोधी इत्यर्थ:= भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल के सम्पूर्ण जीवादि पदार्थ देखने के लिए केवलज्ञान तथा केवलदर्शन रूप दो नेत्रों को प्रभु ने धारण किया अत: त्रिलोचन नाम को सार्थक किया।

त्रिनेत्र:= त्रीणि नेत्राणि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि यस्येति त्रिनेत्र:= सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी तीन नेत्रों को प्रभु ने धारण किया है।

त्र्यम्बक:= त्रयाणां लोकानां अम्बक: पिता इति त्र्यंबक:, अथवा त्रीणि अम्बकानि अक्षाणि यस्येति त्र्यंबक:= प्रभु तीन लोक के अम्बक अर्थात् पिता हैं। अथवा तीन चक्षु के धारक हैं, दो चक्षु द्रव्येन्द्रिय हैं और एक केवलज्ञान चक्षु है अत: तीन चक्षु के धारक होने से त्र्यम्बक हैं।

त्र्यक्ष:= त्रयोऽक्षा: आत्मन: सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि यस्येति त्र्यक्ष: तथानेकार्थे-

> **अक्षो रथस्यावयवे व्यवहारे विभीतके।**
> **पाशके शकटे वर्षे ज्ञाने चात्मनि रावणे॥**

तीन अक्ष अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीन जिनके मोक्षरथ के चक्र हैं ऐसे प्रभु त्र्यक्ष नाम को चरितार्थ करते हैं। अक्ष शब्द के-रथ का अवयव (चक्र) व्यवहार, हरड़, पाशा, गाड़ी, वर्ष, ज्ञान, आत्मा और रावण अनेक अर्थ हैं।

केवलज्ञानवीक्षण:= विशिष्टमीक्षणं लोचनं वीक्षणं केवलज्ञानं वीक्षणं लोचनं यस्येति केवलज्ञानवीक्षण:= प्रभु केवलज्ञान रूपी विशिष्ट नेत्र को धारण करते हैं।

> **समन्तभद्र: शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधि:।**
> **सूक्ष्मदर्शी जितानङ्ग: कृपालुर्धर्मदेशक:॥१३॥**
> **शुभंयु: सुखसाद्भूत: पुण्यराशिरनामय:।**
> **धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक:॥१४॥**

अर्थ : समन्तभद्र, शांतारि, धर्माचार्य, दयानिधि, सूक्ष्मदर्शी, जितानंग, कृपालु, धर्मदेशक, शुभंयु, सुखसाद्भूत, पुण्यराशि, अनामय, धर्मपाल, जगत्पाल, धर्मसाम्राज्यनायक, ये पन्द्रह नाम प्रभु के बिल्कुल उचित हैं, क्यों? सो आगे बताते हैं।

टीका : समन्तभद्रः= समंतात् सर्वत्र भद्रं कल्याणं यस्य स समन्तभद्रः। अथवा समंतः सम्पूर्णस्वभावः भद्रं शुभं यस्य स समन्तभद्रः, सर्वत्र जिनका कल्याण ही है वे प्रभु समन्तभद्र हैं। अथवा जिनके संपूर्ण स्वभावों में कल्याण ही कल्याण भर गया है ऐसे प्रभु समन्तभद्र हैं।

शांतारिः= शान्ता उपशमं गता अरयः शत्रवो यस्येति शांतारिः= प्रभु के कर्म शत्रु सब शान्त हो गये, अतः वे शान्तारि कहे गये हैं।

धर्माचार्यः= धर्मेषु दशलक्षणेषु आचार्यः धर्माचार्यः गुरुरित्यर्थः उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्मों का उपदेश देने में प्रभु आचार्य हैं।

दयानिधिः= दयायाः करुणायाः निधिः निवासः दयानिधिः= प्रभु करुणा, दया के निधि याने खजाना हैं, निवास-स्थान हैं।

सूक्ष्मदर्शी = सूक्ष्मं पदार्थं दृष्टुमवलोकयितुं शीलमस्यास्तीति सूक्ष्मदर्शी कुशाग्रीयमतिरित्यर्थः= पाप-पुण्यादिक, कर्म-बन्धन के कर्म स्कंधादिक अत्यन्त सूक्ष्म हैं, तो भी उनको देखने में प्रभु अत्यन्त चतुर हैं।

जितानङ्गः= जितोऽनंगो मदनो येनेति जितानंगः= प्रभु ने अनङ्ग (काम) को जीता अतः वे जितानङ्ग इस यथार्थ नाम को धारण करते हैं।

कृपालुः= कृपा अस्यास्तीति कृपालुः, तद्धितो रूढितः सिद्धः= प्रभु कृपावन्त हैं, अतः कृपालु हैं।

धर्मदेशकः= धर्मस्य देशकः कथकः धर्मदेशकः= श्रावक धर्म एवं मुनि धर्म का उपदेश प्रभु ने भव्यों को दिया है।

शुभंयुः= शुभमस्यास्तीति शुभंयुः 'अहं शुभयोर्युस्' सुखाधीन इत्यर्थः= जो शुभ से युक्त होने से शुभंयु हैं, स्वात्मीय सुखके आधीन होने से भी शुभंयु हैं।

सुखसाद्भूत:= सुखेन भूयते स्म सुखसाद्भूत: अभिव्याप्तौ संपद्योतो च सातिर्वा मातृगर्भोत्सुखेनोत्पन्न इत्यर्थ:= आत्मानंद के आधीन होने से सुखसाद्भूत हैं। अथवा माता के गर्भ से सुखपूर्वक उत्पन्न होते हैं, माता को तथा बालक को दोनों को ही पीड़ा नहीं होती है, अत: सुखसाद्भूत हैं।

पुण्यराशि:= सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं, पुण्यस्य राशि: पुंज: पुण्यराशि:। सातावेदनीय, शुभायु, नरकायु छोड़कर देवायु, मनुष्यायु, तिर्यगायु ये तीन, नाम कर्म की ३७ शुभ्र प्रकृतियाँ और उच्चगोत्र इस प्रकार कुल ४२ कर्म-प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं, ऐसी पुण्यराशि से भगवान युक्त हैं।

अनामय:= अविद्यमान: आमयो रोगो यस्येति अनामय: निरामय: इत्यर्थ:= जिनको रोग कभी भी पीड़ित नहीं करता, वे अनामय हैं अर्थात् सभी तीर्थंकर रोगरहित होते हैं।

धर्मपाल:= उत्तमक्षमादि धर्म:। धर्मं पालयतीति धर्मपाल:= उत्तम क्षमादि दश धर्मों के रक्षक होने से भगवान धर्मपाल हैं।

जगत्पाल:= गच्छतीत्येवंशीलं जगत्, जगत् इति कोऽर्थ: मन: पालयतीति जगत्पाल: मनोरक्षक: इत्यर्थ:= सर्वदा निरन्तर जिसमें नाना परिणति होती है उसे जगत् कहते हैं, यहाँ जगत् का अर्थ-अभिधेय मन है अत: मन का रक्षण प्रभु ने किया। इसलिए वे मनोरक्षक भी हैं।

धर्मसाम्राज्यनायक:= धर्म एव साम्राज्यं चक्रवर्तित्वं तस्य नायक स्वामी धर्मसाम्राज्यनायक:= धर्म ही साम्राज्य है, चक्रवर्तित्व है उसके प्रभु स्वामी हैं। अत: वे धर्मसाम्राज्यनायक हैं।

इस प्रकार सूरिश्रीमदमरकीर्त्तिविरचित जिनसहस्रनाम टीका में दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

卐 एकादशमोऽध्याय: 卐

(उपसंहार:)

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥

टीका : धाम्नांपते:= धाम्नां तेजसां पति: स्वामी धाम्नांपति: **सम्बोधने** हे धाम्नांपते वृषभदेव, **तव** स्वामिन् **अमूनि** प्रत्यक्षीभूतानि **नामानि** श्रीमान् स्वयंभूर्वृषभादीनि। **आगमकोविदै:=** आगमे सिद्धांते कोविदा: विद्वांस: तैरागमकोविदै:, **समुच्चितानि** = एकत्री-कृतानि **अनुध्यायन** चिन्तयन् अर्थपूर्वकं विचारयन् **पुमान्** रत्नत्रयधारको भव्यपुरुष:। **पूतस्मृति:=** पूता पवित्रा स्मृति: स्मरणं यस्येति पूत-स्मृति: पवित्रज्ञानी **भवेत्** स्यादित्यर्थ:= कोट्यवधि चन्द्रसूर्यों के तेजोवलय से भी अधिक तेजोमण्डल के स्वामिन् हे वृषभ जिनेश, जैनागम चतुर विद्वज्जनों ने आपके नामों का यह संग्रह किया है; जो पुरुष इनका बारबार चिन्तन करेगा वह रत्नत्रय धारी होकर **पवित्र स्मृतिवाला** पवित्र ज्ञानी होगा ॥१॥

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मत:।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२॥

टीका - गोचरोऽपि = गम्योऽपि, कासां **आसां गिरां** वाणीनामपि **त्वं** भवान्, **अवाग्गोचर:** न वाचां गोचर: अवाग्गोचर:, **मत:** कथित :, **स्तोता**- स्तुतिकर्त्ता **तथापि तथैवासंदिग्धं** नि:संदेहं यथा भवति तथा, **त्वत्त:** त्वत् सकाशात् **अभीष्टं** मनोभीष्टं, **फलं** स्वर्गमोक्षलक्षणं, **भजेत्** भजतीत्यर्थ ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो, आप इन सहस्रनामों के वचनों का विषय होकर भी यथार्थतया देखा जाय तो आप वचनों के अविषय हैं क्योंकि आप में अनन्तगुण प्रकट हुए हैं, अत: वे गुण वचनों के विषय नहीं होते हैं तो भी आपकी स्तुति करने वाला व्यक्ति आपसे नि:संशय अभीष्ट स्वर्गमोक्षात्मक फल को प्राप्त कर लेता है ॥२॥

त्वमतोऽसि जगद्बंधु: त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धित: ॥३॥

टीका : त्वं भवान्, **अतोसि** अतः कारणात् भवसि, **जगद्बन्धुः** जगतामुपकारको **जगद्बंधुः त्वमतोऽसि जगद्भिषक्** जगतां भिषक् अपूर्ववैद्यः जन्मजरामरणव्याधिस्फेटकत्वात् जगद्भिषक्। **त्वमतोऽसि जगद्धाता** जगतां धाता पोषकः जगद्धाता। **त्वमतोऽसि जगद्धितः** जगद्भ्यो वा जगतां हितः जगद्धितः।

हे नाथ ! आप इस कारण से सर्व जगत् पर उपकार करने वाले बंधु हैं तथा हे स्वामिन् ! आप जन्मजरामरण रोगों को दूर करने वाले अपूर्व वैद्य हैं। हे स्वामिन् ! आप जगत् के पोषक होने से धाता-विधाता हैं और आप ही जगत् का सच्चा हित करने वाले हैं ॥३॥

त्वमेको जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गम् स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ॥४॥

टीका : त्वं भवान् एकः अद्वितीयः, जगतां प्राणिनां, **ज्योतिः** तेजः। त्वं भवान्, **द्विरूपोपयोगभाक्** - केवलदर्शनकेवलज्ञानद्विरूपः। द्विरूपश्चासावुपयोगो लक्षणं द्विरूपोपयोगः तं भजते इति द्विरूपोपयोगभाक्। त्वं भवान्, **त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गम्** त्रिरूपेण सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रेण एका अद्वितीया मुक्तिस्त्रिरूपैक मुक्तिः तस्याः अंगं शरीरं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गम्, वृषभः। **स्वोत्थानंतचतुष्टयः** स्वस्य आत्मनः सकाशात् उत्थं उत्पन्नं अनंतचतुष्टयं यस्य स स्वोत्थानंतचतुष्टयः भगवानित्यर्थः=

हे प्रभो ! आप जगत् के प्राणियों के लिए एक अद्वितीय प्रकाश रूप हैं। हे नाथ ! आप केवलज्ञान रूप तथा केवलदर्शन रूप दो उपयोगों को धारण करते हैं। हे स्वामिन् ! आप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीन गुणों से एक अद्भुत अनुपम मुक्ति के साधन हैं। हे जिनेन्द्र ! आप आपसे ही उत्पन्न हुए अनन्त चतुष्टय से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तशक्तियों से युक्त हैं ॥४॥

त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥

टीका : त्वं भवान् **पंचब्रह्मतत्त्वात्मा** पंच ब्रह्मणां परमेष्ठिनां तत्त्वं स्वरूपं आत्मा यस्येति पंचब्रह्मतत्त्वात्मा। **पंचकल्याणनायक:** पंचकल्याणानां नायकः स्वामी पंचकल्याणनायक:। **षड्भेदभावतत्त्वज्ञ:** षड्भेदभावा: षट्पदार्था: तेषां तत्त्वं मर्मं जानातीति षड्भेदभावतत्त्वज्ञ:। त्वं भवान **सप्तनयसंग्रह:** सप्तनया: नैगमादयस्तेषां सङ्ग्रह: स्वीकारो यस्य स सप्तनयसंग्रह: ॥५॥

हे परमेष्ठिन् ! आप पंचब्रह्म - पंचपरमेष्ठीस्वरूप हैं, अर्थात् अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधुस्वरूप हैं। तथा हे जिनराज, आप गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष ऐसे पंचकल्याणकों के नायक स्वामी हैं तथा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनके स्वरूप के, गुणों के और पर्यायों के ज्ञाता हैं तथा नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ऐसे सात नयों को आपने स्वीकार किया है अर्थात् प्रमाण रूप केवलज्ञान-स्वरूप आप होने से, नय जो प्रमाण का एकदेश रूप है, वह भी आपका ही स्वरूप है ॥५॥

दिव्याष्टगुणमूर्त्तिस्त्वं नवकेवललब्धिक:।
दशावतारनिर्द्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥६॥

टीका : दिव्याष्टगुणमूर्त्ति: अष्टौ च ते गुणा: अष्टगुणा: दिव्याश्च ते अष्टगुणा: दिव्याष्टगुणा: सम्यक्त्वदर्शनज्ञानवीर्यसूक्ष्मावगाहनागुरु-लघ्वव्याबाधास्ते मूर्ति: शरीरं यस्य स दिव्याष्टगुणमूर्त्ति:। त्वं भवान् **नव-केवललब्धिक:, दशावतारनिर्द्धार्य:** दशावतारै: महाबलादि पुरुजिनपर्यंत दशावतारै: निर्द्धार्य: सम्पन्न: दशावतारनिर्द्धार्य: मां देवेन्द्रं जिनसेनाचार्यं **पाहि** रक्ष **परमेश्वर**।

हे ईश, आप दिव्य अविनाशी सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, वीर्य, सूक्ष्म, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध आठ गुणरूप शरीर के धारक हैं। तथा आप नव केवललब्धियों से युक्त विराजमान हैं अर्थात् अनन्तज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र इन नव केवल लब्धियों से युक्त हैं तथा हे परमेश्वर, आप दश जन्मों से सम्पन्न होकर मुक्त हो गये हैं। आप मेरा अर्थात् श्री जिनसेनाचार्य का रक्षण करो। श्री ऋषभ जिनेश्वर

के दश भव के नाम-महाबल राजा, ललितांगदेव, वज्रजंघ राजा, भोगभूमिज, प्रथम स्वर्ग में देव, सुविधि, स्वर्ग के इन्द्र, वज्रनाभि, सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र और (१०) वृषभनाथ हुए ॥६॥

युष्मन्नामावली दृब्धविलसत्स्तोत्रमालया।
भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥

टीका : युष्माकं नामावलिः श्रेणिः तया दृब्धा रचिता गुंफिता विलसंती शोभमाना स्तोत्रमाला स्तवनमाला **युष्मन्नामावली दृब्धविलसत्स्तोत्रमाला तया भवन्तं** नाभिमरुदेवीतनयं **वरिवस्यामः** सेवामहे आराधयामः **प्रसीद** प्रसन्नोभव, **अनुगृहाण** कृपां विधेहि **नः** अस्मान् प्रति ॥७॥

हे ईश, आपकी नामावली से जिसकी रचना की है तथा जो मन को हरण करती है, ऐसी स्तोत्रमाला से हम आपकी सेवा कर रहे हैं अर्थात् नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र की हम आराधना कर रहे हैं। हे प्रभो ! आप हम पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करें ॥७॥

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येतत्स स्यात् कल्याणभाजनम् ॥८॥

टीका : इदं स्तोत्रं इदं स्तवनं सहस्रनामलक्षणं **अनुस्मृत्य** अनुध्यायन् चिंतयित्वा **पूतः** पवित्रो **भवति** स्यात् **भाक्तिकः** पुण्यात्मा **यः** पुमान् **संपाठं** समीचीनं पाठं यथा भवति तथा **पठति** उच्चारयति **एतत्स्तोत्रं स** पुमान् अध्येता, **स्यात्** भवेत् **कल्याणभाजनं** कल्याणानां गर्भावतारजन्माभिषेकनिष्क्रमणज्ञान निर्वाणानां भाजनं स्थानं आविष्टलिंगत्वान्नपुंसकत्वं ॥८॥

इस सहस्रनाम स्तोत्र का स्मरण कर भक्तजन पवित्र हो जाते हैं। जो भक्त इसका समीचीन रीति से पठन करता है अर्थात् शान्तचित्त से शुद्धोच्चारण पूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ता है वह गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष ऐसे पाँच कल्याणों का स्थान होता है ॥८॥

ततः सदिदं पुण्यार्थी पुमान् पठतु पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥९॥

टीका : ततः कारणात् **सत्** विद्यमानं **इदं** प्रत्यक्षीभूतं **पुण्यार्थी** पुण्यमर्थः प्रयोजनमस्यास्तीति पुण्यार्थी **पुमान्** नरः पठतु **पुण्यधीर्यस्येति** पुण्यधीः **पौरुहूती** इंद्रसंबंधिनीं श्रियं लक्ष्मीं प्राप्तुं परमामुत्कृष्टां **अभिलाषुकः** अभिलषतीत्येवंशीलः पुमान् अभिलाषुकः इति सुष्ठम् ॥९॥

इसके पाठ करने से जिसकी बुद्धि पवित्र है तथा जो पुण्य को चाहता है ऐसा व्यक्ति इन्द्र की सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी की प्राप्ति की इच्छा से इस स्तुति का पाठ सदा पढ़े ॥९॥

इस प्रकार सूरिश्रीमदमरकीर्तिविरचित जिनसहस्रनाम टीका में ग्यारहवाँ अध्याय (उपसंहार) पूर्ण हुआ।

卐 जिनस्तोत्रम् 卐

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमु[१]त्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिंत्यवृत्तये॥१॥

टीका – तुभ्यं नम: श्रीमते नम: अस्माकं प्रणामोस्तु कथंभूताय स्वयंभुवे स्वयं परोपदेशमंतरेण जगत्स्वरूपं जानातीति स्वयंभू: तस्मै स्वयंभुवे। पुन: नम: कस्मै तथोद्भूतवृत्तये तथा सत्यासत्यरूपा उद्भूता उत्पन्ना वृत्तिश्चारित्रं यस्य स तथोद्भूतवृत्ति: तस्मै तथोद्भूतवृत्तये। किं कृत्वा उत्पाद्य संपाद्य कं आत्मानं जीवम् क्व आत्मनि जीवे, केन कारणेन, स्वात्मनैव स्वश्चासौ आत्मा स्वात्मा, तेन स्वात्मना, पुन: अचिंत्यवृत्तये, अचिंत्या अनिर्वचनीया वक्तुमशक्या वृत्तिर्वर्त्तनं माहात्म्यं यस्य स अचिन्त्यवृत्ति: तस्मै अचिन्त्यवृत्तये॥१॥

अर्थ : परोपदेश के बिना ही जगत् के स्वरूप को जानते हैं अत: आप 'स्वयंभू' हैं, अपनी आत्मा में, अपनी आत्मा के द्वारा अपने आपको उत्पन्न किया है अत: आप 'स्वयंभू' हैं। तथा सत्य (निश्चय) असत्य (व्यवहार नय) रूपसे उत्पन्न हुआ है चारित्र जिसके वह उद्भूतवृत्ति कहलाते हैं। अचिन्त्य अनिर्वचनीय, वचनों के द्वारा जिसका कथन करना अशक्य है 'वृत्ति' माहात्म्य जिसका उसको अचिन्त्य वृत्ति कहते हैं। ऐसे 'स्वयंभू' उद्भूत वृत्ति और अचिंत्य माहात्म्य वाले आपको मेरा नमस्कार हो॥१॥

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नम:।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतां वर॥२॥

टीका – ते तुभ्यं नम: पादपतनमस्तु। कस्मै जगतां पत्ये जगतां चतुरशीति-लक्षयोनिसमुत्पन्नप्राणिनां पत्ये स्वामिने। पुन: नमोनम: वारंवारं प्रणामोस्तु कस्मै लक्ष्मी-भर्त्रे लक्ष्म्या: स्वर्गमृत्युपातालोद्भवाया: विष्णुकान्ताया: भर्त्ता स्वामी तस्मै लक्ष्मीभर्त्रे। पुन: तुभ्यं नम: नमस्कारोऽस्तु। हे विदांवर: विदां विदुषां मध्ये वर: श्रेष्ठ: विदांवर तस्यामंत्रणे हे विदांवर! हे वदतां परमतार्किकाणां मध्येवर: प्रधान: तस्य संबोधनं हे वदतांवर, ते तुभ्यं नम: नमस्कारोऽस्तु ॥२॥

---

१. 'संपाद्य' पाठ भी आदिपुराण में आया है।

अर्थ : जगतां पत्ये चरणों में झुकने को नमस्कार कहते हैं। चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न प्राणियों को जगत् (संसार) कहते हैं अथवा - ऊर्ध्व लोक, अधोलोक और मध्यलोक रूप तीन लोक को जगत् कहते हैं- इन तीन लोक में स्थित सारे प्राणियों के स्वामी (पालक, रक्षक) भगवन् आपके लिए मेरा नमस्कार है।

मध्य, स्वर्ग और पाताल लोक में उत्पन्न लक्ष्मी के स्वामी आपके लिए मेरा नमस्कार हो। पाताल लोक की लक्ष्मी धरणेन्द्र की है, 'मृत्यु' लोक की लक्ष्मी चक्रवर्त्ती की है और स्वर्ग लोक की सम्पदा इन्द्र की है, तीन लोक की सम्पदा के स्वामी आपको नमस्कार करते हैं अतः आप लक्ष्मी के स्वामी हैं, अथवा आप अंतरंग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी और समवसरणादि बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी हैं। विद्वानों में आप श्रेष्ठ हैं अतः सम्बोधन में है विदांवर तथा आप 'वंदना' परम तार्किक जनों में 'वर' श्रेष्ठ हैं अतः हे वदतांवर ! आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं॥२॥

कामशत्रुहणं[१] देवमामनंति मनीषिणः।
त्वामानुमः सुरेण्[२]मौलि स्रग्मालाभ्यर्चित क्रमम्॥३॥

टीका - हे स्वामिन् ! मनीषिणो विद्वान्सः त्वां भवंतं कामशत्रुहणं कामारिघ्नं देवमामनंति कथयन्ति। पुनः हे देव ! त्वां वयं ग्रन्थकर्त्तारः आनुमः स्तुमः। कथंभूतं त्वाम् ? सुरेण्मौलिस्रग्मालाभ्यर्चितक्रमं सुराणां देवानां ईट् स्वामी सुरेट्, तस्य तेषां वा मौलयः मुकुटानि, तेषां स्रजां पुष्पाणां मालास्ताभि-रभ्यर्चितौ क्रमौ पादौ यस्य सः सुरेण्मौलिस्रग्मालाभ्यर्चित-क्रमस्तं सुरेण्मौलिस्रग्मालाभ्यर्चितक्रमम्।३॥

अर्थ : हे स्वामिन् ! मनीषी (विद्वान्लोग) आपको कामशत्रु का नाशक देव मानते हैं। अतः देवों के स्वामी इन्द्र के मुकुट में लगी हुई माला के द्वारा अर्चित (पूजित) चरण वाले भगवन् ! तुझको हमलोग (ग्रन्थकर्त्ता) नमस्कार करते हैं, आपकी स्तुति करते हैं॥३॥

---

१. कामारिहनम् - काम रूपी अरि को हन् याने मारने वाले।

२. त्वामानुमः सुरेण्मौलिभायाला, त्वामानुमः सुरेण्मौलिस्रग्माला, पाठ भी है।

ध्यानद्रुघणनिर्भिन्न-घनघातिमहातरुः ।
अनंतभवसंतानजयादासीरनंतजित् ॥४॥

टीका - हे देव, भगवन् ! कथंभूतः ध्यान द्रुघण निर्भिन्न घनघाति महातरुः ध्यानं शुक्लध्यानं स एव द्रुघणः कुठारस्तेन निर्भिन्नः उन्मूलितो घनो निविडो घातिमहातरुः ज्ञानावरणादिकर्मचतुष्टय महावृक्षो येन सः ध्यानद्रुघणनिर्भिन्न घनघातिमहातरुः। हे देव ! अनंतजित् अनंत-संसारं जितवान् स अंनतजित्। त्वमासीस्त्वमभूः। कस्मात् अनंतभवसंतानजयात्। अनंतश्चासौ भवोऽनंतभवः तस्य संतानजयात् सन्ततिजयात् संततिच्छेदात् ॥४॥

अर्थ : ध्यान (शुक्ल ध्यान) रूपी तीक्ष्ण कुठार के द्वारा विदार दिये हैं (नष्ट कर दिये हैं, मूलसे उखाड़ दिये हैं) निविड़ (घोर) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय रूप चार घातिया कर्मरूपी महावृक्ष को जिसने, वह कहलाता है ध्यानद्रुघणनिर्भिन्नघनघातिमहातरु। ध्यान के द्वारा घातिया कर्मरूपी वृक्ष के नाश करने वाले भगवान आपने अनन्त संसार की संतति का नाश कर दिया है अतः आप 'अनन्तजित्' कहलाते हैं ॥४॥

त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्दर्पमतिदुर्ज्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान् ॥५॥

टीका - हे जिन ! कर्म्मारातीन् जयतीति जिनः सम्बोधने हे जिन भगवन् श्रीनाभिनंदन। भवान् मृत्युंजयः आसीत् अभूत् किं कृत्वा विजित्य पराभूय कं मृत्युराजं यमं कथंभूतं त्रैलोक्यनिर्ज्जयावाप्तदुर्दर्प्पं त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य निर्जयः पराजयः तस्मात् अवाप्तः प्राप्तो दुर्दर्प्पो दुष्टाहंकारो येन स त्रैलोक्यनिर्जया-वाप्त दुर्दर्प्पस्तं त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्दर्प्पं। पुनः कथंभूतं अतिदुर्जयं, अत्यंतं जेतुमशक्यमित्यर्थः ॥५॥

अर्थ : कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाला जिन कहलाता है और सम्बोधन में हे जिन ! हे नाभिनन्दन भगवन् ! आपने तीन लोक को जीत लेने के कारण महा अभिमान को प्राप्त तथा दुर्जय मृत्युराज को भी पराजित कर दिया है अतः आप मृत्युंजय कहलाते हैं ॥५॥

विधूताशेषसंसारबंधनो भव्यबांधवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि[1] जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥६॥

टीका - त्वं हे नाभिनंदन ! असि भवसि भवान् कथंभूतः विधूताशेषसंसारबंधनः विधूतं स्फेटितं अशेषं समग्रं संसाराणां पंचधाभवानां बंधनं येन सः **विधूताशेषसंसारबंधनः** पुनः कथंभूतः भव्यबांधवः भव्यानां रत्नत्रययोग्यानां बांधवो ज्ञातिः स भव्यबांधवः। पुनः कथंभूतः ? त्रिपुरारिः- त्रिपुराणां जन्मजरामरणनगरत्रयाणां अरिः शत्रुः त्रिपुरारिः। पुनः कथंभूतः ईशः ईष्टे परमानंदपदे ईशः स्वामी इत्यर्थः। पुनः कथंभूतः जन्ममृत्युजरान्तकृत् जन्म मातृगर्भान्निः सरणं, मृत्युः प्राणत्यागः, जरा वार्धक्यं तासां जन्ममृत्युजराणां अन्तं विनाशं करोतीति जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥६॥

अर्थ : हे नाभिनन्दन! आपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पांच प्रकार के प्रवर्तनमय संसार के बंधन का पूर्ण रूप से नाश कर दिया है। अतः आप 'विधूताशेषसंसारबंधन' कहलाते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को प्रगट करने योग्य भव्य जीवों के बन्धु होने से 'भव्य बांधव' हैं। जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु के नाशक होने से त्रिपुरारि हैं अर्थात् जन्म-जरा एवं मृत्यु रूप तीन नगर के नाशक हैं। भगवन् ! आप परम पद में स्थित हो, महान् हो अतः 'ईश' हो, स्वामी हो। किसी प्रति में 'त्वमेवासि' पद है अतः जन्म-जरा-मृत्यु के नाशक होने से आप ही 'त्रिपुरारि' हो। माता के गर्भ से निकलने को जन्म, प्राणत्याग को मृत्यु, वार्धक्य को जरा और इन तीनों के विनाशक को जन्म-मृत्यु-जरान्तकृत् कहते हैं ॥६॥

त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात्त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥

टीका - हे ईशितः हे स्वामिन् त्वमसि त्वं भवसि त्रिनेत्रः किं कुर्वन् दधत् धरत् किं तच्चक्षुः लोचनम्। किमाख्यं केवलं पंचमज्ञानं तदेवाख्या नाम यस्य चक्षुः तत्केवलाख्यं। कथंभूतं त्रिधोत्थितं त्रिप्रकारेण उत्था उत्थानं विद्यते यस्य

---

१. त्वमेवासि-

तत्त्रिधोत्थितम्। कस्मात् त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिकालविषयाणां अतीतानागतवर्त्तमानगोचराणामशेषं समग्रं तत्त्वं जीवादिलक्षणं तस्य भेदात् पृथक्करणात् अतस्त्रिनेत्रोऽसीति ॥७॥

अर्थ : ईशित: (हे स्वामिन्) भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान रूप त्रिकाल के विषयभूत सम्पूर्ण जीवादि तत्त्वों के भेद से तीन प्रकार द्रव्य, तत्त्व और पदार्थ का उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यरूप का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से उत्पन्न केवलज्ञान रूपी नेत्र को धारण करने वाले होने से आप ही त्रिनेत्र हो। अर्थात् संसारी प्राणी दो चर्म चक्षुयुक्त हैं परन्तु आप तीन लोक के सारे पदार्थों को एक साथ जानने वाले केवलज्ञान रूपी तीसरे नेत्र को धारण करने वाले होने से 'त्रिनेत्र' हो॥७॥

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुरमर्दनात्।
अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्द्धनारीश्वरोस्यत: ॥८॥

टीका - प्राहु: ब्रुवन्ति स्म, के सूरय: त्वां भवन्तं कर्मतापन्नं कथंभूतम् ? अंधकान्तकं अन्धकस्य मोहस्य अन्तकं विनाशकं कस्मात् मोहांधासुरमर्दनात् मोह एव अंधासुरो दैत्यविशेष: तस्य मर्दनात् विनाशादित्यर्थ:। अर्द्धन्तेनारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्यत: यस्मात्ते ज्ञानावरणाद्यष्टविध कर्म रिपु घातिरूपा अर्द्ध न अरय: अत: कारणात् अर्द्धनारीश्वरोऽसि। अर्द्धनारीश्चासौ ईश्वरश्च अर्द्धनारीश्वर: ॥८॥

अर्थ : हे भगवन् ! आपने मोहरूपी अन्धासुर का नाश किया है अत: आपको अन्धकान्तक कहते हैं।

हे भगवन् ! आपके ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में अर्ध अर्थात् चार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय रूप चार घातिया कर्म नहीं हैं अत: आप (अर्ध + न + अरि + ईश्वर) अर्धनारीश्वर कहलाते हैं॥८॥

शिव: शिवपदाध्यासात्[१] दुरितारिहरो हर:।
शंकर: कृतशं लोके शंभवस्त्वं [२]भवत्सुख: ॥९॥

१. निवसनात् २. 'भवत्सुखे' भी पाठ है।

टीका - हे नाभिज भवान् शिव: कथ्यते न तु रुद्र: शिव: कस्मात् शिवपदाध्यासात् शिवस्य मोक्षस्य पद स्थान शिवपदं तत्राध्यासात् निवसनादिति। हे नाथ! भवान् हर: प्रतिपाद्यते न तु रुद्र:। कथंभूत: भवान् हर: दुरितारिहर:- दुरितारिं हरतीति निराकरोतीति दुरितारिहर: एतद्गुणो न तस्य वरीवर्तते। शंकर: हे स्वामिन् त्वं शंकर: न तु रुद्रो नाम शंकर:। कृतं विहितं शं सुखं लोके त्रैलोक्ये अतस्त्वं शंकर: त्वं शंभव: नत्वन्य: कथंभूत: भवत्सुख: भवत्संजायमानं सुखं परमानन्दलक्षणं यस्य स भवत्सुख: ॥९॥

अर्थ : हे भगवन् ! शिव (मोक्ष) पद (स्थान) में निवास करने से शिव कहलाते हैं। पापरूपी शत्रुओं का क्षय करने वाले होने से आप 'हर' कहलाते हैं। यह गुण जिसमें नहीं है वह 'हर' नहीं हो सकता।

तीन लोक में शं (सुख) करने वाले होने से शंकर कहलाते हैं, आप सच्चे सुख में निमग्न रहते हैं। (भवत्सुखं) उत्पन्न हुआ है परमानन्द लक्षण सुख जिसको वे भवत्सुख कहलाते हैं। अत: आपको शंभव कहते हैं॥९॥

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठ: पुरु: पुरुगुणोदयै:।
नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनन्दन: ॥१०॥

टीका- वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठ: जगत्सुप्राणिवर्गेषु ज्येष्ठ: वरिष्ठ: अतस्त्वं वृषभोऽसि भवसि। पुरु: पुरुगुणोदयै: पुरुगुणानां प्रचुरगुणानां उदयै: प्रादुर्भावै: पुरुस्त्वमसि भवसि। नाभेयो नाभिसंभूते: संभवनं संभूति: प्रादुर्भाव:। नाभेश्चतुर्दशकुलकरस्य संभूति: तस्मात् सकाशात् प्रादुर्भावात् नाभेय: नाभेरपत्यं पुमान् नाभेय:। इक्ष्वाकुकुलनंदन: इक्ष्वाकुकुलं नंदयतीति इक्ष्वाकुकुलनन्दन: ॥१०॥

अर्थ : संसारके सर्व प्राणियों में आप श्रेष्ठ हैं अत: आप वृषभ हैं। महान् गुरु के 'प्रचुर गुणों के' उदय का स्थान होने से आप पुरु हैं अर्थात् अत्यधिक गुणों का प्रादुर्भाव आपमें है अत: आप पुरु हैं।

चौदहवें कुलकर नाभिराजा के पुत्र होने से आप नाभेय हैं। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न होने से आप इक्ष्वाकुकुलनन्दन हैं॥१०॥

त्वमेक: पुरुषस्कन्धस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधाबुद्धसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारक: ॥११॥

टीका - हे नाथ ! त्वं भवान् एक: ज्ञानावरणाद्यष्टकर्महननक्रियायामेक: असहाय:, पुरुषस्कन्ध: त्वं पुरुषाणां पुंसां स्कन्ध: ग्रीवाधौरेय इत्यर्थ:। त्वं भवान् त्रिलोकस्य त्रिभुवनस्य द्वे लोचने। त्वं भवान् त्रिधा बुद्धसन्मार्ग: त्रिधा त्रिप्रकारेण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूपेण बुद्धो ज्ञात: सन्मार्गो मोक्षमार्ग:। त्वं भवान् त्रिज्ञ: त्रयमतीतानागत-वर्तमानं जानातीति त्रिज्ञ:। त्वं भवान् त्रिज्ञानधारक: त्रिज्ञानं मतिश्रुतावधिं धारयतीति त्रिज्ञानधारक: ॥११॥

अर्थ : हे नाथ ! आप ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के नाश करने की क्रिया में अकेले थे, असहाय थे, अत: एक हैं अथवा जगत् में आप 'एक' अद्वितीय हैं आपके समान दूसरा कोई नहीं है अत: एक हैं।

हे भगवन् ! आप पुरुषों (आत्माओं) में स्कन्ध (ग्रीवा के समान महान्) होने से पुरुष स्कन्ध हैं। अथवा पुरुषों में श्रेष्ठ केवल आप ही हैं।

हे भगवन् ! आप लोक (तीन लोक) के दो लोचन (नेत्र) हैं अर्थात् संसार के पदार्थों को समग्र रूप से जानने के कारणभूत व्यवहार और निश्चय नय का कथन करने वाले होने से आप ही दो नेत्र हैं।

आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप त्रिविध सन्मार्ग को जाना है अत: विज्ञ हैं। तीन लोक और भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान रूप तीन काल को जानने वाले ज्ञान के धारण करने वाले होने से त्रिज्ञानधारक हैं॥११॥

चतु:शरणमांगल्यमूर्त्तिस्त्वं चतुरस्रधी:।
पंचब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

टीका - त्वं चतु:शरणमाङ्गल्यमूर्त्ति: चतु:शरणानि अर्हच्छरणसिद्धशरण साधुशरण केवलिप्रज्ञप्त धर्मशरणानि माङ्गल्यानि अर्हत्सिद्ध साधु केवलि-प्रज्ञप्त धर्म माङ्गल्यानि तान्येव मूर्त्ति: शरीरं चतु:शरणमाङ्गल्यमूर्ति:। त्वं चतुरस्रधी:। त्वं पंचब्रह्ममय: पंचब्रह्मभिर्निवृत्तो निष्पन्न: पंचब्रह्ममय: पंचपरमेष्ठिस्वरूप इत्यर्थ:। त्वं देव ! परमाराध्य: त्वं पावन: पवित्र: हे देव मां स्तुतिकर्त्तारं श्रीजिनसेनाचार्यं देवेंद्रं वा पुनीहि पवित्रीकुरु ॥१२॥

अर्थ : हे भगवन् ! आप ही अरहंत, सिद्ध, साधु तथा केवलीप्रणीत धर्मरूप शरण चतुष्टय तथा मंगल चतुष्टय की मूर्त्ति रूप हैं। भगवन् आप ही 'चतुरस्रा' सम्पूर्ण धी 'बुद्धि' के धारक होने से चतुरस्रधी हो अर्थात् आप द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से सर्व पदार्थों के ज्ञाता होने से चतुरस्रधी हो। भगवन्, आप ही पाँच ब्रह्म से निष्पन्न होने से पंचब्रह्ममय हो, पंच परमेष्ठी स्वरूप हो। हे भगवन् ! आप ही परम पावन (पवित्र) हो, अतः हे देव मुझको पवित्र करो। स्तुति करने वाले जिनसेन को हे देव ! पवित्र कीजिये॥१२॥

स्वर्गावतरणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोस्तु ते॥१३॥

टीका - तुभ्यं नमः नमस्कारोऽस्तु। कस्मै सद्योजातात्मने सद्यस्तत्कालं जातः उत्पन्नः आत्मा यस्य स सद्योजातात्मा तस्मै सद्योजातात्मने। क्व स्वर्गावतरणे। हे वामदेव - वामो मनोहरो देवो वामदेवः तस्यामन्त्रणे। हे वामदेव! ते तुभ्यं नमोस्तु अस्माकं पादप्रणामोऽस्तु। कथंभूताय वामाय मनोहराय। क्व जन्माभिषेके मेरुस्नाने॥१३॥

अर्थ : तत्काल ही जन्म है, अब आगे जो जन्म को धारण नहीं करेंगे उसे सद्योजातात्मा कहते हैं। जो स्वर्ग से आकर एक ही बार जन्म धारण करने वाले हैं ऐसे स्वर्गावतरण सद्योजातात्मा को नमस्कार हो। अर्थात् स्वर्ग से आकर एक जन्म धारण करने वाले आपको नमस्कार हो।

वामदेव-वाम-मनोहर-सम्बोधन में वामदेव ! मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक करते समय अत्यन्त मनोहर दीखने वाले (जन्माभिषेक वाम) आपके लिए नमस्कार हो॥१३॥

इस श्लोक में गर्भकल्याणक और जन्मकल्याणक पूजा का कथन किया है।

सुनिष्क्रांतावघोराय परं प्रशममीयुषे।
केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते॥१४॥

टीका - ते तुभ्यं नमोऽस्तु। कस्मै ? अघोराय न घोरो रुद्रः अघोरः तस्मै

अघोराय शान्ताये इत्यर्थः। क्व सुनिष्क्रान्तौ सुनिष्क्रमणं तृतीयकल्याणं सुनिष्क्रान्तिः तस्यां सुनिष्क्रान्तौ। पुनः ईयुषे प्राप्ताय, कं ? परं सर्वोत्कृष्टं प्रशमं क्षमां। पुनः ईशानाय स्वामिने क्व केवलज्ञानसंसिद्धौ केवलज्ञानस्य संसिद्धिः निष्पत्तिस्तस्यां केवलज्ञानसंसिद्धौ चतुर्थकल्याणके ॥१४॥

अर्थ : घोर - क्रूर रौद्र। न घोर अघोर (शांत) सुनिष्क्रान्त (दीक्षा काल) के समय अत्यन्त शांत भावको धारण करने वाले अर्थात् दीक्षा कल्याणक के समय परम शांत भाव को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। घोर तपश्चरण करते हुए परम शांति (प्रशमभाव) को प्राप्त आपके लिए नमस्कार हो। यह दीक्षा कल्याणक का वर्णन है। केवलज्ञान की सिद्धि होने पर परम ईश (स्वामी) पने को प्राप्त प्रभुवर तुमको नमस्कार हो। यह चतुर्थ कल्याणक का संस्तवन है ॥१४॥

पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तिपदभागिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते॥१५॥

टीका – ते तुभ्यं नमः नमस्कारोऽस्तु। विमुक्तिपदभागिने विमुक्तिपदं विशिष्टं मोक्षस्थानं भजतीति विमुक्तिपदभागी तस्मै विमुक्तिपदभागिने। केन कारणेन ? पुरस्तत्पुरुषत्वेन पुरोऽग्रे शुद्धात्मस्वरूपत्वेन। पुनः ते नमः कस्मै अद्य बिभ्रते – अद्य इदानीं बिभ्रते धरते कां भाविनीं भविष्यन्तीं तत्पुरुषावस्थां शुद्धात्मस्वरूपावस्थाम् ॥१५॥ यहाँ से भगवान की अर्हन्त अवस्था का कथन है-

अर्थ : मोक्ष को प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ पुरुष होने से आप पुरु हैं (श्रेष्ठ हैं) अथवा पुरु (भविष्य काल में) शुद्धात्म स्वरूप मुक्तिपद को प्राप्त करने वाले (विमुक्तिपदभागिने) आपको नमस्कार हो। भविष्यकाल में विमुक्त पद को देने वाली अर्हन्त अवस्था को इस समय धारण करने वाले आपको नमस्कार हो। अथवा भविष्य में शुद्धात्म स्वरूप पुरुष की अवस्था को द्रव्यार्थिक नय से इस समय धारण कर रहे हो ॥१५॥

ज्ञानावरणनिर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने॥१६॥

टीका - ते तुभ्यं नमः नमस्कारः। कस्मै अनन्तचक्षुषे अनन्तानि अमर्यादीभूतानि केवलज्ञानलोचनानि यस्येति स अनन्तचक्षुस्तस्मै अनंतचक्षुषे अनंतज्ञानिने इत्यर्थः। कस्मादनंतचक्षुः ? ज्ञानावरण-निर्हासात् ज्ञानं केवलज्ञानं आवृणोतीति ज्ञानावरणं कर्म तस्य निर्हासात् निर्णाशात्। पुनः ते तुभ्यं नमः नमस्कारोऽस्तु। कस्मै विश्वदर्शिने विश्वं दृष्टवान् विश्वदर्शी तस्मै विश्वदर्शिने। कस्मात् विश्वदर्शी दर्शनावरणच्छेदात् दर्शनमावृणोतीति दर्शनावरणं कर्म तस्योच्छेदात् विनाशात् विश्वदर्शिने सकलदर्शिने इत्यर्थः ॥१६॥

अर्थ - ज्ञानावरण कर्म का नाश हो जाने से अनन्त केवलज्ञान रूपी चक्षु को धारण करने वाले भगवन् आपको नमस्कार हो। दर्शनावरण कर्म का नाश हो जाने से विश्व के दर्शक (सर्वदर्शी) भगवन् आपको नमस्कार हो।

अर्हन्त अवस्था में ज्ञानावरण कर्म का नाश होने से अनंत केवलज्ञान रूपी नेत्र के धारक सर्वज्ञ होते हैं और दर्शनावरण के नाश हो जाने से अनन्त दर्शन के धारक सर्वदर्शी होते हैं, इस प्रकार इसमें अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञानरूप दो चतुष्टय का कथन किया है ॥१६॥

नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ॥१७॥

टीका - दर्शनमोहघ्ने इति समर्थननिरूपणमेवमुत्तरत्रापि यथायोग्यम्। नमो नमस्कारोऽस्तु कस्मै दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये, दर्शनमोहं हंतीति दर्शनमोहहन्। तस्मै दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टिः क्षायिकेन क्षायिकसम्यक्त्वेन अमला निर्मला दृष्टिः तस्मै क्षायिकामलदृष्टये नमः। नमस्कारोऽस्तु कस्मै चारित्रमोहघ्ने विरागाय चारित्रमोहं कर्म हंतीति चारित्रमोहहन्, तस्मै चारित्र-मोहघ्ने। विरागः विगतो विनष्टो रागस्त्र्यादिलक्षणो यस्य स विरागस्तस्मै विरागाय। पुनः नमः कस्मै महौजसे महत् ओजः उत्साहो यस्य स महौजाः, तस्मै महौजसे नमः ॥१७॥

अर्थ : दर्शनमोह का क्षय करने वाले तथा निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन से युक्त आपको नमस्कार हो।

चारित्र मोहनीय कर्म का नाश करने वाले, वीतरागी तथा महातेजस्वी भगवन् आपको नमस्कार हो। ये मोहनीय कर्म का नाश होने से होते हैं ॥१७॥

नमस्तेऽनंतवीर्याय नमोऽनन्तसुखात्मने।
नमस्तेऽनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ।।१८।।

टीका – ते तुभ्यं नमः, कस्मै अनंतवीर्याय। पुनः नमः कस्मै अनंतलोकाय अनंतोऽगणितो लोकः प्रकाशः उद्योतो यस्य स अनंतलोकः तस्मै अनंतलोकाय। पुनः नमः कस्मै लोकालोकविलोकिने लोकालोकं विलोकयतीति लोकालोक विलोकी तस्मै लोकालोकविलोकिने नमः ।।१८।।

अर्थ : अन्तराय कर्म का नाश होने से अनन्त वीर्य (शान्ति) के धारक भगवान आपको नमस्कार है। अनन्त सुख स्वरूप भगवान आपको नमस्कार हो। अनन्त लोक और अलोक के देखने वाले होने से अनन्त लोकरूप आपको नमस्कार हो ।।१८।।

नमस्तेऽनंतदानाय नमस्तेऽनंतलब्धये।
नमस्तेऽनंतभोगाय नमोऽनंतोपभोगिने ।।१९।।

टीका - ते तुभ्यं नमः कस्मै अनंतदानाय अनंतं विनाशरहितं दानं अनुग्रहार्थं स्वपरोपकारं यस्य स अनंतदानः तस्मै अनंतदानाय। तथा चोक्तं-तत्त्वार्थसूत्रे श्रीमदुमास्वामिना- 'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्' अस्यायमर्थः। स्वपरोपकारोऽनुग्रहः स्वोपकारः पुण्यसंचयः। परोपकारः सम्यक्ज्ञानादिवृद्धिः स्व शब्दो धनपर्यायवचनः। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गस्त्यागो दानं वेदितव्यमिति। पुनस्ते तुभ्यं नमः कस्मै ? अनंतलब्धये अनंता असंख्येया लब्धिलक्षणो लाभो यस्य स अनंतलब्धिः तस्मै अनंतलब्धये। सम्यक्त्वं, चारित्रं, ज्ञानं, दर्शनं, दानं, लाभः भोगोपभोगो वीर्यं चेति नवकेवललब्धयः। पुनस्ते तुभ्यं नमः, कस्मै अनंतभोगाय अनंत-भोगो गंधोदकवृष्टिपुष्पवृष्टिशीतमृदुसुगंधवृष्टिश्चेति वातादि लक्षणो भोगः, सकृद्भोग्यं वस्तु भोगः। समयं समयं प्रत्यनन्यसाधारण-शरीरस्थितिहेतुः पुण्य परमाणु नो कर्म्माभिधानो भोगो यस्येति अनन्तभोगः, तस्मै अनंतभोगाय। पुनस्ते तुभ्यं नमः कस्मै अनंतोपभोगिने अनंतोपभोगः छत्रचामरसिंहासनाशोकतरुप्रमुखो मुहुर्भोग्यं समवसरणादिलक्षणं वस्तु विद्यते यस्येति अनन्तोपभोगी तस्मै अनन्तोपभोगिने ।।१९।।

अर्थ – स्व और पर का उपकार करने के लिए जो अपने धन का त्याग किया जाता है उसको दान कहते हैं। दान करने वाले के पुण्य का संचय होता है और लेने वाले के ज्ञानादि की वृद्धि होती है। भगवान् अनन्त जीवों का उपकार करने वाले, धर्मोपदेश देते हैं अतः अविनाशी दान के दाता आपको नमस्कार हो। अविनाशी (क्षायिक) दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र रूप नव लब्धि के धारक भगवन् आपको नमस्कार हो। केवलज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। केवलदर्शनावरण के क्षय से उत्पन्न केवल दर्शन क्षायिकदर्शन है। दानान्तराय कर्मके क्षय से अनन्त जीवों का उपकारक उपदेश अनन्तदान है। लाभान्तराय कर्म के क्षय होने से अन्य साधारण जीवों में नहीं पाये जाने वाले असाधारण परम सूक्ष्म और परम शुभ अनन्तानन्त परमाणु प्रति समय सम्बंध को प्राप्त होते हैं वह अनन्त क्षायिक लाभ है। एक बार भोगा जाता है उसको भोग कहते हैं। भोगान्तराय कर्म के क्षय होने से गन्धोदकवृष्टि, पुष्पवृष्टि आदि होती है, वह क्षायिक भोग है। जो बार-बार भोगने में आता है उसको उपभोग कहते हैं। उपभोगान्तराय के क्षय से छत्र, चमर, सिंहासन आदि विभूतियाँ होती हैं वह क्षायिक उपभोग है। वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन के द्वारा सर्व द्रव्य और पर्यायों को जानने और देखने में समर्थ होना क्षायिक वीर्य है। चार अनन्तानुबंधी और तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियों का नाश होने से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। सोलह कषाय और नव नोकषाय के क्षय से क्षायिक चारित्र होता है। इन नव लब्धियों से युक्त को अनन्त लब्धि कहते हैं, उन अनन्त लब्धियों से युक्त भगवान को नमस्कार हो।

गन्धोदकवृष्टि, पुष्पवृष्टि, मन्द सुगन्धवायु, मन्द सुगन्धित वर्षा आदि एक बार भोगने में आने वाले भोगों के भोक्ता प्रभु अनन्त भोग कहलाते हैं, उन अनन्त भोग के भोक्ता तुम्हारे लिए नमस्कार हो। अथवा शरीर की स्थिति के कारणभूत प्रतिक्षण सूक्ष्म, परम विशुद्ध नोकर्म वर्गणा शरीर के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होती है उसको भी भोग कहते हैं। ऐसी अनन्त भोगवाली आत्मा को नमस्कार किया है। छत्र, चमर, सिंहासन, अशोकवृक्ष प्रमुख बार-बार भोगने

में आने वाली वस्तुओं से युक्त समवसरण में स्थित अनन्तोपभोगी आत्मा को नमस्कार हो ॥१९॥

नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

टीका - नमः नमस्कारः, कस्मै ? परमयोगाय योगो ध्यानं ध्यानसामग्री।

साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतो निरोधनम्।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः ॥

अथवा : **न पद्मासनतो योगो न च नासाग्रवीक्षणात्।**
मनसश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते ॥

परमश्चासौ योगः परमयोगः तस्मै परमयोगाय। पुनस्ते तुभ्यं नमः कस्मै अयोनये - योनिर्नवधाऽविद्यमाना योनिर्यस्येति अयोनिस्तस्मै अयोनये तथा चोक्तम् तत्त्वार्थसूत्रे - 'सचित्तशीतसंवृताः सेतरामिश्राश्चैकशस्तद्योनयः।' पुनः नमस्कारोऽस्तु कस्मै परमपूताय पूतः पवित्रः कर्ममलकलंकरहितः परमश्चासौ पूतः परमपूतः तस्मै परमपूताय। पुनः ते तुभ्यं नमः कस्मै ? परमर्षये परमश्चासौ ऋषिः केवलज्ञानर्द्धिसहितः, परमर्षि तस्मै परमर्षये ॥२०॥

अर्थ : साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्तनिरोध और शुद्धोपयोग ये सर्व एकार्थवाची हैं।

पद्मासन भी योग नहीं है और नासाग्र दृष्टि भी योग नहीं है अपितु मन और इन्द्रियों का संयोग योग कहलाता है। परम (उत्कृष्ट) योग (शुद्धोपयोग) जिसके है वह परमयोग कहलाते हैं। उन परम योगवाले भगवान् को नमस्कार हो। जिनके सचित्त, अचित्त, संवृत, विवृत, शीत, उष्ण, सचित्ताचित्त, संवृतविवृत शीतोष्ण रूप नव योनि नहीं है वह अयोनि कहलाता है। अथवा चौरासी लाख योनियों से रहित को भी अयोनि कहते हैं, उस अयोनि रूप आपको नमस्कार (हो)।

कर्मकलंक से रहित को पूत (पवित्र) कहते हैं। भगवन्, आप कर्मकलंक से रहित होने से परम (अत्यन्त) पवित्र हैं अतः परमपवित्र भगवन् आपको

नमस्कार हो। जो केवलज्ञान रूप ऋद्धि से युक्त होते हैं उनको ऋषि कहते हैं। केवलज्ञान सर्वोत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है। उस केवलज्ञानी परमऋषि के लिए नमस्कार हो ॥२०॥

नमः परमविद्याय नमः परमतच्छिदे।
नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

टीका - नमः परमविद्याय- केवलज्ञानलक्षणोपलक्षिता मतिश्रुतावधिमनः- पर्ययरहिता विद्या परमविद्या यस्येति परमविद्यः तस्मै परमविद्याय। उक्तं च पूज्यपादेन भगवता-

क्षायिकमनंतमेकं, त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम्।
सकलसुखधाम सततं वंदेऽहं केवलज्ञानम्॥

नमः परमतच्छिदे-परमतं परकीयं मतं छिनत्तीति परमतच्छित् तस्मै परमतच्छिदे उक्तं च श्रीसमन्तभद्राचार्यैः-

बहुगुणसंपदसकलं, परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव मतं समन्तभद्रं सकलम्॥

अस्यायमर्थः- बहवश्च ते गुणाश्च सर्वज्ञवीतरागत्वादयः तेषां संपत् संपत्तिः तया असकलं असम्पूर्णं परस्य मतम्। पुनरपि कथंभूतं परमतं मधुरवचन-विन्यासकलं मधुराणि श्रुतिरमणीयानि वचनानि च तेषां विन्यासो रचना तेन कलं मनोज्ञं, हे देव तव मतं शासनम् समन्तभद्रं, समंतात् भद्रं सर्वतः शोभमानं सकलं समस्तं पुनः नयभक्त्यवतंसकलम् नयाः नैगमादयस्तेषां भक्तयः भंगास्ते एवावतं-सकं कर्णभूषणं तल्लातीति नयभक्त्यवतंसकलमिति। पुनः परमतत्त्वाय परमं तत्त्वं मोक्षतत्त्वमस्यास्तीति परमतत्त्वः तस्मै परमतत्त्वाय। पुनः नमस्ते परमात्मने परमः उत्कृष्टः केवलज्ञानी आत्मा जीवो यस्य सः परमात्मा तस्मै परमात्मने नमः ॥२१॥

अर्थ - मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय रूप क्षायोपशमिक ज्ञानसे रहित केवलज्ञान रूप परम विद्या जिसके होती है वह परमविद्य कहलाता है। पूज्यपाद स्वामी ने भी क्षायिक अनन्त, एक (असहाय, अद्वितीय) तीनलोक और तीनकाल के सर्व पदार्थ और उनकी सारी पर्यायों को एक साथ जानने

वाले तथा सकल सुख के स्थान केवलज्ञान को नमस्कार किया है। उस परम विद्या रूप केवलज्ञान के धारी आपको नमस्कार हो।

तीन सौ त्रेसठ एकान्तवादी पर-मत (पर-दर्शनों का) उच्छेद करने वाले 'परमतच्छिदे' भगवान आपको नमस्कार हो। अथवा - समन्तभद्राचार्य ने स्वयंभू स्तोत्र में कहा है-

सर्वज्ञ, वीतरागादि बहुगुण रूपी सम्पदा से अपरिपूर्ण हैं, रहित हैं और मधुर वचनों की रचना से अतिमनोज्ञ हैं। ऐसे परमत का उच्छेद करने वाले तथा नैगम नयादि भंग रूप कर्णाभूषण को देने वाले एवं चारों तरफ से कल्याण-कारक तेरे मत ही शोभनीय हैं। श्रेष्ठ आत्मतत्त्वस्वरूप होने से आप परमतत्त्व रूप हैं अतः आपको नमस्कार हो।

परम (उत्कृष्ट) केवलज्ञानमय परमात्मा स्वरूप आपको नमस्कार हो।

नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे।
नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने॥२२॥

टीका - परमरूपाय परमं हरिहरहिरण्यगर्भादीनामसुलभं रूपं शरीरं मूर्तिर्यस्येति परमरूपः तस्मै परमरूपाय। तथा चोक्तं समन्तभद्रदेवैः-

तवरूपस्य सौंदर्यं दृष्ट्वा, तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः॥

उक्तं च मानतुंगाचार्यैः

यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति॥

समन्तभद्रोक्तम् -

भूषावेषायुधत्यागि, विद्यादमदयापरम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीरदोषविनिग्रहम्॥

पुनः नमः परमतेजसे परमं उत्कृष्टं तेजो भूरिभास्करप्रकाशरूपं यस्येति स परमतेजाः तस्मै परमतेजसे। पुनः परममार्गाय परम उत्कृष्टो मार्गो रत्नत्रय लक्षणो यस्येति स परममार्गः तस्मै परममार्गाय उक्तं च तत्वार्थसूत्रे- सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। उक्तं च धनंजयेन महाकविना विषापहारस्तोत्रे-

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचित् भुजमालुलोके॥

पुनः नमस्ते, परमेष्ठिने परमे उत्कृष्टे इंद्रधरणेन्द्र-गणेन्द्रादिवंदिते पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी तस्मै परमेष्ठिने नमः॥२२॥

अर्थ : परमरूप हरि, हर आदि में नहीं पाया जाने वाला रूप कहलाता है। समन्तभद्राचार्य ने कहा है-

हे भगवन्! आपके शरीर सम्बन्धी सौन्दर्य को देखकर दर्शन की अभिलाषा की पूर्ति को प्राप्त नहीं होने वाला, दो नेत्र वाला, इन्द्र बहुत भारी आश्चर्य से युक्त एक हजार नेत्रों का धारक हो गया था। अर्थात् अपने स्वाभाविक दो नेत्रों से प्रभु की सुन्दरता का अवलोकन कर संतोष को प्राप्त नहीं हुआ (सन्तुष्ट नहीं हुआ) अतः इन्द्र ने विक्रिया से एक हजार नेत्र बना लिये।

मानतुंगाचार्य ने कहा है कि -

"हे भगवन्! जिन शांतरुचि परमाणुओं के द्वारा आपके शरीर का निर्माण हुआ है वे परमाणु इस पृथ्वी तल पर इतने ही थे इसलिए भूतल पर आपके सदृश किसी दूसरे का शरीर नहीं है।" समन्तभद्राचार्य ने और भी कहा है-

हे धीर! प्रभो! आभूषण, वेषों तथा शस्त्रों का त्याग करने वाला, ज्ञान, इन्द्रियदमन और दया में तत्पर आपका रूप ही रागादि दोषों के अभाव को कहता है। अर्थात् संसार के रागी, द्वेषी प्राणी ही मुकुट आदि आभूषणों से शारीरिक शोभा बढ़ाना चाहते हैं। अनेक प्रकार के वस्त्रों से शरीर सुसज्जित करना चाहते हैं और अनेक शस्त्रों से भय को दूर करना चाहते हैं। इन्द्रियविषयों के लोलुपी सदा भोगाकांक्षा से आतुर रहते हैं। इन बाह्य पदार्थों में लीन रहने से वे निर्दयी होते हैं, इनके लिए आरंभ आदि प्रवृत्ति कर हिंसक बनते हैं परन्तु आप तो

भूषण, वेष, शस्त्रों के त्यागी हैं अत: आपका नग्न दिगम्बर रूप समस्त दोषों के अभाव का सूचन करता है।

अत्यन्त तेज के धारक होने से परम तेजस्वी आपको नमस्कार हो। श्रेष्ठ परमोत्कृष्ट रत्नत्रयरूप मार्गमय भगवन् आपको नमस्कार हो। मोक्षरूप परम पद में स्थित होने से परमेष्ठी ! भगवन् आपको नमस्कार हो॥२२॥

परमं भेयुषे धाम परमं ज्योतिषे नम:।
नम: पारेतमप्राप्तधाम्ने परतरात्मने॥२३॥

टीका – परमं भेयुषे धाम परमं उत्कृष्टं धाम तेज: भां दीप्तिं ईयुषे प्राप्ताय नम:। पुनर्नम: परमं ज्योतिषे - परमं ज्योति: चक्षु: प्राय: परमज्योति: तस्मै परमज्योतिषे, उक्तं च महाकविना श्रीसोमदेवसूरिणा ज्योतिषो लक्षणम्-

मते: सूते बीजं सृजति मनसश्चक्षुरपरं,
यदाश्रित्यात्माऽयं भवति निखिलज्ञेयविषय:।
विवर्तैरत्यंतैर्भरितभुवनाभोगविभवै:।
स्फुरत्तत्त्वं ज्योतिस्तदिह जयतादक्षरमयम्॥

पुन: नम: पारेतम:प्राप्तधाम्ने तमस: पापस्य पारे पारेतम: प्राप्तं धाम तेजो यस्य इति स पारेतमप्राप्तधामा तस्मै पारेतमप्राप्तधाम्ने तमस: पारप्राप्ततेजसे इत्यर्थ:। नम: परतरात्मने परस्मात् सिद्धात् उत्कृष्ट: पर: परतर: स चासौ आत्मा स्वरूपं यस्येति परतरात्मा तस्मै परतरात्मने, उत्कृष्टस्वरूपायेत्यर्थ:॥२३॥

अर्थ : परम उत्कृष्ट धाम (तेज) की कान्ति को प्राप्त भगवन् ! आपको नमस्कार हो। किसी प्रति में 'परमर्द्धिजुषे धाम्ने' पाठ भी है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ ऋद्धियुक्त धाम (मोक्षस्थान) में रहने वाले आपको नमस्कार हो। श्रेष्ठ ज्योति के धारक होने से परमज्योति वाले आपको नमस्कार हो।

सोमदेव आचार्य ने ज्योति का लक्षण इस प्रकार किया है जो मतिज्ञान की उत्पत्ति में बीज की रचना करता है (कारणभूत है) ऐसी मानस अपर चक्षु ही ज्योति है। जिसका आश्रय लेकर यह आत्मा सम्पूर्ण विषय को ज्ञेय करता है अर्थात् केवलज्ञानी बनता है। अपनी अनन्त पर्यायों के द्वारा परिपूर्ण सारे

जगत् के पदार्थों को एक साथ जानता है- ऐसी अविनाशी परमज्योति निरंतर जयवन्त रहे। ऐसी केवलज्ञान रूपी ज्योति के धारक आपको नमस्कार हो।

पापरूपी अन्धकार से रहित (वा अज्ञान रूपी अन्धकार से रहित) परम तेज को प्राप्त है अतः पारेतमः प्राप्तधाम्ने आपके लिए नमस्कार हो।

जितने भी पर (अन्य) दर्शन या देव हैं उनसे आप सर्वोत्कृष्ट हैं, महान् हैं अतः परतरात्मन्! आपके लिए नमस्कार हो। सर्वोत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त भगवन् आपको नमस्कार हो।

नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबंध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीणमोहाय, क्षीणदोषाय ते नमः ॥२४॥

टीका - नमः क्षीणकलंकाय - क्षीणो निर्गतः कलंकोऽपवादो यस्येति स क्षीणकलंकः। यथा गोपनाथस्य दुहितरं नारायणो जगाम संतनोः कलत्रं ईश्वरोऽगमत् देवराजो गोतमभार्यां बुभुजे तदुक्तम् -

किमकुवलयनेत्राः संति नो नाकनार्यः,
त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दह्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पंडितो वा॥

चंद्रः किल वृहस्पतिभार्यां व्यभिचचार, तदुक्तम्-

विधुर्गुरोः कलत्रेण गौतमस्यामरेश्वरः।
संतनोश्चापि दुश्चर्मा समगंस्त पुरा किल॥

एवं सर्वेपि देवाः सकलंकाः सति, सर्वज्ञवीतरागस्तु निष्कलंकः। पुनः ते क्षीणबन्ध-क्षीणः क्षयंगतो बन्धः कर्मबन्धनं यस्येति स क्षीणबन्धः। तस्यामंत्रणे हे क्षीणबन्ध, ते तुभ्यं नमोऽस्तु। पुनः नमस्ते क्षीणमोहाय ते तुभ्यं नमः, कस्मै क्षीणमोहाय क्षीणः क्षयंगतो मोहोऽज्ञानं यस्मादिति क्षीणमोहः तस्मै क्षीणमोहाय। पुनः क्षीणदोषाय नमः ते तुभ्यं नमः कस्मै क्षीणदोषाय, क्षीणाः क्षयंगताः पंचविंशतिर्दोषा, यस्य स क्षीणदोषः तस्मै क्षीणदोषाय, पंचविंशतिः के दोषाः-

मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्।
अष्टौ शंकादयश्चेति दृग्दोषाः पंचविंशतिः ॥१॥

अस्य विवरणं विधीयते तत्र मूढत्रयं लोकमूढं, देवतामूढं, पाखण्डमूढं चेति। तत्र लोकमूढं-

सूर्यार्घो ग्रहणस्नानं संक्रान्तौ द्रविणव्ययः।
संध्या सेवाग्नि सत्कारो देहगेहार्चनाविधिः ॥२॥

गोपुच्छान्तनमस्कारस्तन्मूत्रस्य निषेवणम्।
रत्नवाहनभूवृक्षशस्त्रशैलादिसेवनम् ॥३॥

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥४॥

तत्र पाखंडमूढम्-

सग्रन्थारंभहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनाम्।
पाखंडिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखंडिमोहनम् ॥५॥

तत्रदेवतामूढम्-

वरोपलिप्सयाशावान्रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥

तथाष्टौ मद-

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥

तत्र अनायतनानि षट्-

कुदेवशास्त्रशास्तॄणां तत्सेवकनृणां तथा।
स्थानके गमने पुंसामित्यनायतनानि षट् ॥

तत्र शंकादयोऽष्टौ दोषाः- सप्तभयरहितत्वं जैनदर्शनसत्यमिति निःशंकितम्। इहलोक परलोक भोगोपभोग कांक्षारहितत्वं निष्कांक्षित्वं, शरीरादिकं पवित्रमिति

मिथ्यासंकल्पनिरासो निर्विचिकित्सता। अनार्हत-दृष्टतत्त्वेषु मोहरहितत्वममूढदृष्टिता। उत्तमक्षमादिभिरात्मनो धर्मवृद्धिकरणं। चतुर्विध-संघदोषझंपनं चोपबृंहणम्, उपगूहनापरनामधेयम्। क्रोध मान माया लोभादिषु धर्म्म-विध्वंसकारणेषु विद्यमानेष्वपि धर्मादप्रच्यवनं स्थितिकरणम्। जिनशासने सदानुरागित्वं वात्सल्यम्। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभिरात्मप्रकाशनं जिनशासनोद्योतकरणं च प्रभावना। एतेऽष्टौ सम्यक्त्वगुणाः तद् विपरीता अष्टौ दोषाः।

अर्थ : जिनके कलंक क्षीण हो गया है, किसी प्रकार का अपवाद नहीं है वे क्षीणकलंक कहलाते हैं। जैसे नारायण ने ग्वाले की पुत्री को सेवन किया था। ईश्वर ने संतनुकी स्त्री को सेवन किया था। इन्द्र ने गौतम की भार्या को भोगा था। सो ही कहा है - क्या स्वर्ग की देवांगना अकुवलयनेत्रा नहीं है जिससे इन्द्र ने तपस्विनी अहल्या के साथ रमण किया था। हृदय रूपी घर के काम रूपी अग्नि के द्वारा जलने पर कौन पंडित उचित-अनुचित को समझता है अर्थात् कामी पुरुष को हेयोपादेय का ज्ञान नहीं रहता। इसीलिए चन्द्रमा ने बृहस्पति की भार्या के साथ संभोग किया था।

अन्य मतावलम्बियों के पुराणों में लिखा है कि- चन्द्रमा ने गुरु की पत्नी के साथ, इन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ और ईश्वर ने संतनुकी भार्या के साथ कामभोग किया था। इस प्रकार हरि, हर, ब्रह्मा आदि सर्व देव कलंक (अपवाद) सहित हैं। हे नाभिनन्दन ! एक आप ही वीतराग, क्षीणकलंक (निष्कलंक) हो अतः आपके लिए नमस्कार हो। कलंकमुक्त आपको नमस्कार है।

हे क्षीणबन्ध ! आपको नमस्कार हो। बंध रहित होने से हे क्षीणबंध ! आपको नमस्कार हो। स्थिति, अनुभाग, प्रदेश और प्रकृति बन्ध के भेद से बंध चार प्रकार का है। ये चार प्रकार के बंध जिसके क्षीण हो गये हैं, नष्ट हो गये हैं, उसको क्षीणबंध कहते हैं, सम्बोधन में हे क्षीणबन्ध ! तुम्हें (तुम्हारे लिए) नमस्कार हो।

क्षीण हो गया मोह वा अज्ञान जिसका उसको क्षीणमोह कहते हैं। उस क्षीणमोही को नमस्कार हो।

क्षीणदोषी आपको नमस्कार हो। यहाँ क्षीणदोष का अर्थ है निर्मल सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना। सम्यग्दर्शन के २५ दोष जिसके नष्ट हो गये हैं वह क्षीणदोष कहलाता है।

तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन और शंकादि आठ दोष ये सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं।

इनका विवरण इस प्रकार है-

लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, पाखण्डमूढ़ता के भेद से मूढ़ता तीन प्रकार की है।

सूर्य को अर्घ देना, ग्रहण में धर्म मानकर स्नान करना, संक्रान्ति के दिन धन का दान करना, सन्ध्यावन्दना, अग्निसत्कार, घर की देहली की पूजा करना, गोपुच्छ वा गाय की योनि को नमस्कार करना, गोमूत्र का सेवन करना, रत्न, वाहन, पृथ्वी, वृक्ष, शस्त्र, पर्वत आदि की पूजा करना, धर्म मानकर नदी में-समुद्र में स्नान करना, बालू पत्थर आदि ढेर करके पूजा करना, अग्नि से जलकर, पर्वत से गिरकर मरने में धर्म मानना लोकमूढ़ता है। अर्थात् हेयोपादेय का, तत्त्व अतत्त्व का विचार न करके लौकिक जन की देखादेखी करना लोकमूढ़ता है।

जो आरंभ, परिग्रह और हिंसा कार्यों से युक्त हैं, संसार-समुद्र में भ्रमण करने वाले हैं, पाखण्डी हैं, मिथ्यादृष्टि साधु हैं उनका सत्कार-पुरस्कार करना पाखण्डमूढ़ता है।

सांसारिक भोगों की इच्छा से रागी-द्वेषी देवताओं की पूजा करना देव-मूढ़ता है।

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर इन आठ का आश्रय लेकर उन्मत्त होना, अहंकारी होना मद कहलाता है।

क्षायोपशमिक, विनाशीक श्रुतज्ञान को प्राप्तकर अहंकारी बनना ज्ञानमद है। पूजा, मान-सन्मान को प्राप्त कर घमण्डी बनना पूजामद है। पिताके राजा, मंत्री, धनाढ्य आदि होने पर मानी बनना कुल मद है। मामा के धनाढ्य आदि होने पर मद होना जाति मद है। शरीर की शक्ति का घमण्ड बल मद है, धन-

सम्पदा का अहंकार ऋद्धि मद है, तपश्चरण का अहंकार तपमद है। शरीर के सौन्दर्य का मद रूपमद है।

कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र और उनके भक्त ये छह अनायतन हैं, सम्यग्दर्शन के घातक हैं। इनकी प्रशंसा, संस्तवन करने से सम्यग्दर्शन मलिन होता है।

शंका, कांक्षा, जुगुप्सा, मूढ़त्व, अनुपगूहनत्व, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना, ये सम्यग्दर्शन के २५ दोष हैं; इनसे रहित होना तथा सात भयों (इहलोक का भय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अरक्षा भय और अकस्मात् भय) से रहित होकर जैन दर्शन ही सत्य है, ऐसा दृढ़ विश्वास करना निशंकित अंग है। इसलोक तथा परलोक सम्बन्धी भोग और उपभोग की कांक्षा (अभिलाषा) नहीं करना निःकांक्षित अंग है। शरीरादिक पवित्र हैं ऐसे मिथ्या संकल्प का त्याग करना वा साधु जनों के शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना निर्जुगुप्सा अंग है। अनार्हत (असर्वज्ञ) कथित तत्त्वों में मोहित नहीं होना अमूढ़दृष्टि अंग है। उत्तम क्षमादि के द्वारा आत्म-धर्म की वृद्धि करना उपबृंहण वा चतुर्विध संघ के दोषों को ढकना उपगूहन अंग है। धर्म के विध्वंस में कारणभूत क्रोध, मान, माया, लोभादिक के उत्पन्न हो जाने पर स्वयं धर्म से च्युत नहीं होना तथा किसी कारण से धर्म से च्युत होने वाले धर्मात्माओं को भी धर्म में स्थिर करना स्थितीकरण हैं। धर्म और धर्मात्मा के प्रति वा जिनशासन के प्रति अनुराग रखना वात्सल्य अंग है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपके द्वारा आत्मा को निर्मल करना वा दान, पूजा आदि के द्वारा जिनधर्म का द्योतन करना प्रभावना अंग है। इस प्रकार अष्ट अंग सहित और २५ दोष रहित सम्यग्दर्शन को धारण करना क्षीणदोष है, उस क्षीणदोष भगवान के लिए मेरा नमस्कार है।

नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायातीन्द्रियात्मने ।।२५ ।।

टीका - नमः सुगतये तुभ्यं - तुभ्यं नमः कस्मै सुगतये सुष्ठु शोभना गतिः केवलज्ञानं यस्येति सुगतिः तस्मै सुगतये। पुनः शोभनां गतिमीयुषे शोभनां गतिं मोक्षगतिं ईयुषे प्राप्ताय नमः। पुनः नमस्तेऽतींद्रियज्ञानसुखाय ते तुभ्यं नमः

अतिक्रान्तानि इन्द्रियाणि अतीन्द्रियाणि तान्येव ज्ञानं, सुखं आत्मस्वरूपं यस्य स अनिंद्रियात्मा तस्मै अनिन्द्रियात्मने ॥२५॥

अर्थ : शोभनीय सुष्ठु अविनाशी केवलज्ञान जिसके होता है, उसको सुगति कहते हैं। जो धातु गति अर्थ में हैं वे ज्ञान अर्थ में भी हैं अत: गति का अर्थ ज्ञान है। उस केवलज्ञान को प्राप्त भगवान ! आपको नमस्कार हो। मोक्ष रूपी शुभ गति को प्राप्त भगवन् तुम्हारे लिए नमस्कार हो। अतीन्द्रिय ज्ञान ही सुख है, वही आत्मा का स्वरूप है। अत: अतीन्द्रिय ज्ञान रूप, अतीन्द्रिय सुख स्वरूप, अतीन्द्रिय आत्मा के लिए नमस्कार हो अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुखमय आत्मा के लिए नमस्कार करते हैं॥२५॥

कायबन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ॥२६॥

टीका - कायबन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते। ते तुभ्यं नमोऽस्तु पादप्रणामोऽस्माकम्। कस्मै ? अकायाय 'औदारिक वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि' इति तत्त्वार्थसूत्रवचनात् तैः रहिताय। कस्मात् कायबंधननिर्मोक्षात् कायस्य बंधनानि कर्माणि तेषां निर्मोक्षात् मोचनात् अथवा न विद्यते काय: शरीरं यस्येति अकाय: तस्मै अकायाय परमौदारिक तैजस कार्माण शरीर त्रय रहिताय इत्यर्थ:। पुन: तुभ्यं नम:। कस्मै अयोगाय न विद्यते योगो मनोवाक्कायव्यापारो यस्य स अयोग: तस्मै अयोगाय। पुन: योगिनां महामुनीनां अधियोगी स्वामी तस्मै योगिनामधियोगिने =

अर्थ : शरीर रूपी बंधन से छूट जाने से अकाय (शरीर रहित) रूप आपको नमस्कार हो। अर्थात् औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच शरीर नहीं हैं अत: वे अकाय हैं, उनके चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।

मन, वचन और काय से होने वाले, आत्मप्रदेशों में कम्पन नहीं होने से अयोग (योगरहित) हैं अत: तुम्हारे लिए नमस्कार हो ! हे भगवन् आप योगियों (महामुनिजनों) के अधियोगी हैं, शिरोमणि हैं, अत: आपको नमस्कार हो ॥२६॥

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायात्मने नमः।
नमः परमयोगीन्द्रवन्दिताङ्घ्रिद्वयाय ते ॥२७॥

टीका - अवेदाय न विद्यते वेदः स्त्रीपुंसनपुंसकत्वं यस्येति अवेदः तस्मै अवेदाय लिंगत्रयरहिताय इत्यर्थः। किं स्त्रीत्वं किं पुरुषत्वं किं नपुंसकत्वं इति चेदुच्यते -

श्रोणिमार्दवभीतत्वं मुग्धत्वं क्लीबतास्तनाः।
पुंस्कामेन समं सप्तलिंगानि स्त्रैणसूचने ॥

खरत्वं मेहनस्ताब्ध्यं शौंडीर्यश्मश्रुधृष्टता।
स्त्रीकामेन समं सप्तलिंगानि नरवेदने।

यानि स्त्रीपुंसलिंगानि पूर्वाणीति चतुर्दश।
तानि मिश्राणि सर्वाणि षण्ढ भावो निगद्यते॥

अथवा न विद्यते ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्वणनामानः कालासुरादिविवृताः हिंसाशास्त्राणि वेदा यस्येति अवेदः तस्मै अवेदाय। तर्हि सर्वज्ञः कथं यदि पापशास्त्राणि न जानाति इति चेन्न जानात्येव परं हेयतया चेति न चानिर्दिष्ट-स्यानित्यत्वादवेद उच्यते अथवा अव समंतात् इं स्वर्गापवर्गलक्षणोपलक्षितां लक्ष्मीं ददातीति अवेदः अभ्युदयनिश्रेयससम्पत्तिप्रदायकः, अथवा अस्य शिवस्य ईशानस्य, केशवस्य च वायुदेवस्य, ब्रह्मणश्चंद्रस्य भानोश्च वस्य वरुणस्य, इं पापं, द्यति खंडयति अवेदः ध्यायमानः स्तूयमानः पूज्यमानश्चैतेषां देवानां तदपत्यानां उपलक्षणात् सर्वेषां पापविध्वंसकः इत्यर्थः। तथा चोक्तं विश्वप्रकाश-शास्त्रे-

"अः शिवे केशवे वायौ। ब्रह्मचन्द्राग्नि भानुषु।
वो वरुणो इ कुत्सायां पापे च"॥

अस्मै अवेदाय। तुभ्यं नमः कस्मै अकषायाय कषंति संतापयंति दुर्गतिसंग संपादनेनात्मानमिति कषायाः कामक्रोधमानमायालोभाः न विद्यन्ते यस्य स अकषायः तस्मै अकषायाय। उक्तं च यशस्तिल[illegible]हाकाव्ये श्री सोमदेवसूरिणा-

कषायेन्द्रियदंडानां विजयो व्रतपालनम्।
संयमं संयतैः प्रोक्तं श्रेयः श्रयितुमिच्छताम्॥

अस्यार्थ : यथा विशुद्धस्य वस्तुनो नैग्रोधादयः कषायाः कालुष्यकारिणस्तथा निर्मलस्यात्मनो मलिनत्वहेतुत्वात् कषाया इव कषायाः तत्र स्वपरापराधाभ्यामात्मेतरयोरपायः पापानुष्ठानमशुभपरिणामजननं वा क्रोधः। विद्याविज्ञानैश्वर्यादिपूज्यपूजा-व्यतिक्रमहेतुरहंकारो युक्तिदर्शनेऽपि दुराग्रहापरित्यागो वा मानः। मनोवाक्कायक्रियाणामयाथातथ्यात्परवंचनाभिप्रायेण प्रवृत्तिः ख्याति पूजा लाभाद्यभिनिवेशेन वा माया। चेतनाचेतनेषु वस्तुषु चित्तस्य महान् ममेदं भावस्तदभिवृद्धिःविनाशयोर्महान् संतोषोऽसंतोषो वा लोभः-

पाषाणभूरजोवारिलेखाप्रख्यत्वभाग्भवन्।
क्रोधो यथाक्रमं गत्यै श्वभ्रतिर्यग्नृनाकिनाम्॥

शिलास्तम्भास्थिसार्द्रध्मवेत्रवृत्तिर्द्वितीयकः।
अधः पशुनरस्वर्गगतिसंगतिकारणम्।

वेणुमूलैरजाशृंगैर्गोमूत्रैश्चामरैः समा।
माया तथैव जायते चतुर्गतिवितीर्णये।

क्रिमिनीलीवपुलेपहरिद्रारागसन्निभः।
लोभः कस्य न संजातस्तद्वत् संसारकारणम्।

नमः नमस्कारोऽस्तु कस्मै परमयोगीन्द्र वन्दिताङ्घ्रिद्वयाय ते परमयोगीन्द्राः वृषभसेन सिंहसेन चारुषेण वज्रनाभि चामरवज्र चमर बालदत्त विदर्भ कुंथु धर्म मेरुजय अरिष्ट सेन चक्रायुध स्वयंभू कुंभविशाख मल्लि सुप्रभ वरदत्त स्वयंभू गौतमादयः एते परमयोगीन्द्रास्तैर्वंदितं नमस्कृतं अंघ्रिद्वयं चरणकमलद्वयं यस्य स परमयोगीन्द्रवंदितांघ्रिद्वयः तस्मै परमयोगीन्द्रवंदितांघ्रिद्वयाय।

अर्थ : स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीन वेद से रहित हो, उसको अवेद कहते हैं।

तीन वेदों के लक्षण -

योनि, कोमलता, भयशील होना, मुग्धपना, पुरुषार्थशून्यता, स्तन और पुरुषभोग की इच्छा ये सात भाव स्त्रीवेद के सूचक हैं।

लिंग, कठोरता, स्तब्धता, शौण्डीरता, दाढ़ी, मूंछ, उत्कर्षतापना और स्त्रीभोगइच्छा ये सात भाव, पुरुषवेद के सूचक हैं।

स्त्रीवेद और पुरुषवेद के सूचक १४ चिह्न मिश्रित रूपसे नपुंसक वेद के सूचक हैं। इन तीनों वेदों से रहित होने से भगवान अवेद कहलाते हैं।

अथवा कालासुर आदि के द्वारा रचित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नामक हिंसाशास्त्ररूप जिसके नहीं है, वह अवेद कहलाता है।

शंका - जो सबको जानता है वह सर्वज्ञ कहलाता है। भगवान पापशास्त्र रूप चार वेद को नहीं जानते हैं, अतः वे सर्वज्ञ कैसे हो सकते हैं?

उत्तर - सर्वज्ञ भगवान उनको हेय रूप से जानते हैं। उनका हेय रूप से निरूपण करते हैं, उपादेय रूप से नहीं अतः उनके रचयिता नहीं होने से 'अवेद' कहलाते हैं।

अथवा - 'अव' समन्तात् (चारों तरफ से) 'इ' स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मी को 'द' देते हैं इसलिए 'अवेद' हैं। अभ्युदय निश्रेयस् (मोक्ष) सम्पदा के प्रदायक होने से अवेद हैं।

अथवा - 'अ' शिव, ईशान, केशव, वायुदेव, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य, 'व' वरुण इन देवों के 'इ' पापों का 'द' नाशक होने से भी भगवान अवेद हैं।

विश्वप्रकाश कोश में 'अ' शब्द के शिव, केशव, वायु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य अर्थ किये हैं। एवं 'व' का अर्थ वरुण है। 'इ' का अर्थ कुत्सित या पाप है। 'द' का अर्थ खण्डन करना है। अतः जो इन शिवादि के पापों का नाश करता है। अथवा स्तुति, पूजा करने वालों के पापों का नाशक है उसको 'अवेद' कहते हैं।

वीतराग प्रभु की स्तुति करने से कोटि भवों में उपार्जन किये हुए कर्म क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं।

अकषायी - (कषायों के नाशक) प्रभुवर तुम्हारे लिए नमस्कार हो। नरक, तिर्यंच आदि दुर्गतियों का संगम कराकर आत्मा को कषती हैं, सन्ताप देती हैं, दुःख देती हैं वे क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायें जिसके नहीं हैं वह अकषाय कहलाता है।

यशस्तिलकचम्पू में श्री सोमदेव आचार्य ने कहा है कि कल्याण के इच्छुक प्राणियों के लिए संयम के साथ, कषायों का निग्रह करना, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, व्रतों का पालन करना रूप संयम ही कल्याणकारी है।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, शील और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना; ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण और व्युत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालन करना, क्रोधादि चार कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, काय रूप तीन दंडों (योगों) का त्याग करना तथा पाँच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना संयम है और संयम की मूल घातक कषाय हैं।

जिस प्रकार निर्मल वस्तु को कालुष्य (मलिन) करने का या उस पर कालादि रंग चढ़ाने का कारण नैग्रोधादि कषायले पदार्थ हैं उसी प्रकार कषायले पदार्थ के समान कषायें निर्मल आत्मा की मलिनता की कारण हैं। स्व अपराध-स्वयं आत्मा में रागद्वेष परिणमन करने की शक्ति और पर-अपराध मोहनीय कर्म रूप परिणत पुद्गल वर्गणाओं का उदय इन स्व-पर-अपराध से आत्मा और पुद्गल विकृत रूप होते हैं तब आत्मा में पापानुष्ठान रूप परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसको क्रोध कहते हैं। विद्या, विज्ञान, ऐश्वर्य आदि भौतिक पदार्थों को प्राप्त कर घमण्ड से युक्त प्राणी पूज्य, पूजा (पूज्य पुरुषों) का व्यतिक्रम करता है उनका अपमान करता है। युक्तिपूर्वक शास्त्रों के द्वारा वस्तु के स्वरूप को बता देने पर भी दुराग्रह को नहीं छोड़ता है इसमें मान कषाय कारण है।

मन वचन और काय की क्रिया के भिन्न-भिन्न होने से दूसरों को ठगने के अभिप्राय से प्रवृत्ति होती है या ख्याति, लाभ, पूजा आदि के अभिनिवेश से छल रूप प्रवृत्ति होना माया है। चेतन पुत्र, स्त्री, गाय, घोड़ा आदि, अचेतन घर, आभूषण आदि वस्तुओं में चित्त की ममता होना, 'ये मेरे हैं,' ऐसे भाव होना तथा चेतन-अचेतन पदार्थ की अभिवृद्धि में संतोष होना, हर्ष होना और इनके विनाश में असंतोष होना-विषाद होना लोभ है।

पत्थर की रेखा, पृथ्वी की रेखा, धूलिरेखा और जलरेखा के भेद से क्रोध चार प्रकार का है। ये चारों प्रकार के क्रोध क्रम से नरक, तिर्यक्, मनुष्य और देवगति के कारण हैं। पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान और बेंत के समान मान चार प्रकार का है। ये चार प्रकार के मान क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के कारण होते हैं। बाँस की जड़ के समान, मेढ़े के सींग के समान, गोमूत्र के समान और खुरपा के समान माया के चार भेद हैं। यह चार प्रकार की माया भी क्रमश: जीव को नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देवगति में ले जाती है। इसमें चौथी कषाय चमर के समान मानी है। लोभ कषाय भी चार प्रकार की है। क्रिमि राग के समान, चक्रमल (रथ आदि के पहियों के भीतर का ओंगन) के समान, शरीर के मैल के समान, हल्दीरंग के समान। ये चारों कषायें भी क्रम से नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति की उत्पादक हैं। ये कषायें किसके नहीं हैं अर्थात् संसार में सर्व प्राणियों के हैं।

जिनके स्वयं को, दूसरे को तथा दोनों को ही बाधा देने और बंधन करने तथा असंयम करने में निमित्तभूत क्रोधादिक कषायें नहीं हैं तथा जो बाह्य अभ्यन्तर मल से रहित हैं ऐसे जीवों को अकषाय कहते हैं। उनको, कषायों से रहित नाभिनन्दन को नमस्कार हो।

परम योगीन्द्रों के द्वारा वन्दित दो चरण वाले भगवन् ! आपको नमस्कार हो।

परमयोगीन्द्र आदिनाथ भगवान् वृषभसेन, कुभ[२], दृढ़रथ[३], शतधनु[४], देवशर्मा[५], देवभाव[६], ननन्दन[७], सोमदत्त[८], सूरदत्त[९], वायुशर्मा[१०], यशोबाहु[११], देवाग्नि[१२], अग्निदेव[१३], अग्निगुप्त[१४], मित्राग्नि[१५], हलभृत[१६], महीधर[१७], महेन्द्र[१८], वसुदेव[१९], वसुन्धर[२०], अचल[२१], मेरु[२२], मेरुधन[२३], मेरुभूति[२४], सर्वयश[२५], सर्व गुप्त[२६], सर्वप्रिय[२७], सर्वदेव[२८], सर्वयज्ञ[२९], सर्वविजय[३०], विजयगुप्त[३१], विजयमित्र[३२], विजयिल[३३], अपराजित[३४], वसुमित्र[३५], विश्वसेन[३६], साधुसेन[३७], सत्यदेव[३८], देवसत्य[३९], सत्यगुप्त[४०], सत्यमित्र[४१], निर्मल[४२], विनीत[४३], संवर[४४], मुनिगुप्त[४५], मुनिदत्त[४६], मुनियज्ञ[४७], मुनिदेव[४८],

गुप्तयज्ञ[४९], मित्रयज्ञ[५०], स्वयंभू[५१], भगदेव[५२], भगदत्त[५३], भगफल्गु[५४], गुप्तफल्गु[५५], मित्रफल्गु[५६], प्रजापति[५७], सर्वसंघ[५८], वरुण[५९], धनपालक[६०], मघवान[६१], तेजोराशी[६२], महावीर[६३], महारथ[६४], विशालाक्ष[६५], महाबल[६६], शुचिशाल[६७], वज्र[६८], वज्रसार[६९], चन्द्रचूल[७०], जय[७१], महारस[७२], कच्छ[७३], महाकच्छ[७४], नमि[७५], विनमि[७६], बल[७७], अतिबल[७८], भद्रबल[७९], नंदी[८०], महीभागी[८१], नन्दिमित्र[८२], कामदेव[८३], अनुपम[८४]। इस प्रकार नाभिनन्दन के ८४ गणधर रूपी योगीन्द्र चरण-कमलों की सेवा करते हैं। तथा चौरासी हजार मुनीन्द्र थे।

अजितनाथ सिंहसेनादि नब्बे गणधर और एक लाख मुनीन्द्र के द्वारा सेवित थे।

संभवनाथ के चरणों की चारुषेणादि १०५ गणधर और दो लाख मुनीन्द्र सेवा करते थे।

अभिनन्दन भगवान के चरणों की वज्रनाभि आदि १०३ गणधर और तीन लाख मुनि सेवा करते थे।

सुमतिनाथ भगवान के चरणों की चामरसेनादि ११६ गणधर तथा तीन लाख बीस हजार मुनि सेवा करते थे।

पद्मप्रभु भगवान वज्रसारादि ११० गणधर और तीन लाख तीस हजार मुनीन्द्रों के द्वारा सेवित थे। सुपार्श्व चामरबलादि पिच्च्यानवे गणधर और तीन लाख मुनीन्द्र के द्वारा सेवित थे।

चन्द्रप्रभु दंतादि तिरानवे गणधर और तीन लाख मुनीन्द्रों से युक्त थे। पुष्पदन्त विदर्भ आदि अट्‌यासी (८८) गणधर और तीन लाख मुनीन्द्र सहित थे। शीतलनाथ भगवान के अनगार आदि इक्याशी गणधर और एक लाख मुनिराज थे। श्रेयांसनाथ के चरणसेवक कुंथ्वादि सत्तर गणधर और चौरासी हजार मुनिराज थे। वासुपूज्य भगवान के सुधर्म (मेरु) आदि छ्यासठ गणधर और ७२ हजार मुनीश्वर थे।

विमलनाथ भगवान के मन्दरादि पचपन गणधर और ६८ हजार मुनिराज चरण सेवक थे।

अनन्तनाथ के जय आदि पचास गणधर और छ्यासठ हजार मुनिवर चरणसेवक थे।

धर्मनाथ भगवान के अरिष्टादि तैंयालीस गणधर और चौसठ हजार मुनिराज चरण कमल की सेवा करते थे।

शांतिनाथ भगवान के चक्रायुध आदि छत्तीस हजार गणधर और बासठ हजार मुनीन्द्र चरणों की सेवा करते थे।

कुन्थुनाथ के स्वयंभू आदि पैंतीस गणधर और साठ हजार मुनीन्द्र चरणा-राधक थे।

अरनाथ के कुन्थु आदि तीस गणधर और पचास हजार मुनिराज थे।

मल्लिनाथ भगवान के चरणसेवक विशाखादि २८ गणधर और चालीस हजार मुनिराज थे।

मुनिसुव्रतनाथ के मल्लि आदि अठारह गणधर और तीस हजार मुनिराज थे।

नमिनाथ जिनराज के समवसरण में सोमादि सत्तरह गणधर और २० हजार मुनिराज थे।

नेमिनाथ जिनराज के वरदत्तादि ११ गणधर और १६ हजार मुनीश्वर थे।

पार्श्वनाथ के स्वयंभू आदि १० गणधर और १६ हजार मुनीश्वर थे।

महावीर भगवान के गौतम (इन्द्रभूति), अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त, सुधर्म, माण्डव्य, मौर्यपुत्र, अकम्पन, अचल, मेदार्य, प्रभास (जम्बू) ११ गणधर थे और १४ हजार मुनीश्वर थे। ये सभी गणधर सात ऋद्धियों के धारक थे। इन ऋषभसेनादि योगीन्द्रों के द्वारा वंदित दोनों चरणकमल जिनके हैं, अत: वे परम योगीन्द्र वंदितांघ्रिद्वय कहलाते हैं। उनको मेरा नमस्कार हो।

नमः परमविज्ञान नमः परमसंयमः।
नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय तायिने ।।२८।।

टीका - नम: नमस्कारोऽस्तु हे परमविज्ञान विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं परम-

मुत्कृष्टं विज्ञानं यस्य स परमविज्ञान: तस्य संबोधने हे परमविज्ञान अथवा विज्ञानस्येदं लक्षणं -

विवर्णं विरसं विद्धमसात्म्यं प्रभृतं च यत्।
मुनिभ्योऽन्नं न तद्देयं यच्च भुक्तं गदावहम् ॥

उच्छिष्ट नीच लोकार्ह मन्योद्दिष्टं विगर्हितं।
न देयं दुर्जनस्पृष्टं देवयक्षादिकल्पितम् ॥

ग्रामान्तरात्समानीतं मंत्रानीतमुपायनम्,
न देयमापणक्रीतं विरुद्धं वायातर्तुकं।
दधिसर्पिःपयोऽभक्ष्यप्राय: पर्युषितं मतम्,
गंधवर्णरसभ्रष्टमन्यत्सर्वं विनिंदितम् ॥

स्ताब्ध्यं गर्वमविज्ञानं पारिप्लवमसंयमम्,
वाक्पारुष्यं विशेषेण वर्जयेद्भोजनक्षणे।
अभक्तानां कदर्याणामव्रतानां च सद्मसु,
न भुंजीत तथा साधुर्दैन्यकारुण्यकारिणाम् ॥

इत्येवं परमविज्ञानं यस्य स परमविज्ञान: तस्य संबोधने हे परमविज्ञान! पुन: नम: नमस्कार: हे परमसंयम:- परम: सोत्कृष्ट: संयम: सप्तदशप्रकारो यस्य स परमसंयम: तस्यामंत्रणे हे परमसंयम। तथा चोक्तं-

पंचासववेरमणं पंचिंदियणिग्गहो कषायजउ।
तिहि दंडेहि य विरदी सत्तारस संयमा भणिया ॥

पुन: नम: नमस्कारोऽस्तु कस्मै परमदृग्दृष्टपरमार्थाय परमदृशा केवलज्ञान-लोचनेन दृष्टो निरीक्षितोऽवलोकित: परमार्थ: मोक्षपदार्थो येन स: परमदृग्दृष्ट-परमार्थ: तस्मैपरमदृग्दृष्टपरमार्थाय, अथवा परमदृशा मतिश्रुतावधिज्ञानेन दृष्ट: परमार्थो वर्त्तनालक्षणकालो येन स परमदृग्दृष्टपरमार्थ: तस्मै परमदृग्दृष्ट परमार्थाय तथा चोक्तं द्रव्यसंग्रहग्रंथे -

दव्वपरियट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो।।

पुनः तायिने तायृ संतानपालनयोः धातुः तस्य प्रयोगात् तायनं पालन-रक्षणं तायः तायो रक्षणं विद्यते यस्येति तायी तस्मै तायिने पालकाय इत्यर्थः।

अर्थ : परम उत्कृष्ट विज्ञान जिसके होता है वह परमविज्ञान कहलाते हैं, उन परमविज्ञानी को मेरा नमस्कार हो। श्रुतसागर आचार्यदेव ने लिखा है कि-

जो अन्न विवर्ण, विरस, बींधा हुआ, असात्म्य (स्वरूप चलित) हो, झिरा हुआ हो, भीगा हुआ और रोग को बढ़ाने वाला हो, वह अन्न साधुओं को नहीं देना चाहिए। जो जूठा किया हुआ, नीच लोगों के द्वारा स्पर्श किया हुआ है वा नीच लोगों के योग्य है, दूसरों का उद्देश्य लेकर बनाया गया हो, निन्द्य हो, दुर्जनों के द्वारा छुआ गया हो, देवभक्ष्य आदि के लिए संकल्पित हो, दूसरे ग्राम से लाया हुआ हो, मंत्र के द्वारा लाया हुआ हो, किसी के उपहार के लिए रखा हो, बाजार की बनी मिठाई हो, प्रकृतिविरुद्ध हो, ऋतु विरुद्ध हो; दही, घी-दूध आदि से बना हुआ होने पर बासा हो गया हो, जिसके गन्ध-रसादि चलित हों, इस प्रकार का भ्रष्ट एवं निन्दित अन्न पात्रों को नहीं देना चाहिए। तथा कठोरता, घमण्ड, मूर्खता, असंयमकारक अन्न, वचनों की कठोरता आदि को तो विशेष रूप से आहार के समय छोड़ देना चाहिए।

अभक्त, कंजूस वा निर्दय, अव्रती, दीन, करुणा योग्य आदि लोगों के घरों में साधु भोजन न करें।

इस प्रकार साधुक्रिया के विशिष्ट ज्ञान को विज्ञान कहते हैं, उस ज्ञान के दाता को भी विज्ञान कहते हैं, उस परम विज्ञान के दाता के सम्बोधन में हे परमविज्ञान ! आपको नमस्कार हो।

सतरह प्रकार के संयम के धारक को परमसंयम कहते हैं, सम्बोधन में हे परमसंयम ! आपको नमस्कार हो।

पाँच प्रकार के आस्रव से विरक्त, पंचेन्द्रियों का निग्रह, चार कषायों पर

विजय और मन, वचन एवं काय रूप तीन प्रकार के योगों का निरोध यह सतरह प्रकार का संयम कहलाता है।

मूलाराधना में पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति ये पाँच स्थावरकाय और दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय ये त्रस इनकी रक्षा करना यह ९ प्रकार का प्राणिसंयम है। तृण आदि का छेद नहीं करना अजीव संयम है, अप्रतिलेखन, दुष्प्रतिलेखन, उपेक्षा संयम, अपहृत संयम, मन, वचन, काय संयम ये भी सतरह प्रकार के संयम हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन नौ प्रकार के जीवों की विराधनाजन्य नौ प्रकार का असंयम, तृण आदि को बिना प्रयोजन नखादि से छेदना अजीव असंयम, जीवों को उठाकर दूसरे स्थान पर डाल देना अपहृत असंयम, जीवों को अन्यत्र डालकर फिर देखना नहीं उपेक्षा असंयम, दुष्परिणामों से प्रतिलेखन करना, पीछे से प्रतिलेखन करना, मन, वचन, काय का अनिरोध इन सतरह प्रकार के असंयम का त्याग करना १७ प्रकार का संयम है।

इन सतरह प्रकार के संयम का पालन करने वालों को परमसंयम कहते हैं, उन परमसंयम को मेरा नमस्कार हो।

परमदृश् (केवलज्ञान रूपी लोचन) के द्वारा देखलिया है परमार्थ (मोक्षमार्ग) को जिन्होंने उनको परमदृष्ट परमार्थ कहते हैं।

अथवा- मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के द्वारा देख लिया है परमार्थ (वर्तनालक्षणकाल) को जिन्होंने उनको भी परमार्थदृष्ट कहते हैं।

द्रव्यों को परिवर्तन कराने में सहायक होता है वह व्यवहार काल है। जो परिवर्तन लक्षण वर्तना लक्षण काल है वह परमार्थ काल है। उस परमार्थ काल को जानने वाले परम दृष्ट परमार्थ कहलाते हैं। उस परमार्थ दृष्ट परमार्थ के लिए नमस्कार हो।

'तायृ' धातु संतान-पालन और रक्षण में आती है। रक्षण, पालन करना जिसके हृदय में है अथवा रक्षण-पालन करने वाले को 'तायी' कहते हैं। वीतराग

नाभिनन्दन तीन जगत् के रक्षक-पालक हैं। तायिने पालकाय, उस रक्षक पालक के लिए नमस्कार हो! 'परमार्थाय ते नमः' = परमार्थ (मोक्ष) के ज्ञाता आपको नमस्कार हो, यह पाठ भी है।

नमस्तुभ्यमलेश्याय शुद्धलेश्यांशकस्पृशे।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे॥२१॥

टीका : तुभ्यं नमोस्तु कस्मै अलेश्याय जीवं कर्मणा लिम्पतीति लेश्या कृतायुरोन्यत्रापि यः पृषोदरादित्वात् पस्य शः वा 'कषायानुरंजिता योगप्रवृत्तयो लेश्याः'। कृष्ण नील कापोत पीतपद्म शुक्ललेश्याः न विद्यन्ते लेश्या यस्य स अलेश्यः तस्मै अलेश्याय शुक्ललेश्यां मुक्त्वा इतरपंचलेश्यारहिताय इत्यर्थः। षट्लेश्यायाः लक्षणं कथ्यते गाथायां :

उम्मूलखंधसाहा गुच्छा चुणिऊण भूमि तह पडिदा वा।
जह एदेसिं भावा तहाविहु लेस्सा मुणेयव्वा॥

पुनः शुद्धलेश्यांशकस्पृशे- शुद्धलेश्यायाः परमशुक्ललेश्यायाः अंशकं अंशं स्पृशतीति शुद्धलेश्यांशकस्पृट् तस्मै शुद्धलेश्यांशकस्पृशे।

पुनः नमः नमस्कारः भव्येतरावस्थाव्यतीताय भव्याऽवस्था इतरा अभव्यावस्था तया व्यतीतः रहितः भव्येतरावस्थाव्यतीतः तस्मै भव्येतरावस्था-व्यतीताय। पुनः विमोक्षिणे विशिष्टो मोक्षो विमोक्षः मुक्तिः। तथोक्तं तत्त्वार्थसूत्रे 'बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः, तथा च-

आनन्दो ज्ञानमैश्वर्यं वीर्यं परमसूक्ष्मता।
एतदात्यंतिकं यत्र सः मोक्षः परिकीर्तितः॥

विमोक्षो विद्यते यस्येति विमोक्षी तस्मै विमोक्षिणे अथवा विशिष्टो मोक्षो मोचनं कर्मभ्यो यस्य स विमोक्षः सोऽस्यास्तीति विमोक्षी तस्मै विमोक्षिणे-जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है, उसको लेश्या कहते हैं। अथवा कषायों से अनुरंजित मन, वचन, काय रूप योग को लेश्या कहते हैं।

कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल के भेद से लेश्या छह प्रकार की है। मूल जड़ को उखाड़ कर फल खाने की इच्छा करने वाले प्राणी के

समान जिसके परिणाम होते हैं वह कृष्ण लेश्या है अर्थात् तीव्र क्रोधी, वैरको नहीं छोड़ने वाला, लड़ाकू, धर्म दया से रहित दुष्ट, किसी के वश में नहीं होने से स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने वाला, हेयोपादेय विचार से रहित, पंचेन्द्रिय विषयों में आसक्त, मानी, मायावी, आलसी और भीरु स्वभावी मानव कृष्ण लेश्या वाला होता है।

आलस्य, मूर्खता, कार्यानिष्ठा, भीरुता, अतिविषयाभिलाषा, अति गृद्धि, माया, तृष्णा, अतिमान, वंचना, अनृत भाषण, चपलता, अतिलोभ आदि भाव नीललेश्या के लक्षण हैं।

दूसरों पर रोष करना, दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना, शोक भय, ईर्ष्या, पर-अविश्वास, स्तुति किये जाने पर संतुष्ट होकर धन प्रदान करना अपनी हानिवृद्धि का ज्ञान न होना, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नहीं होना आदि कापोत लेश्या के लक्षण हैं, ये तीन अशुभ लेश्या हैं।

दृढ़ मित्रता, दयालुता, सत्यवादिता, दानशीलत्व, स्वकार्यपटुता, सर्व-धर्मसमदर्शित्व आदि परिणाम तेजो (पीत) लेश्या के चिह्न हैं।

सत्य वचन बोलना, क्षमा, सात्त्विकदान, पाण्डित्य, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में रुचि पद्मलेश्या वाले के चिह्न हैं।

निर्वैर, वीतरागता, शत्रु के दोषों पर भी दृष्टि नहीं देना, किसी की भी निन्दा नहीं करना, पापकार्यों से उदासीनता, श्रेयोमार्ग में रुचि आदि भाव शुक्ल लेश्या के द्योतक हैं।

ये छहों लेश्या जिनके नहीं हैं वह अलेश्य कहलाता है अथवा जिसके 'अ' ईषत् लेश्या है वह अलेश्य कहलाता है। अलेश्य होने से भगवन् आपको नमस्कार हो। शुद्ध लेश्या के अंश का स्पर्श करने वाले भगवन् आपको नमस्कार हो। 'शुक्ललेश्यांशकस्पृशे' पाठ भी है। शुक्ल लेश्या को ही शुद्ध लेश्या कहते हैं। भव्य और अभव्य अवस्था रहित हे भगवन् आपको नमस्कार हो। संवर और निर्जरा के द्वारा सर्व कर्मों का नाश कर आनन्द, ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, परम सूक्ष्मता आदि युक्त आत्यंतिकी अवस्था मोक्ष है, उस मोक्ष अवस्था के धारी विमोक्षिणे आपके लिए नमस्कार हो॥२१॥

संज्ञ्यसंज्ञि द्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥३०॥

टीका - संज्ञिनः समनस्का असंज्ञिनः अमनस्काः संज्ञ्य-संज्ञिद्वयावस्था तया व्यतिरिक्तो रहितोऽमलो निर्मलो आत्मा यस्य स संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था व्यतिरिक्ता मलात्मने। पुनः ते तुभ्यं नमः मल्लक्षणजनस्य प्रणामोऽस्तु कस्मै वीत-संज्ञाय वीतः विशेषेण प्राप्त इतः संज्ञा केवलज्ञानं येन स वीतसंज्ञः तस्मै वीतसंज्ञाय विशेषेण प्राप्तसंज्ञानाय इत्यर्थः। पुनः नमः कस्मै क्षायिकदृष्टये क्षायिकं मिथ्यात्वं, सम्यग्मिथ्यात्वं, सम्यक्त्वं अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभचतुष्टयं तेन रहितं क्षायिकसम्यक्त्वं तदेव दृष्टिर्दर्शनं सम्यक्त्वं यस्य स क्षायिकदृष्टिः तस्मै क्षायिकदृष्टये ॥३०॥

अर्थ : मन सहित को संज्ञी कहते हैं और मन रहित को असंज्ञी कहते हैं। ये दोनों अवस्थाएँ ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती हैं, वीतराग प्रभु का ज्ञान क्षायिक है अतः प्रभु संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्था से रहित निर्मल आत्मा हैं, उस संज्ञ्यसंज्ञिद्वय अवस्था व्यतिरिक्त निर्मल आत्मा को मेरा नमस्कार हो।

वीतसंज्ञा - वि = विशेष रूप से, इतः प्राप्त हुई संज्ञा - केवलज्ञान जिनको उनको वीतसंज्ञा कहते हैं। या विशेष रूप से सम्यग्ज्ञान को वीतसंज्ञा कहते हैं। अथवा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से रहित होने से भी आप 'वीतसंज्ञा' हैं अतः वीतसंज्ञा वाले आपको नमस्कार हो।

अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियों के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दर्शन से युक्त आपको नमस्कार हो ॥३०॥

अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥

टीका - न विद्यते आहारः कवलाहारो यस्य स अनाहारः तस्मै अनाहाराय। षड्भेदः आहारः आगमे प्रतिपादितः-

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो।
ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो॥

णोकम्मं तित्थयरे कम्मं णरये माणुसे अमरे।
कवलाहारो णरपसु उज्जो परके न गेलेउ॥

पुन: तृप्ताय तृप्तौ धातु: प्रयोगात् तृप्यते स्म तृप्त: तस्मै तृप्ताय इतर प्राणितृप्तिभ्यो विलक्षण: कवलाहाररहित: इत्यर्थ:। पुन: नम: कस्मै परमभाजुषे परमा चासौ भा दीप्ति: परमभा दिवाकरसहस्रभासुरां तां जुषते तन्मयो भवतीति परमभाजुट् तस्मै परमभाजुषे। पुन: नम: व्यतीताशेषदोषाय व्यतीता मुक्ता अशेषा: समग्रदोषा: क्षुत्पिपासादयो येन स व्यतीताशेषदोष: तस्मै व्यतीताशेषदोषाय। पुन: भवाब्धे: पारमीयुषे भवाब्धे: संसार-समुद्रस्य पारं पर्यंतं ईयुषे प्राप्ताय अस्माकं भाक्तिकानां नमोऽस्तु ॥३१॥

अर्थ : आगम में नोकर्म आहार, कर्म आहार, कवलाहार, लेप आहार, ओज आहार और मानसिक आहार के भेद से आहार छह प्रकार का है।

नो कर्म आहार तीर्थंकरों (केवलियों) के होता है, कर्म आहार नारकियों के होता है, देवों के मानसिक आहार होता है, मनुष्यों और पशुओं के कवल आहार होता है, और अण्डे में स्थित प्राणियों के ओज आहार होता है। वृक्ष आदि के लेप्य आहार होता है।

जिन पौद्गलिक वर्गणाओं से औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर तथा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह पर्याप्ति बनती हैं, उनके नोकर्मवर्गणाओं को ग्रहण करने को **नोकर्म आहार** कहते हैं।

जीव के परिणामों के द्वारा प्रतिक्षण ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य पुद्गल वर्गणाएँ जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होती हैं, वह **कर्म आहार** है।

सर्व जगत्प्रसिद्ध मुख द्वारा ग्रहण किया जाने वाला, खाने-पीने वा चाटने की वस्तुओं का जो मुख में रखकर खाने का प्रयोग किया जाता है वह कवलाहार है। गर्भस्थ बालक के द्वारा ग्रहण किया गया माता का रजांश भी **कवलाहार** है।

पक्षी अपने अण्डे को सेते हैं, वह **ओज (ऊष्म) आहार** है। देवों के खाने का विचार आते ही कण्ठ से अमृत झरता है वह **मानसिक आहार** है।

वृक्षों के मिट्टी पानी का लेप्य है जिससे वे जीवन्त रहते हैं वह **लेप्य आहार** है।

नारकियों के कर्मों का आना ही **कर्म आहार** है।

वीतराग प्रभु के अत्यन्त सूक्ष्म, दूसरे साधारण प्राणियों में नहीं पायी जाने वाली वर्गणा शरीर के सम्बन्ध को प्राप्त होती है अतः कवलाहार के बिना भी उनका शरीर आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक रह सकता है अतः निराहार तृप्त रहने वाले, कवलाहार के बिना जीवित रहने वाले आपको नमस्कार हो।

आप श्रेष्ठ कान्ति (दीप्ति) से युक्त हैं, आपके शरीरकी कान्ति हजारों सूर्यों की कान्ति को निस्तेज करने वाली है। ऐसे परम कान्ति वाले आपको नमस्कार हो।

हे भगवन् ! आप रागद्वेषादि आन्तरिक और क्षुधा आदि १८ बाह्य दोषों से रहित होने से 'व्यतीतादोष' कहलाते हो। तथा संसार-समुद्र को पार करदिया है, संसार का नाश कर दिया है अतः 'भवाब्धिपार' ऐसे कहलाते हो आपको नमस्कार हो।

अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते स्तादजन्मने।[१]
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥

टीका - तुभ्यं नमः कस्मै अजराय न विद्यते जरा वार्धक्यमस्येति अजरः तस्मै अजराय। पुनः नमस्ते स्तादजन्मने ते तुभ्यं नमः नमस्कारस्तात् भवतु अस्माकम् कस्मै अजन्मने न विद्यते जन्म मातृगर्भे पुनरागमनं यस्येति अजन्मा तस्मै अजन्मने। पुनः तुभ्यं नमः, कस्मै अमृत्यवे, मृङ् प्राणत्यागे, म्रियतेऽनेनेति मृत्युः 'भुजिमृङ्भ्यां युक्त्कौ' न विद्यते मृत्युरंतकालो यस्येति अमृत्युः तस्मै अमृत्यवे। पुनः अचलाय न चलति स्वस्वभावादिति अचलः तस्मै अचलाय,

१. वीतजन्मने यह पाठ भी है।

अथवा त्रिदशांगनानां नयनविक्षेपात् मनो न चलतीति अचल: तस्मै। उक्तं श्री-मानतुंगसूरिणा-

> चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
> र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
> कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
> किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥

इति वचनादचल: तस्मै। पुन: अक्षरात्मने न क्षरतीत्यक्षर: अविनश्वर: अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षर:, अक्षर: आत्मा यस्येति अक्षरात्मा तस्मै अक्षरात्मने।

अर्थ : जरा (बुढ़ापा) रहित आपको नमस्कार है। जन्म रहित हैं, माता के गर्भ में पुन: आने वाले नहीं हैं अत: अजन्मन् - वीतजन्म वाले आपको नमस्कार हो।

आपका मरण नहीं है अत: अमृत्यु वाले आपको नमस्कार हो।

हे भगवन् ! आप अपने स्वभाव से कभी चलायमान नहीं हुए हैं, त्रिदशांगना (देवांगना) के कटाक्ष से भी आपका मन कभी विकार को प्राप्त नहीं हुआ है। मानतुंग आचार्य ने भक्तामर काव्य में कहा है- भगवन् ! देवांगनाओं के नेत्रकटाक्षों के द्वारा आपका मन विचलित नहीं हुआ। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ! पर्वतों को चलायमान करने वाली वायु के द्वारा क्या मेरु पर्वत का शिखर कम्पित हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। आपके मन रूपी मेरु को चलायमान करने में कोई समर्थ नहीं है अत: आप अचल हैं, आपको नमस्कार हो।

जिसका क्षरण-नाश नहीं होता है उसको अक्षर कहते हैं तथा नाश नहीं होना ही जिसका स्वरूप है उसको अक्षरात्मा कहते हैं। अथवा 'अक्ष्णोति व्याप्नोति' इति अक्षर:, जिसके ज्ञान में तीन लोक के सारे पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, उसको अक्षर कहते हैं। जो अविनाशी है, नित्य है, स्वरूप है, वा जिस ज्ञान में तीन लोक के सारे पदार्थ बिम्बित होते हैं ऐसे अविनाशी केवल स्वरूप आत्मा को 'अक्षरात्मा' कहते हैं, उस अक्षर आत्मा के लिए मेरा नमस्कार हो।

अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः।
त्वन्नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिशिषामहे ॥३३॥

टीका - अथौद्धत्यपरिहारं कथयन्ति श्रीजिनसेनाचार्याः अलं पूर्णं आस्तां तिष्ठतु, किं तत्स्तोत्रं गुणानां स्तोत्रं स्तवनं आस्तां गुणस्तोत्रं तावकास्त्वदीया गुणाः अनंताः वर्त्तन्ते। तथा चोक्तं समन्तभद्राचार्यैः-

गुणस्तोकं समुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथास्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम्॥

हे देव ! वयं श्रीजिनसेनाचार्याः पर्युपासिशिषामहे उपासनां सेवां कर्त्तुमिच्छामः। कं प्रति त्वां श्रीनाभिजं मरुदेवीनन्दनं प्रति, केन कारणभूतेन नामस्मृतिमात्रेण नाम्नामष्ट-सहस्रेण स्मृतिमात्रेण स्मरणमात्रेण प्रमाणेन सेवां कर्त्तुमिच्छामः प्रमाणार्थे द्वयसद्दघ्नटमात्रट् प्रत्यया भवन्ति।

हे भगवन् ! तेरे गुणों का स्तवन (कथन) तो दूर रहो अर्थात् तुम्हारे गुणों का कथन हम नहीं कर सकते, क्योंकि आपके गुण अनन्त हैं सो ही समन्त भद्राचार्य ने कहा है कि-

"अल्प गुणों का विस्तार करके कथन करना स्तुति कहलाती है। परन्तु आपके गुण अनन्त हैं जो वचनों के द्वारा कहने में नहीं आते अतः आपकी स्तुति कैसे हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती। जिनसेन आचार्य कहते हैं कि हे नाभिनन्दन ! आपकी स्तुति हम नहीं कर सकते, इसलिए एक हजार आठ नामों के स्मरण मात्र से आपकी सेवा करना चाहते हैं अर्थात् आपके नाम का स्मरण करके अपने को पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं।

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते श्रीमहापुराणे श्रीवृषभस्तुतेष्टीका सम्पूर्णा कृता सूरिश्रीमदमरकीर्त्तिना।

卐 अथप्रशस्तिर्लिख्यते 卐

सद्वृत्ताः खलु यत्रलोकमहिता मुक्ता भवन्ति श्रिये,
रत्नानामपि लब्धये सुकृतिनो यं सर्वदोपासते।
सद्धर्मामृतपूरपुष्टसुमनः स्याद्वादचन्द्रोदया,
काङ्क्षीसोऽत्रसनातनो विजयते श्रीमूलसंघोदधिः ॥१॥

आसाद्य द्युसदां सहायमसमं गत्वा विदेहं जवा-
दद्राक्षीत्किल केवलेक्षणमिनं योऽत्यक्षमध्यक्षतः,
स्वामी साम्यपदाधिरूढधिषणः श्रीनन्दिसंघश्रियो,
मान्यः सोऽस्तु शिवाय शान्तमनसां श्रीकुन्दकुन्दाभिधः ॥२॥

श्रीपद्मनन्दिविद्वन् विख्याता त्रिभुवनेऽपि कीर्त्तिस्ते।
हारति हीरति हंसति हरति हरोत्तंसमनुहरति ॥३॥

श्रीपद्मनन्दि परमात्मपदः पवित्रो,
देवेन्द्रकीर्त्तिरथसाधुजनाभिवन्द्यः।
विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोधः,
श्रीमल्लिभूषण इतोस्तु च मंगलं नः ॥४॥

प्रायो व्याकरणं येन धातुः पाठेऽवतारितम्।
स जीयात् शब्दमाणिक्यनिवासः श्रुतसागरः ॥५॥

मल्लिभूषणशिष्येण भारत्यानन्दनेन च
सहस्रनामटीकेयं रचितामरकीर्त्तिना ॥६॥

इति श्रीजिनसहस्रनाम टीका समाप्ता सम्पूर्णीकृता।

卐 卐 卐